समाज-गौरव

चिरंजीलालजी बड़जाते

[जीवन-परिचय तथा संस्मरण]

•

सम्पादक

जमनालाल जैन

रतन 'पहाड़ी'

•

भारत जैन महामंडल, वर्धा

अपनी बात

श्री चिरञ्जीलालजी ने सितंबर '६० में ६५ वर्ष पूरे किये। इस अवसर पर जैन-समाज तथा वर्धा शहर की ओर से उनका अभिनन्दन किया गया। इसकी एक योजना बनी, समिति बनी और एक पुस्तिका छापने का काम मुझे सौंपा गया।

कुछ साथी सोचते थे कि चिरञ्जीलालजी को एक अच्छा 'अभिनन्दन-ग्रंथ' समर्पित करना चाहिए। लेकिन चिरञ्जीलालजी को यह विचार पसंद नहीं था। लेकिन ऐसी छोटी-सी पुस्तिका के लिए तो चिरञ्जीलालजी कुछ कह नहीं सकते थे।

इस पुस्तक में चिरञ्जीलालजी के जीवन-परिचय के साथ-साथ उनके लिखाये गये तथा कुछ साथियों के लिखे संस्मरण हैं।

श्री चिरञ्जीलालजी के पास अनुभूतियों की जो पूँजी है, उसे कोई समर्थ लेखक बटोरे और वह समाज के सामने रखे, तो वह सचमुच साहित्य की भी अनमोल निधि होगी।

चिरञ्जीलालजी का यह सम्मान या अभिनन्दन उनका नहीं है, समाज का है और हमारा अपना है।

१२ सितम्बर १९६० को वर्धा में अभिनन्दन-समारोह अतीव उत्साह और स्नेह-भीने वातावरण मे सम्पन्न हुआ। पुस्तक तो उस दिन श्री मनोहर पंत देशपांडे एडवोकेट के द्वारा श्री चिरंजीलालजी को भेट कर दी गयी। पर वह अधूरी ही थी। समारोह पर प्राप्त संदेश और श्रद्धांजलियाँ भी अब इसमें जोड़ दी गयी हैं।

अभिनन्दन-समारोह के संयोजक भाई पहाड़ीजी ने जो अथक, अनवरत श्रम किया तथा सहयोग दिया, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

चिरञ्जीलालजी की विशेषताओं का दर्शन हमारे जीवन में भी हो, इसी उद्देश्य से यह पुस्तिका उन्हींके लाड़ले संगी-साथियों द्वारा उनके कर-कमलों में विनम्रतापूर्वक सादर समर्पित है।

राजघाट, काशी

२५-२-'६१

[signature]

अनुक्रम

●

President's Camp
India

रास्ते में से : भोपाल, ता० ६ जुलाई १९५५

प्रिय श्री चिरंजीलालजी,

आपका बम्बई से लिखा पत्र कल सेवाग्राम में मिला। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप श्री बद्री-नाथजी व श्री केदारनाथजी के दर्शन कर आये हैं। यह बड़े भाग्य की बात है।

मेरा हमेशा यह मानना है कि हम सब एक ही परिवार के हैं और चाहे हम आज भिन्न-भिन्न जगहों में, अपने-अपने कार्यवश इधर-उधर बिखरे पड़े हुए क्यों न हों, पर हमारा आपसी सम्बन्ध कैसे टूट सकता है? कल सेवाग्राम में जो थोड़ा-बहुत समय बिता सका, उस थोड़े से समय में ही अनेक पुरानी स्मृतियाँ फिर ताजी हो गयीं और यह स्वाभाविक ही है। अनेक भाई-बहनों से भेंट-मुलाकात हुई। चि० रामकृष्ण से भी बातें हुईं। मेरा स्वास्थ्य ठीक चल रहा है।

आपका

राजेन्द्र प्रसाद

चढ़ाऊँ कितना चन्दन ?

गागर-सा तन
सागर-सा मन
मोती का-सा
उज्वल जीवन
कहो लगाऊँ कितनी कीमत ?
कहो करूँ कितना अभिनंदन ?
और चढाऊँ कितना चंदन ?

जिसका जीवन तप का सूरज
उसको क्या मैं दीप दिखाऊँ ?
जो खुद ही केशर-कस्तूरी
उसको क्या मैं धूप चढाऊँ।
जिसका मन सेवा की मुरली
उसे सुनाऊँ क्या मैं गायन।
कहो करूँ कितना अभिनंदन ?
कहो चढाऊँ कितना चंदन ?

कहूँ प्यार का पारस-मणि
या कहूँ कल्प-लतिका की छाया।
'जैन जगत' का प्राण कहूँ
या कहूँ 'महामंडल' की काया।
कहूँ धर्म की गीता अथवा
कहूं कर्म का चक्र-सुदर्शन
कहो करूँ कितना अभिनंदन ?
और चढाऊँ कितना चंदन ?

—आशाराम वर्मा

मंगलाचरण

णमो अरिहंताणं ।

णमो सिद्धाणं ।

णमो आइरियाणं ।

णमो उवज्झायाणं ।

णमो लोए सव्व साहूणं ।। १ ।।

एसो पंच-णमोक्कारो सव्व पावप्पणासणो ।

मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ।। २ ।।

चत्तारि मंगलं । अरिहंता मंगलं ।

सिद्धा मंगलं । साहू मंगलं ।

केवलि-पण्णत्तो धम्मो मंगलं ।। ३ ।।

चत्तारि लोगुत्तमा । अरिहंता लोगुत्तमा ।

सिद्धा लोगुत्तमा । साहू लोगुत्तमा ।

केवलि-पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ।। ४ ।।

चत्तारि सरण पव्वज्जामि । अरिहंते सरणं पव्वज्जामि ।

सिद्धे सरणं पव्वज्जामि । साहू सरणं पव्वज्जामि ।

केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।। ५ ।।*

---

* यह मंगलाचरण भारत जैन महामंडल के मुरार-अधिवेशन में सब सम्प्रदायों के लिए एक मंगलाचरण के रूप में स्वीकृत हुआ है। सब मंगलकार्यों, उत्सवों में इसीका पाठ होना चाहिए।

महावीर-वाणी *

१. धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौनसा धर्म ?) अहिंसा, संयम और तप। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

२. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच महाव्रतों को तथा ऐसे ही लघुव्रतों को स्वीकार करके बुद्धिमान् मनुष्य जिन भगवंत द्वारा उपदेशित धर्म का आचरण करे।

३. जरा और मरण के वेगवाले प्रवाह में बहते हुए जीवों के लिए धर्म ही एकमात्र द्वीप है, प्रतिष्ठा—आश्रय है, गति है और उत्तम शरण है।

४. जो रात और दिन एक बार अतीत की ओर चले जाते हैं, वे फिर कभी वापस नहीं आते; जो मनुष्य अधर्म (पाप) करता है, उसके वे रात-दिन बिलकुल निष्फल हो जाते हैं।

५. जो रात और दिन एक बार अतीत की ओर चले जाते हैं, वे फिर कभी वापस नहीं आते; जो मनुष्य धर्म करता है, उसके वे रात-दिन सफल हो जाते हैं।

६ हे राजन्! जब कभी इन मनोहर काम-भोगों को छोडकर आप परलोक के यात्री बनेंगे, तब एकमात्र धर्म ही आपकी रक्षा करेगा। हे नरदेव! धर्म को छोड़कर जगत् में दूसरा कोई भी रक्षा करनेवाला नहीं है।

७. संसार में जितने भी त्रस और स्थावर प्राणी हैं, उन सबको जाने-अनजाने न खुद मारे और न दूसरों से मरवाये।

८. सब जीवों के साथ संयमपूर्वक व्यवहार रखना तथा परस्पर के व्यवहार में समभाव से पेश आना ही निपुण तेजस्वी अहिंसा है; वह सब सुखों को देनेवाली मानी गयी है।

---

* ये वचन पंडित बेचरदासजी दोशी द्वारा संपादित 'महावीर-वाणी' पुस्तक से संकलित किये गये हैं।

९. जो मनुष्य स्वयं प्राणियों की हिंसा करता है, दूसरों से हिंसा करवाता है और हिंसा करनेवालों का अनुमोदन करता है, वह संसार में अपने लिए वैर को ही बढ़ाता है।

१०. सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। इसीलिए निर्ग्रन्थ भगवंत महावीर के अनुयायी लोग घोर प्राणि-वध का सर्वथा परित्याग करते हैं।

११ ज्ञानी होने का सार ही यह है कि वह किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। 'अहिंसा का सिद्धांत ही सर्वोपरि है'—मात्र इतना ही विज्ञान है।

१२. संसार में प्रत्येक प्राणी के प्रति—फिर भले ही वह शत्रु हो या मित्र—समभाव रखना तथा जीवन पर्यन्त छोटी-मोटी सभी प्रकार की हिंसा का त्याग करना वास्तव में बड़ा ही दुष्कर है।

१३. सदा अप्रमादी और सावधान रहकर, असत्य को त्यागकर, हितकारी सत्य वचन ही बोलना चाहिए। इस तरह सत्य बोलना बड़ा कठिन होता है।

१४. अपने स्वार्थ के लिए अथवा दूसरों के लिए, क्रोध से अथवा भय से—किसी भी प्रसंग पर दूसरो को पीडा पहुँचानेवाला असत्य वचन न तो स्वयं बोले, न दूसरों से बुलवाये।

१५. श्रेष्ठ मनुष्य पापकारी, भयकारी और दूसरों को दुःख पहुँचानेवाली वाणी न बोले। श्रेष्ठ मानव इसी तरह क्रोध, लोभ, भय और हास्य में भी पापकारी वाणी न बोले। हँसते हुए भी पाप-वचन नहीं बोलना चाहिए।

१६. आत्मार्थी साधक को दृष्ट (सत्य), परिमित, असंदिग्ध, परिपूर्ण, स्पष्ट, अनुभूत, वाचालतारहित और किसीको भी उद्विग्न न करनेवाली वाणी बोलनी चाहिए।

१७. भाषा के गुण तथा दोषों को भलीभाँति समझकर दूषित भाषा को सदा के लिए छोड देनेवाला तथा साधुत्व-पालन में सदा तत्पर बुद्धिमान् साधक एकमात्र हितकारी मधुर भाषा बोले।

१८. विचारवान् मुनिजन को या गृहस्थ को वचन-शुद्धि का भलीभाँति ज्ञान प्राप्त करके दूषित वाणी सदा के लिए छोड़ देनी चाहिए और खूब सोच-विचारकर

बहुत परिमित और निर्दोष वचन बोलना चाहिए। इस तरह बोलने से सत्पुरुषों में महान् प्रशंसा प्राप्त होती है।

१६. काने को काना, नपुंसक को नपुंसक, रोगी को रोगी और चोर को चोर कहना यद्यपि सत्य है, फिर भी ऐसा नहीं कहना चाहिए।

२०. जो मनुष्य भूल से भी मूलतः असत्य किन्तु ऊपर से सत्य मालूम होनेवाली भाषा बोल उठता है, वह भी पाप से अछूता नहीं रहता, तब भला जो जान-बूझकर असत्य बोलता है, उसके पाप का तो कहना ही क्या?

२१ जो भाषा कठोर हो, दूसरों को दुःख पहुँचानेवाली हो—वह सत्य ही क्यों न हो—नहीं बोलनी चाहिए। क्योंकि उससे पाप का आगमन होता है।

२२. सचेतन पदार्थ हो या अचेतन, अल्प-मूल्य पदार्थ हो या बहुमूल्य; और तो क्या, दाँत कुरेदने की सींक भी जिस गृहस्थ के अधिकार में हो, उसकी आज्ञा लिये बिना पूर्ण संयमी साधक न तो स्वयं ग्रहण करते हैं, न दूसरों को ग्रहण करने के लिए प्रेरित करते हैं और न ग्रहण करनेवालों का अनुमोदन ही करते हैं।

२३ काम याने रूप और शब्द का तथा भोग याने स्पर्श, रस और गंध का अर्थात् काम और भोगों का रस जान लेनेवाले के लिए अब्रह्मचर्य से विरक्त होना और उग्र ब्रह्मचर्य महाव्रत का धारण करना बड़ा ही कठिन कार्य है।

२४. जो उत्तम मनुष्य संयम-घातक दोषों से दूर रहते हैं, वे लोक में रहते हुए भी दुःसेव्य, प्रमाद स्वरूप और भयंकर अब्रह्मचर्य का कभी सेवन नहीं करते।

२५. आत्म-शोधक मनुष्य के लिए शरीर का शृङ्गार, पुरुषों के लिए स्त्रियों का संसर्ग तथा स्त्रियों के लिए पुरुषों का संसर्ग और पौष्टिक स्वादिष्ट भोजन—सब, तालपुट विष के समान महान् भयंकर है।

२६. ब्रह्मचर्य-रत साधक को शीघ्र ही वासना-वर्धक पुष्टिकारी भोजन-पान का सदा के लिए परित्याग कर देना चाहिए।

२७. ब्रह्मचर्य-रत स्थिरचित्त साधक को संयम-यात्रा के निर्वाह के लिए ही हमेशा धर्मानुकूल विधि से प्राप्त परिमित भोजन करना चाहिए। कैसी भी भूख क्यों न लगी हो, लालसावश अधिक मात्रा में कभी भी भोजन नहीं करना चाहिए।

२८ स्थिरचित्त ब्रह्मचारी साधक दुर्जय काम-भोगों को हमेशा के लिए

छोड़ दे। इतना ही नहीं, जिनसे ब्रह्मचर्य में तनिक भी क्षति पहुँचने की संभावना हो, उन सब शंका-स्थानों का भी उसे परित्याग कर देना चाहिए।

२६. प्राणिमात्र के संरक्षक ज्ञातपुत्र (भगवान् महावीर) ने कुछ वस्त्र आदि स्थूल पदार्थों को परिग्रह नहीं बतलाया है। वास्तविक परिग्रह तो उन्होंने किसी भी पदार्थ पर मूर्च्छा का—आसक्ति का रखना बतलाया है।

३०. परिग्रह से विरक्त साधक जो भी वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरण आदि वस्तुएं रखते हैं, वे सब एकमात्र संयम की रक्षा के लिए ही रखते हैं।

३१. ज्ञानी पुरुष सयम-साधक उपकरणों के लेने और रखने में कहीं भी किसी भी प्रकार का ममत्व नहीं रखते। और तो क्या, अपने शरीर तक पर भी ममता नहीं रखते।

३२. सग्रह करने की वृत्ति होना या थोड़ा-सा भी संग्रह करना, यह अन्दर रहनेवाले लोभ की झलक है। अतएव जो साधक मर्यादा-विरुद्ध कुछ भी संग्रह करना चाहता है, वह गृहस्थ है—साधक नहीं है।

३३. जो पदार्थ चैतन्ययुक्त हैं, जैसे मनुष्य, पशु-पक्षी आदि, उनका थोड़ा-सा भी परिग्रह रखना अर्थात् चैतन्ययुक्त प्राणी पर हिंसाजनक स्वामित्व की वृत्ति रखना तथा जो पदार्थ चैतन्यरहित है, जैसे मकान, खेत, बाग-बगीचा, धन, असबाब, गहना आदि, उनका थोड़ा-सा भी परिग्रह रखना अर्थात् उन पर हिंसाजनक अपना स्वामित्व स्थापित करना और किसी भी द्वारा ऐसे स्वामित्व को रखवाना अनुचित है।

३४ जमीन पर कहीं पानी पड़ा होता है, कहीं बीज बिखरे होते हैं और कहीं पर सूक्ष्म कीड़े-मकोड़े आदि होते हैं। दिन मे तो उन्हें देख-भालकर बचाया जा सकता है, परन्तु रात्रि में उनको बचाकर भोजन कैसे किया जा सकता है?

३५. अन्न आदि चारों ही प्रकार के आहार का रात्रि मे सेवन नहीं करना चाहिए। इतना ही नहीं, दूसरे दिन के लिए भी रात्रि में खाद्य-सामग्री का संग्रह करना निषिद्ध है। अतः अरात्रिभोजन वास्तव में बड़ा दुष्कर है।

३६ इन पाँच कारणों से मनुष्य सच्ची शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता : अभिमान से, क्रोध से, प्रमाद से, कुष्ठ आदि रोग से और आलस्य से।

३७-३८. इन आठ कारणों से मनुष्य शिक्षाशील कहलाता है :

हर समय हँसनेवाला न हो, इंद्रिय-निग्रही हो, मर्मभेदी वचन न बोलता हो, अस्थिराचारी न हो, रसलोलुप न हो, सत्य में रत हो, क्रोधी न हो—शांत हो।

३९. जो गुरु की आज्ञा पालता है, उनके पास-उनकी निगरानी में रहता है, उनके इंगितों तथा आकारों को जानता है, वही शिष्य विनीत कहलाता है।

४०-४१. जो बार-बार क्रोध करता है, जिसका क्रोध शीघ्र ही शान्त नहीं होता, जो मित्रता रखनेवालों का भी तिरस्कार करता है, जो शास्त्र पढ़कर गर्व करता है, जो दूसरों के दोषों को ही उखाडता रहता है, जो अपने मित्रों पर भी क्रुद्ध हो जाता है, जो अपने प्यारे-से-प्यारे मित्र की भी पीठ-पीछे बुराई करता है, जो मनमाना बोल उठता है—बकवादी है, जो स्नेही-जनों के साथ भी द्रोह करता है, जो अहंकारी है, लोभी है, इन्द्रियनिग्रही नहीं है, सबको अप्रिय है, वह अविनीत कहलाता है।

४२ जो शिष्य अभिमान, क्रोध, मद या प्रमाद के कारण गुरु की विनय-भक्ति नहीं करता, वह अभूति अर्थात् पतन को प्राप्त होता है। जैसे बाँस का फल बाँस के ही नाश के लिए होता है, उसी प्रकार अविनीत का ज्ञान-बल भी उसीका सर्वनाश करता है।

४३. संसार में जीवों को इन चार श्रेष्ठ अङ्गो (जीवन-विकास के साधन) का प्राप्त होना बड़ा दुर्लभ है : मनुष्यत्व, धर्मश्रवण, श्रद्धा और संयम मे पुरुषार्थ।

४४ जो प्राणी काम-वासनाओं से विमूढ़ है, वे भयंकर दुःख तथा वेदना भोगते हुए चिरकाल तक मनुष्येतर योनियों में भटकने रहते है।

४५. सद्धर्म का श्रवण और उस पर श्रद्धा—दोनों प्राप्त कर लेने पर भी उनके अनुसार पुरुषार्थ करना तो और कठिन है। क्योंकि संसार में बहुत-से लोग ऐसे हैं, जो सद्धर्म पर दृढ़ विश्वास रखते हुए भी उसे आचरण में नहीं लाते।

४६. जो मनुष्य निष्कपट एवं सरल होता है, उसीकी आत्मा शुद्ध होती है। और जिसकी आत्मा शुद्ध होती है, उसीके पास धर्म ठहर सकता है। घी से सींची हुई अग्नि जिस प्रकार पूर्ण प्रकाश को पाती है, उसी प्रकार सरल और शुद्ध साधक ही पूर्ण निर्वाण को प्राप्त होता है।

४७. जीवन असंस्कृत है—अर्थात् एक बार टूट जाने के बाद फिर नहीं जुड़ता, अतः एक क्षण प्रमाद न करो।

४८. संसारी मनुष्य अपने प्रिय कुटुम्बियों के लिए बुरे-से-बुरे पाप-कर्म कर डालता है, पर जब उनके दुष्फल भोगने का समय आता है, तब अकेला ही दुःख भोगता है, कोई भी भाई-बन्धु उसका दुःख बँटानेवाला—सहायता पहुँचानेवाला नहीं होता।

४९. संसार में जो कुछ धन, जन आदि पदार्थ हैं, उन सबको पाशरूप जानकर मुमुक्षु बडी सावधानी के साथ फूँक-फूँककर पाँव रखे। जब तक शरीर सशक्त है, तब तक उसका उपयोग अधिक-से-अधिक संयम-धर्म की साधना के लिए कर लेना चाहिए। बाद में जब वह बिलकुल ही अशक्त हो जाय, तब बिना किसी मोह-ममता के मिट्टी के ढेले के समान उसका त्याग कर देना चाहिए।

५०. आत्म-विवेक झटपट प्राप्त नहीं हो जाता—इसके लिए तो भारी साधना की आवश्यकता है। महर्षि जनों को बहुत पहले से ही संयम-पथ पर दृढ़ता के साथ खड़े होकर, काम-भोगों का परित्याग कर, समतापूर्वक संसार की वास्तविकता को समझकर, अपनी आत्मा की पापों से रक्षा करते हुए सर्वदा अप्रमादी रूप से विचरना चाहिए।

५१. जो मनुष्य संस्कारहीन हैं, तुच्छ हैं, निन्दा करनेवाले हैं, राग-द्वेष से युक्त हैं, वे सब अधर्माचरणवाले हैं। इस प्रकार विचारपूर्वक दुर्गुणों से घृणा करता हुआ मुमुक्षु शरीर-नाश पर्यन्त एकमात्र सद्‌गुणों की ही कामना करता रहे।

५२. जैसे ओस की बूँद कुशा की नोक पर थोडी देर तक ही ठहरी रहती है, उसी तरह मनुष्यों का जीवन भी बहुत अल्प है—शीघ्र ही नाश हो जानेवाला है। इसलिए हे गौतम ! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

५३. अनेक प्रकार के विघ्नों से युक्त अत्यन्त अल्प आयुवाले इस मानव-जीवन में पूर्वसंचित कर्मों की धूल को पूरी तरह झटक दे। इसलिए हे गौतम ! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

५४ दीर्घकाल के बाद भी प्राणियों को मनुष्य-जन्म का मिलना बड़ा दुर्लभ है, क्योंकि कृतकर्मों के विपाक अत्यन्त प्रगाढ़ होते हैं। हे गौतम ! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

५५ प्रमाद-बहुल जीव अपने शुभाशुभ कर्मों के कारण इस भाँति अनन्त बार भव-चक्र में इधर से उधर घूमा करता है। हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

५६ उत्तम धर्म का श्रवण पाकर भी उस पर श्रद्धा का होना बड़ा कठिन है। बहुत-से लोग सब कुछ जान-बूझकर भी मिथ्यात्व की उपासना में ही लगे रहते हैं। हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

५७ धर्म पर श्रद्धा लाकर भी शरीर से धर्म का आचरण करना बड़ा कठिन है। संसार में बहुत-से धर्मश्रद्धालु मनुष्य भी काम-भोगों में मूर्च्छित रहते हैं। हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

५८ तेरा शरीर दिन प्रति दिन जीर्ण होता जा रहा है, सिर के बाल श्वेत होने लगे है, अधिक क्या—शारीरिक और मानसिक सभी प्रकार का बल घटता जा रहा है। हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

५९ जैसे कमल शरत्काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता, अलग–अलिप्त–रहता है; उसी प्रकार तू भी संसार से अपनी समस्त आसक्तियाँ दूर कर सब प्रकार के स्नेह-बन्धनों से रहित हो जा। हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

६० घुमावदार विषम मार्ग को छोड़कर तू सीधे और साफ मार्ग पर चल। विषम मार्ग पर चलनेवाले निर्बल भार-वाहक की तरह बाद में पछतानेवाला न बन। हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

६१. प्रमाद को कर्म कहा है और अप्रमाद को अकर्म–अर्थात् जो प्रवृत्तियाँ प्रमाद-युक्त है, वे कर्म-बन्धन करनेवाली है और जो प्रवृत्तियाँ प्रमाद से रहित हैं, वे कर्म-बन्धन नहीं करतीं। प्रमाद के होने और न होने से ही मनुष्य क्रमशः मूर्ख और पंडित कहलाता है।

६२. राग और द्वेष–दोनो कर्म के बीज हैं–अतः कर्म का उत्पादक मोह ही माना गया है। कर्मसिद्धान्त के अनुभवी लोग कहते हैं कि संसार में जन्म-मरण का मूल कर्म है, और जन्म-मरण ही एकमात्र दुःख है।

६३ जिसे मोह नहीं है, उसका दुःख चला गया; जिसे तृष्णा नहीं है, उसका मोह चला गया; जिसे लोभ नहीं है, उसकी तृष्णा चली गयी; जिसके पास लोभ करने जैसा कुछ भी पदार्थ-संग्रह नहीं है, उसका लोभ चला गया।

६४. दूध और दही आदि रसों का अधिक मात्रा में सेवन नह करना चाहिए; क्योंकि प्रायः रस मनुष्यो में मादकता पैदा करते हैं। मत्त मनुष्य की ओर काम-वासनाएँ वैसे ही दौड़ी आती हैं, जैसे स्वादिष्ट फलवाले वृक्ष की ओर पक्षी।

६५ जो मूर्ख मनुष्य सुन्दर रूप के प्रति तीव्र आसक्ति रखता है, वह अकाल ही नष्ट हो जाता है। रागातुर व्यक्ति रूप-दर्शन की लालसा में वैसे ही मृत्यु को प्राप्त होता है, जैसे दीये की ज्योति देखने की लालसा में पतंग।

६६ रूप में आसक्त मनुष्य को कहीं से भी कभी किंचिन्मात्र भी सुख नहीं मिल सकता। खेद है कि जिसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य महान् कष्ट उठाता है, उसके उपभोग में कुछ भी सुख न पाकर केवल क्लेश तथा दुःख ही पाता है।

६७ जो मनुष्य कुत्सित रूपों के प्रति द्वेष रखता है, वह भविष्य में असीम दुःख-परम्परा का भागी होता है। प्रदुष्ट चित्त द्वारा ऐसे पाप-कर्म संचित किये जाते है, जो विपाक-काल में भयंकर दुःखरूप होते हैं।

६८ जो मनुष्य अपना हित चाहता है, वह पाप को बढ़ानेवाले क्रोध, मान, माया और लोभ–इन चार दोषों को सदा के लिए छोड़ दे।

६९ क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का नाश करता है, माया मित्रता का नाश करता है और लोभ सभी सद्‌गुणों का नाश कर देता है।

७०. शान्ति से क्रोध को मारे, नम्रता से अभिमान को जीते, सरलता से माया का नाश करे और सन्तोष से लोभ को काबू में लाये।

७१. अनेक प्रकार के बहुमूल्य पदार्थों से परिपूर्ण यह समग्र विश्व भी यदि किसी एक मनुष्य को दे दिया जाय, तब भी वह सन्तुष्ट नहीं होगा। अहो! मनुष्य की यह तृष्णा बड़ी दुष्पूर है।

७२ ज्यों-ज्यों लाभ होता जाता है, त्यों-त्यों लोभ भी बढ़ता जाता है। देखो न, पहले केवल दो मासे सुवर्ण की आवश्यकता थी; पर बाद में वह करोड़ों से भी पूरी न हो सकी।

७३. क्रोध से मनुष्य नीचे गिरता है, अभिमान से अधम गति पाता है, माया से सद्‌गति का नाश होता है और लोभ से इस लोक तथा परलोक में महान् भय है।

७४. चाँदी और सोने के कैलास के समान विशाल असंख्य पर्वत भी लोभी मनुष्य की तृप्ति के लिए पर्याप्त नहीं। तृष्णा आकाश के समान अनन्त है।

७५. चावल और जौ आदि धान्यो तथा सुवर्ण और पशुओ से परिपूर्ण यह समस्त पृथिवी भी लोभी मनुष्य को तृप्त कर सकने में असमर्थ है, यह जानकर संयम का ही आचरण करना चाहिए।

७६. गीत सब विलापरूप है, नाट्य सब विडम्बनारूप है, आभरण सब भार-रूप हैं। अधिक क्या ? संसार के जो भी काम-भोग है, सब-के-सब दुःखावह हैं।

७७. जो मनुष्य भोगी है–भोगासक्त है, वही कर्म-मल से लिप्त होता है; अभोगी लिप्त नहीं होता। भोगी संसार मे परिभ्रमण किया करता है और अभोगी संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है।

७८ मृगचर्म, नग्नत्व, जटा, संघाटिका (बौद्ध भिक्षुओं का-सा उत्तरीय वस्त्र) और मुण्डन आदि कोई भी धर्मचिह्न दुःशील भिक्षु की रक्षा नहीं कर सकते।

७९ काल बडी द्रुत गति से चला जा रहा है, जीवन की एक-एक करके सभी रात्रियाँ बीतती जा रही हैं, फलस्वरूप काम-भोग चिरस्थायी नहीं हैं। भोग-विलास के साधनो से रहित पुरुष को भोग वैसे ही छोड़ देते हैं, जैसे क्षीण-फल वृक्ष को पक्षी।

८० मूर्ख मनुष्य धन, पशु और जातिवालों को अपना शरण मानता है और समझता है कि 'ये मेरे हैं' और 'मै उनका हूँ'। परन्तु इनमे से कोई भी आपत्तिकाल मे त्राण तथा शरन का देनेवाला नहीं।

८१ जिस तरह सिंह हिरण को पकड़कर ले जाता है, उसी तरह अंत समय मे मृत्यु भी मनुष्य को उठा ले जाती है। उस समय माता, पिता, भाई आदि कोई भी उसके दुःख मे भागीदार नहीं होते–परलोक मे उसके साथ नहीं जाते।

८२ जो मनुष्य काम-भोगों मे आसक्त हैं, वे बुरे-से-बुरे पाप-कर्म कर डालते हैं। ऐसे लोगो की मान्यता होती है कि "परलोक हमने देखा नहीं है और यह विद्यमान काम-भोगों का आनन्द तो प्रत्यक्ष-सिद्ध है"।

८३ "मैं तो सामान्य लोगों के साथ रहूँगा–अर्थात् जैसी उनकी दशा होगी, वैसी मेरी भी हो जायगी"–मूर्ख मनुष्य इस प्रकार धृष्टताभरी बातें किया करते हैं और काम-भोगों की आसक्ति के कारण अन्त में महान् क्लेश पाते हैं।

८४. मूर्ख मनुष्य हिंसक, असत्यभाषी, मायावी, चुगलखोर और धूर्त होता है। वह मांस तथा मद्य के खाने-पीने में ही अपना श्रेय समझता है।

८५. जो मनुष्य सुन्दर और प्रिय भोगों को पाकर उससे विविध प्रकार से पीठ फेर लेता है, सब प्रकार से स्वाधीन भोगो का परित्याग कर देता है, वही सच्चा त्यागी कहलाता है।

८६ जो मनुष्य किसी परतन्त्रता के कारण वस्त्र, गन्ध, अलंकार, स्त्री और शयन आदि का उपयोग नहीं कर पाता, वह सच्चा त्यागी नहीं कहलाता।

८७. जैसे कछुआ आपत्ति से बचने के लिए अपने अंगों को सिकोड लेता है, उसी प्रकार पंडितजन भी विषयों की ओर जाती हुई अपनी इन्द्रियो को आध्यात्मिक ज्ञान से सिकोड़कर रखें।

८८. जो मनुष्य प्रतिमास लाखों गाये दान मे देता है, उसकी अपेक्षा कुछ भी न देनेवाले का संयमाचरण श्रेष्ठ है।

८९ सद्गुरु तथा अनुभवी वृद्धों की सेवा, मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना, एकाग्र चित्त से सत् शास्त्रों का अभ्यास और उनके गम्भीर अर्थ का चिन्तन करना और चित्त में धृतिरूप अटल शान्ति टिकाये रखना, यह निःश्रेयस का मार्ग है।

९० जो वीर दुर्जय संग्राम में लाखों योद्धाओं को जीतता है, यदि वह एकमात्र अपनी आत्मा को जीत ले, तो यह उसकी सर्वश्रेष्ठ विजय है।

९१ अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध करना चाहिए, बाहरी स्थूल शत्रुओं के साथ युद्ध करने से क्या लाभ? आत्मा के द्वारा आत्मा को जीतनेवाला ही वास्तव में पूर्ण सुखी होता है।

९२ पाँच इन्द्रियाँ, क्रोध, मान, माया, लोभ तथा सबसे अधिक दुर्जय अपनी आत्मा को जीतना चाहिए। एक आत्मा को जीत लेने पर सब कुछ जीत लिया जा सकता है।

९३. सिर काटनेवाला शत्रु भी उतना अपकार नहीं करता, जितना दुराचरण में लगी हुई अपनी आत्मा करती है। दयाशून्य दुराचारी को अपने दुराचरणों का पहले ध्यान नहीं आता; परन्तु जब वह मृत्यु के मुख में पहुँचता है, तब अपने सब दुराचरणों को याद कर-करके पछताता है।

६४ जिस साधक की आत्मा इस प्रकार दृढ़निश्चयी हो कि "मैं शरीर छोड़ सकता हूँ, परन्तु अपना धर्म-शासन नहीं छोड़ सकता", उसे इन्द्रियाँ कभी विचलित नहीं कर सकतीं, जैसे भीषण बवंडर सुमेरु पर्वत को।

६५ शरीर को नाव कहा है, जीव को नाविक कहा है और संसार को समुद्र बतलाया है। इसी संसार-समुद्र को महर्षि जन पार करते हैं।

६६. जो परोक्ष में किसीकी निन्दा नहीं करता, प्रत्यक्ष में भी कलहवर्द्धक बातें नहीं बकता, पीडा पहुँचानेवाली एवं भयकारी भाषा भी नहीं बोलता, वही पूज्य है।

६७. गुणों से साधु होता है और अगुणों से असाधु, अतः हे मुमुक्षु ! सद्गुणों को ग्रहण कर और दुर्गुणों को छोड़। जो साधक अपनी आत्मा द्वारा अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचानकर राग और द्वेष दोनों में समभाव रखता है, वही पूज्य है।

६८. जिस प्रकार कमल जल में उत्पन्न होकर भी जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार जो संसार में रहकर भी काम-भोगों से सर्वथा अलिप्त रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

६९. सिर मुँडा लेने से कोई श्रमण नहीं होता, 'ओम्' 'ओम्' का जाप कर लेने से कोई ब्राह्मण नहीं होता, निर्जन वन मे रहने से कोई मुनि नहीं होता और न कुशा के बने वस्त्र पहन लेने से कोई तपस्वी ही हो सकता है।

१००. समता से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है, मनन से–ज्ञान से–मुनि होता है और तप से तपस्वी बना जाता है।

१०१. मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय होता है, कर्म से ही वैश्य होता है और शूद्र भी अपने कृतकर्मों से ही होता है। (अर्थात् वर्णभेद जन्म से नहीं होता। जो जैसा अच्छा या बुरा कार्य करता है, वह वैसा ही ऊँचा या नीचा हो जाता है।)

१०२ जो दूसरों को 'यह दुराचारी है' ऐसा नहीं कहता, जो कटु वचन–जिससे सुननेवाला क्षुब्ध हो–नहीं बोलता, 'सब जीव अपने-अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ही सुख-दुःख भोगते हैं'–ऐसा जानकर जो दूसरों की निन्दा–

चेष्टाओं पर लक्ष्य न देकर अपने सुधार की चिंता करता है, जो अपने-आपको उग्र तप और त्याग आदि के गर्व से उद्धत नहीं बनाता, वही भिक्षु है।

१०३. भन्ते! कैसे चले? कैसे खड़ा हो? कैसे बैठे? कैसे सोये? कैसे भोजन करे? कैसे बोले?—जिससे पापकर्म का बन्धन न हो।

१०४. आयुष्मान्! विवेक से चले, विवेक से खड़ा हो, विवेक से बैठे, विवेक से सोये, विवेक से भोजन करे और विवेक से ही बोले, तो पाप-कर्म का बंधन नहीं हो सकता।

१०५. प्रथम ज्ञान है, पीछे दया। इसी क्रम पर समग्र त्यागी वर्ग अपनी संयम-यात्रा के लिए ठहरा हुआ है। भला अज्ञानी मनुष्य क्या करेगा? श्रेय तथा पाप को वह कैसे जान सकेगा?

१०६ मैं समस्त जीवों से क्षमा माँगता हूँ और सब जीव मुझे भी क्षमा-दान दें। सब जीवों के साथ मेरी मैत्री-वृत्ति है, किसीके साथ मेरा वैर नहीं है।

भारत जैन महामण्डल

[संक्षिप्त परिचय]

सन् १८८५ में देश में राष्ट्रीय और सामाजिक जाग्रति की शुरूआत हुई। राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस की स्थापना भी इसी समय हुई। इसके बाद तो अनेक धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक संस्थाएँ कार्य-क्षेत्र में उतरीं। जैन-समाज भी इससे अछूता न रह सका। सन् १८९५ में दिगम्बर जैन महासभा की स्थापना हुई। महासभा के चार-पाँच अधिवेशनों के बाद कुछ विचारवान् लोगों को महसूस हुआ कि साम्प्रदायिक घेरे में रहकर विचार को व्यापक स्वरूप नहीं दिया जा सकता। अतः सन् १८९९ में उन लोगो ने महासभा से पृथक् 'जैन यंग मैन्स एसोसिएशन' की स्थापना की।

जैन यंग मैन्स एसोसिएशन का पहला अधिवेशन रायबहादुर लाला सुलतान-सिंहजी रईस, दिल्ली के सभापतित्व मे हुआ। श्री बाबूलालजी वकील, मुरादाबाद और श्री सुलतानसिंहजी वकील, मेरठ इसके प्रथम मंत्री थे। प्रकाशित वक्तव्य में कहा गया था :

"जाति या आम्नाय (=सम्प्रदाय, पंथ) का भेदभाव गौण करके जैन मात्र में पारस्परिक सम्बन्ध का प्रचार करना एसोसिएशन का उद्देश्य है।"

धीरे-धीरे इस यंग मैन्स एसोसिएशन में बुजुर्ग लोग भी सम्मिलित होने लगे। अतः दस वर्षों बाद जयपुर के अधिवेशन में इसका नाम 'ऑल इण्डिया जैन एसोसिएशन' अथवा 'भारत जैन महामण्डल' कर दिया गया।

महामण्डल की स्थापना में बाबू सूरजमलजी वकील हरदा, बाबू बच्चूलालजी इलाहाबाद, बाबू देवकुमारजी रईस आरा, ज्योतिषरत्न चिरंजीलालजी फर्रुखनगर आदि विचारवान् युवकों का बहुत बड़ा हाथ रहा। बाद में रा० ब० बैरिस्टर जुगमंदरलालजी, बाबू अजितप्रसादजी लखनऊ, ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी,

वाडीलाल मोतीलाल शाह जैसे क्रांतिकारी विचारकों के संचालन में महामंडल अपनी विचारधारा समाज में फैलाता रहा। मल्हीपुर निवासी मास्टर चेतनदासजी जैन इस महामंडल के सन् १९३७ तक मंत्री रहे। आपने अपार उत्साह और स्नेह से मंडल की सेवा की है।

इसकी स्थापना करनेवाले चाहते थे कि जैनों के सब संप्रदायों में एकता और भाईचारा बढ़े तथा सम्प्रदाय-मोह के कारण होनेवाले आपसी झगड़ों का अन्त हो। गण्यमान्य नेताओं, कार्यकर्ताओं और विचारकों ने त्याग, लगन तथा सेवाओं द्वारा इस मंडल को एकता और प्रेमभाव बढ़ानेवाली संस्था बनाने का भरसक प्रयत्न किया। बीच के काल में मंडल की कोई आवाज नहीं रह गयी थी। इसके अनेक कारण थे। अंग्रेज सरकार का लाभ 'फूट डालो और राज्य करो' नीति फैलाने में था। समाज के व्यापारी और रईस प्रायः अंग्रेजों के समर्थक थे। परम्परागत साम्प्रदायिक संस्कारों का आवेश भी उभरता रहता था। छोटे-से या साम्प्रदायिक दायरे में जो प्रतिष्ठा या कीर्ति उपलब्ध हो सकती है, वह विशाल और व्यापक क्षेत्र में सम्भव नहीं होती। शिक्षा का विकास भी उस काल में समुचित नहीं हो पाया था। शिक्षण भी विदेशियों के हाथों में था। हमारे आपसी झगड़ों से उनकी आमदनी बढ़ती थी। ये और ऐसे ही सब कारण थे कि किसीको सांप्रदायिक दायरे से निकलने का अवसर नहीं मिलता था। फिर भी महामंडल के विचारशील कार्यकर्ता निराश नहीं हुए और उनके हाथों में यह किसी-न-किसी तरह जीवित रह सका। वे जानते थे कि समय आने पर आपसी झगड़े और मतभेद दूर होंगे और प्रत्येक व्यक्ति को अंत में प्रेम और भाईचारे की ओर ही जाना होगा।

सन् १९३७ के बाद महामंडल का कार्यालय वर्धा आ गया। वर्धा में इसका संचालन श्री चिरंजीलालजी बड़जाते अपनी शक्ति, बुद्धि और भावना से करते रहे। चिरंजीलालजी बड़जाते बहुत आशावान् और दूरदर्शी व्यक्ति हैं। उन्हें समाज का मुक्त सहयोग तो नहीं मिला, लेकिन वे जानते थे कि एक दिन इस संस्था की उपयोगिता समाज स्वयं महसूस करेगा। ये इस बात का बराबर ध्यान रखते रहे कि संस्था का पौधा मुरझा न जाय, अनुकूल प्रकाश और आबहवा मिलने पर तो वह अपने-आप पनपने लगेगा। वे नये-नये कार्यकर्ताओं को भी

इसके प्रति आकृष्ट करते रहे। आज भी चिरंजीलालजी इस संस्था के मन-प्राण हैं। श्री सुगनचंद्रजी लुणावत व श्री फकीरचंद्रजी जैन ने भी लगन के साथ सहयोग दिया और वर्षों तक मंत्रित्व का भार सँभाला। श्री राजमलजी ललवानी कार्याध्यक्ष रहे, बाद में श्री ताराचंद्रजी कोठारी भी कार्याध्यक्ष रहे। आजकल सेठ लालचंदजी दोशी, बंबई, कार्याध्यक्ष हैं।

सन् १९४७ में हमारा देश आजाद हुआ। कांग्रेस और गांधीजी की तपस्या सफल हुई। अंग्रेज यहाँ से चले गये। देश की परिस्थिति बदली। सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन हुआ। लोगों को महसूस हुआ कि अहिंसा में अनन्त शक्ति है। महामंडल भी कांग्रेस की तरह भाईचारे की नीति पर चल रहा था। महामंडल में साम्प्रदायिक मान्यताओं पर जोर देनेवाले और चलनेवाले लोग अवश्य रहे, किन्तु वे यह भी समझते थे कि अपनी मान्यताओं का पालन करना एक बात है और अपने से भिन्न सम्प्रदाय या मान्यता की निंदा-आलोचना करना एकदम दूसरी।

सन् १९४७ के आसपास श्री रिषभदासजी राका ने मंडल के कार्यों में दिलचस्पी लेना शुरू किया। उन्होंने महामंडल के मुखपत्र **जैन जगत्** मासिक का संपादन अपने जिम्मे लिया। मद्रास-अधिवेशन के वे सभापति बने। उनके कारण महामंडल में नवीन चेतना निर्माण हुई। अनेक नयी प्रवृत्तियाँ शुरू हुईं। विभिन्न संप्रदायों की प्रमुख संस्थाओं तथा नेताओं से सम्पर्क बढ़ा। समाज के सन्त-मुनियो ने भी इस ओर ध्यान दिया। महामंडल की ओर से प्रवास भी किया। प्रकाशन-कार्य शुरू किया गया। ग्रंथमालाएँ स्थापित की गयी। जो काम पिछले ५० वर्षों में नहीं हो सका, वह इन ५-७ वर्षों में हुआ। समाज और देश के विचारकों तथा लेखकों का हार्दिक सहयोग मिला। जैन जगत् के संपादन तथा ग्रंथमालाओं के काम में शुरू से ही श्री जमनालालजी जैन का सहयोग रहा।

महामंडल के विचारों को समाज में फैलाने में साहूबंधुओं का आत्मीय सहयोग सदा ही मिला है। उन्होंने केवल आर्थिक ही नहीं, सक्रिय सहायता भी पहुँचायी है। आज महामंडल का जो कुछ स्वरूप दिखाई देता है, उसमें साहूबंधुओं का सहयोग स्पष्ट है।

अब तक महामंडल के कुल ३६ अधिवेशन हो चुके हैं। इन अधिवेशनों में समाज को उन्नति, सुधार और भाईचारे की तरफ मोड़नेवाले विधायक और निषेधक प्रस्ताव भी होते रहे है। संस्थाओं के अधिवेशनों में प्रायः प्रस्ताव पास करने की परम्परा रही है। लोग समझते है कि प्रस्ताव पास कर देने मात्र से उनका और संस्था का कर्तव्य पूरा हो जाता है। प्रस्तावों से कार्य हो या न हो, वातावरण में वैसी हवा तो बनती ही है। प्रस्ताव विचार-प्रवाह के प्रतीक होते है। इस दृष्टि से देखने पर प्रतीत होगा कि महामंडल की ओर से जैसे प्रस्ताव हुए हैं, वे समाज को एकता, अभेद और भाईचारे की ओर ले जाने के लिए अनुकूल वातावरण बना सकते हैं। अभी-अभी जनवरी '६० मे महामंडल का हीरक-जयंती समारोह तथा ३६वाँ अधिवेशन साहू शातिप्रसादजी के सभापतित्व में बंबई मे हुआ।

इस समय हमारे देश के सामने चहुँमुखी निर्माण की अनेक योजनाएँ है। विज्ञान इतनी तेज गति से बढ़ता जा रहा है कि अब कोई भी राष्ट्र या कोई भी व्यक्ति अपने को अलग नही रख सकता। पहले जो काम पचास वर्षों में होता था, वह अब एक दिन में हो जाता है। देशो की दूरियाँ मिटती जा रही है। धर्म, जाति, भाषा और पंथ के भेद अब टिकनेवाले नहीं हैं। जिस युग में आज का मानव साँस ले रहा है, वह विज्ञान का युग है, चन्द्रलोक के ऊपर छलाँग मारने का युग है। इस युग में 'मैं-मेरा' नहीं चल सकता। जैन-समाज को भी अब विशाल दृष्टि से अपने भविष्य के बारे में सोचना होगा। विचार के नये-नये स्रोत उसके सामने आ गये हैं। अब विश्व-मानव ही हमें बनना होगा। एक समाज का हित विश्व-हित मे ही है। जैन-समाज को इस बात का अब गहराई से विचार करना है कि उसके पास अहिसा की और अनेकात की जो अमूल्य विरासत है, उसका इस युग में किस प्रकार प्रयोग किया जाय। यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि इस विज्ञान-युग में या तो हिंसा की ही विजय होगी या अहिंसा की ही। हमारे पास अहिसा की जो निधि है, उसका सूक्ष्म अन्वेषण तथा प्रयोग करके साबित करना होगा कि विश्व की रक्षा अब अहिसा की शक्ति से ही संभव है। लेकिन इसके अमल की जिम्मेवारी सबसे पहले हम पर ही आती है।

इस समय महामंडल की ओर से 'जैन जगत्' मासिक निकलता है। इसका संपादन श्री रिषभदासजी रांका करते है और श्री कनकमलजी सूनोत, पूना प्रकाशक हैं। जैन जगत् की नीति शुरू से ही व्यापक रही है।

देश के अनेक प्रांतों में महामंडल की शाखाएँ भी है। बंबई, वर्धा, दिल्ली तथा भेलसा में शाखाएँ हैं।

इस समय महामंडल के मंत्री श्री सोहनलालजी कोठारी बंबई तथा श्री सौभाग्यमलजी जैन शुजालपुर हैं।

श्री चिरंजीलालजी बड़जाते

जीवन-परिचय

[जमनालाल जैन]

राजस्थान के जयपुर जिले में उग्रास गाँव है। वहाँ दिगम्बर जैन धर्मावलंबी खंडेलवाल जाति के बड़जात्या गोत्र का एक अच्छा परिवार था। चिरंजीलालजी बड़जाते उसी परिवार के हैं।

चिरंजीलालजी के पिता चार भाई थे : गौरीलालजी, मोहरीलालजी, गणेशीलालजी और विजयलालजी। मोहरीलालजी अपने काका रामलालजी के दत्तक चले गये थे। आपके दो पुत्र और एक पुत्री हुई। एक चिरंजीलालजी और दूसरे कुन्दनमलजी। पुत्री का नाम रतनबाई था।

बचपन और पढ़ाई

चिरंजीलालजी का जन्म आश्विन बदी ८ वि० संवत् १६५२ को हुआ। गाँव का वातावरण और लगभग ६० वर्ष पहले की स्थिति! चिरंजीलालजी को ७ वर्ष की उम्र में मोजमाबाद मामा के यहाँ पढ़ने के लिए भेज दिया गया। मौलवी साहब से उर्दू तथा जोशीजी से गिनती और बारहखड़ी सीखते रहे! उस जमाने में अच्छे अक्षर लिखना और पहाड़े याद कर लेना कामकाज के लिए काफी माना जाता था। जोशीजी को महीने में एक सेर आटा दिया जाता था! मौलवी साहब को भी विशेष कुछ नहीं दिया जाता था।

रोज सबेरे नहा-धोकर मंदिर जाने का रिवाज आज भी कायम है। आजकल शहरों में रहनेवाले तथा अधिक पढ़े-लिखे लोग मंदिर आदि नहीं जाते या इस प्रकार की प्रवृत्ति को विशेष महत्त्व नहीं देते, लेकिन उस जमाने में मंदिर जाना, देवदर्शन करना एक महत्त्व की बात थी। उसमें समाज का संगठन भी था। शास्त्र-सभा, पूजा-अर्चा, व्रत-नियम रखने के सामूहिक उपक्रम होते थे। छोटे-छोटे बालक भी बड़े उत्साह और भक्ति से मंदिर जाते थे। अनेक पद-विनतियाँ और स्तोत्र उन्हें अपने-आप कंठस्थ हो जाते थे। व्रत-उपवास का अभ्यास भी होता

था। चिरंजीलालजी रोज मंदिर जाते थे। दशलक्षण व्रत के दिनों में व्रत रखते थे।

कुछ ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हो गयीं कि चिरंजीलालजी अपने मामा के यहाँ नहीं रह सके। नानाजी का स्वर्गवास भी हो गया था। अतः वे अपनी माँ के साथ द्रुग (म० प्र०) आ गये।

पहली नौकरी

आपके पिता श्री मोहरीलालजी द्रुग में नौकरी करते थे। पढ़ाई का अध्याय तो मोजमाबाद में ही समाप्त हो गया था। अब तो चिरंजीलालजी को भी काम-धंधे में जुतना था। पिताजी ने श्री बागमल जुगराज नामक फर्म में इनको रख दिया। उनसे इनको कुछ व्यावहारिक ज्ञान मिला। कुछ समय बाद चिरंजीलालजी को भाटापारा के श्री हीरालालजी भट्टड़ के यहाँ रख दिया। हीरालालजी चिरंजीलालजी पर खूब प्यार करते थे, खूब सिखाते थे। यहाँ तक कि जब चिरंजीलालजी भोजन करते, तभी वे भोजन करते। लेकिन वे पीटते भी खूब थे। मन से वे पीटना नही चाहते थे, लेकिन पीटना उनका स्वभाव बन गया था। जरा-जरा-सी बात पर पीट देते थे।

एक बार की बात है कि भाटापारा में गुरु गोपालदासजी बरैया आये हुए थे। उनका व्याख्यान होनेवाला था। वे व्याख्यान मे जाना चाहते थे। हीरालालजी ने कहा कि जाना हो, तो रोकड़ मिलाकर जाओ! रोकड़ मिलाने लगे, तो सौ रुपये घटने लगे। चिरंजीलालजी चिन्तित तो हुए, लेकिन व्याख्यान में जाने की धुन इतनी सवार थी कि हीरालालजी से कह दिया—रोकड़ मिल गयी और व्याख्यान में चल दिये। व्याख्यान से लौटने पर सौ रुपये की चिन्ता सवार हो गयी। उन दिनों सौ रुपये बहुत बड़ी बात थी। बहुत सोचने पर भी इनके ध्यान में नहीं आया कि सौ रुपये कहाँ गये, किसको दिये। आखिर अनेक प्रकार के डर से भयभीत होकर इन्होने तय किया कि कुएँ में गिर पड़ना चाहिए। वे कुएँ पर चले भी गये। संयोग से कुआँ पुलिस-चौकी के पास था। पुलिसवाला चिरंजीलालजी को पहचानता था। उसने इनको खूब डाँटा। इन्होंने टट्टी लगने का बहाना कर दिया। वापस लौट आये।

सबेरा हुआ। सेठ हीरालालजी ने स्वयं रोकड़ मिलायी। चिरंजीलालजी ने सौ रुपये की बात कह दी। इतने में पड़ोस का दूकानदार सौ रुपये लेकर आ रहा था। उसको देकर वे भूल गये थे। अब रोकड मिल गयी। अब पुलिसवाला भी आ गया। उसने सेठ से रात की बात कह दी। इस पर सेठ ने खूब पीटा। सारी बात सच-सच बता दी, तो और पीटा।

बाद में जब गोपालदासजी बरैया रायपुर गये, तब चिरंजीलालजी भी सेठजी को चाभी सौंपकर रायपुर चले गये। बरैयाजी के साथ उन दिनों ब्र० मोतीलालजी रहते थे। उनका वैराग्य पर बड़ा अच्छा भाषण हुआ। इनकी इच्छा भी ब्रह्मचारी बनने की हो गयी। उन दिनों चिरंजीलालजी के पिता भागलपुर रहते थे। उनके मित्र ने तार करके उनको बुलाया। इनकी माँ द्रुग में थी। पिताजी आये और फुसला-मनाकर बेटे को द्रुग ले गये। वहाँ माँ की ममता में ब्रह्मचारी बनना भूल गये। द्रुग में चिरंजीलालजी सेठ जुहारमल छोगालाल के यहाँ नौकरी करने लगे।

दत्तक जाने की घटना

द्रुग अनाज की अच्छी मंडी थी। वर्धा-हिंगणघाट के लोग अनाज खरीदने द्रुग की तरफ जाया करते थे। एक बार एक विवाह में हिंगणघाट के सेठ निहालचंदजी दोशी द्रुग गये। उन्होंने चिरंजीलालजी को देखा। उन दिनों चिरंजीलालजी पर तरुणाई का तेज था। बहुत सुंदर दीखते थे। गला भी मधुर था। निहालचंदजी ने इनसे कहा कि "वर्धा में सेठ पन्नालालजी का स्वर्गवास हो गया है, बडजाते गोत्र के लडके की जरूरत है। क्या तुम गोद जाओगे ?"

चिरंजीलालजी ने इनकार कर दिया। कहा कि "गोद तो नहीं जाऊँगा, अगर अच्छी नौकरी मिलती हो, तो जरूर जाऊँगा।"

निहालचन्दजी ने अपने पिता श्री चाँदमलजी से जिक्र किया। हिंगणघाट में ही स्व० पन्नालालजी के बहनोई हरकचन्दजी दोशी रहते थे। आखिर वर्धा-हिंगणघाट वालों के सलाह-मशविरे से पन्नालालजी के मुनीम द्रुग आये और चिरंजीलालजी को वर्धा ले गये। उस समय चिरंजीलालजी के पिता राजस्थान में थे। चिरंजीलालजी नौकरी के आश्वासन पर वर्धा चले गये।

चिरंजीलालजी बताते हैं कि उनकी गाडी शाम को ५ बजे वर्धा पहुँची। स्टेशन पर दिगम्बर जैन बोर्डिङ्ग हाउस के १५ विद्यार्थी स्वागत के लिए उपस्थित थे। बोर्डिङ्ग के सेक्रेटरी श्री जयचन्द्रजी श्रावणे फूल-माला लिये हुए थे। उन्होंने चिरंजीलालजी को माला पहनायी। यह सब देखकर चिरंजीलालजी तो अवाक् और स्तब्ध रह गये। उनके लिए यह एकदम नयी और अनोखी बात थी।

स्टेशन से चिरंजीलालजी घर गये। घर पर दो विधवा महिलाएँ थीं। दोनों को चिरंजीलालजी ने प्रणाम किया। दोनों ने उनको आशीर्वाद दिया। मीठा भात का भोजन बना था। उस समय चिरंजीलालजी की उम्र १५ वर्ष थी। दोनों महिलाओं में एक स्व० जेठमलजी की पत्नी थीं और दूसरी स्व० पन्नालालजी की। रात को दिगंबर जैन मंदिर में शास्त्रसभा हुई। शास्त्रसभा के अन्त में चिरंजीलालजी ने एक भजन गाया। समाज के लोग बहुत खुश हुए। रात को चिरंजीलालजी बडी माँ यानी स्व० जेठमलजी की पत्नी के पास सोये। बड़ी माँ की गोद में सोकर चिरंजीलालजी को ऐसी अनुभूति हुई कि उनकी जननी यही हैं और वे स्वर्ग में आ गये हैं। कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि अब उन्होंने तय कर लिया कि वे नौकरी करें या दत्तक आयें, यहीं रहेंगे।

वर्धा की दूकान

वर्धा में सेठ कुन्दनमल चंपालाल नाम की बड़ी प्रसिद्ध और सम्पन्न फर्म थी। कपड़े का कारोबार था। कुन्दनमलजी और चंपालालजी भाई थे। इनके एक भाई मन्नालालजी और थे। मन्नालालजी अलग हो गये थे। कुन्दनमलजी और चंपालालजी मिलकर काम करते थे। कुन्दनमलजी के पुत्र जेठमलजी थे और चंपालालजी के पुत्र थे पन्नालालजी। जब चिरंजीलालजी वर्धा आये, तब जेठमलजी और पन्नालालजी दोनों भाइयो का स्वर्गवास हो चुका था। जेठमलजी के स्वर्गवास के बाद छोटे भाई पन्नालालजी ने बड़ी शालीनता और बुद्धिमानी से घर तथा दूकान को सँभाला। अपनी भौजाई की श्रद्धा और आदरपूर्वक सार-सँभाल की। बड़े सफल और कुशल व्यापारी थे। उदार तथा प्रभावशाली थे। आन के पक्के थे। लाखों रुपये कमाये थे। दिगंबर जैन मंदिर में नीचे एक वेदी बनवायी। प्रतिष्ठा करायी। खंडेलवाल पंचायत के लिए एक हजार रु० के

बर्तन मँगा दिये। जैन बोर्डिङ्ग में २१०१) दिये। सरावगियों के मुकुट थे। अपने स्वर्गवास के समय वे एक मृत्युपत्र लिख गये और अपनी जायदाद तथा कारोबार की देखरेख के लिए सेठ जमनालालजी बजाज, चैनसुखजी छावड़ा, कृष्णरावजी काशे आदि को ट्रस्टी नियुक्त कर गये। यह भी लिखा कि एक लड़का भौजाई के नाम पर और एक मेरे नाम पर दत्तक लिया जाय। दोनों यानी जिठानी-देवरानी राजी हों, तो एक ही लड़का लिया जा सकता है। दोनों ने एक-एक लड़का लेना ठीक समझा।

दूकान पर चिरंजीलालजी को बहीखाते का काम दिया गया। उन्हे बहीखाता आता ही था। सेठ जमनालालजी के दर्शन के लिए उनको मुनीमलोग ले गये। चिरंजीलालजी ने विनयपूर्वक प्रणाम किया। बातचीत हुई। जमनालालजी ने कुछ जानकारी पूछी। लिखवाया भी। बहुत खुश हुए। सेठजी ने चिरंजीलालजी के पिता को तार देकर बुलाया। गोद देने की शर्तें तय हुई। चिरंजीलालजी के पिताजी की मुख्य शर्त यह थी कि चिरंजीलालजी की जो सगाई मोजमाबाद में हो गयी है, वह कायम रहे और वहीं शादी हो। सेठ जमनालालजी तथा चिरंजीलालजी की माँ के अलावा सब कुटुंबीजन चाहते थे कि यह शर्त न रखी जाय। आखिर चिरंजीलालजी के पिताजी का आग्रह देखकर वही सगाई कायम रही।

सूरजमलजी दत्तक आये

अब चिरंजीलालजी की काकीजी की इच्छा थी कि उनके लिए भी लड़का दत्तक लाया जाय। अतः बुलढाना के श्री दलसुखजी बडजाते के पुत्र श्री सूरजमलजी को पन्नालालजी के नाम दत्तक लाया गया।

दोनों दत्तकविधान शानदार हुए। उत्सव में बड़े-बड़े धनी, अफसर, नेता शरीक हुए।

विवाह

चिरंजीलालजी का विवाह मोजमाबाद में श्री सूवालालजी गोधा की कन्या प्रमिलादेवी के साथ हुआ। बरात वर्धा से गयी। करीब १०० बराती थे। पाँच रोज बरात रुकी। मोजमाबाद में लगभग पाँच सौ रिश्तेदार शरीक हुए।

२८ कनस्तर घी खर्च हुआ। अंतिम दिन घी कम पड़ गया। चिरंजीलालजी यह घटना बड़े मजे से सुनाते हैं कि घी खतम होने पर उनके रिश्ते के भाई गुलाबचंदजी घी का पात्र उठाकर पंक्ति में 'घी लो, घी लो' कहते हुए बढ़ जाते थे, पर परोसते किसी-किसीको ही थे। घी की व्यवस्था तत्काल करना कठिन था। बरातियों के आग्रह से मुनीमों ने रंडियों का नाच भी करवाया था। सेठ जमनालालजी को जब मालूम हुआ, तो उन्होंने काफी उलहना दिया। बरात मेजवानी और स्वागत पाते-पाते १५ रोज में वर्धा लौटी। इस फजूलखर्ची पर जमनालालजी बहुत नाराज हुए।

पत्नी की पढ़ाई

उस जमाने में जब लडकों की ही पढ़ाई नहीं होती थी, तब लड़कियों की पढ़ाई की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। चिरंजीलालजी की पत्नी अपढ़ थी, रहन-सहन का ढंग भी नहीं था। बाद में चिरंजीलालजी की काकीजी और उनकी पत्नी में कुछ अनबन भी रहने लगी। चिरंजीलालजी के मन में भी असंतोष था ही। उन्होंने जमनालालजी बजाज के सामने सारी परिस्थिति और अपनी व्यथा रखी। उसी अर्से में स्व० माणिकचन्दजी जे० पी० बंबई की पुत्री मगनबाई वर्धा आयी थीं। जमनालालजी का उनसे परिचय था ही। उन्होंने चिरंजीलालजी की माँ को समझाया कि बहू को बंबई मगनबाई के पास पढ़ने के लिए भेज दो। लेकिन वे इनकार हो गयीं। लेकिन जमनालालजी ने चतुराई से चिरंजीलालजी की पत्नी को बंबई भेज दिया। लेकिन जैसे ही उनकी माँ को यह बात मालूम हुई, खूब क्लेश हुआ। बहू दो महीने भी बंबई नहीं रह पायी कि मुनीम को भेजकर बहू को बुला लिया। बंबई जाने से रहन-सहन में थोड़ा सुधार हुआ। चिरंजीलालजी कहते हैं कि साडी पहनने का तरीका भी आया। वे यह बात आज भले ही विनोद मे कहते हैं, लेकिन ५० वर्ष पहले तो यह दर्द ही रहा होगा। वर्धा में ही एक शिक्षिका रखकर पढ़ाने का प्रबंध किया गया। धीरे-धीरे सामाजिक वातावरण में रहने और सुधारों के असर के कारण चिरंजीलालजी के विचारों के अनुकूल अपने को ढालने में उनकी पत्नी पीछे नहीं रहीं।

बँटवारा

चिरंजीलालजी और सूरजमलजी लगभग बारह बरस तक एक साथ रहे, कारोबार संयुक्त चलता रहा। चिरंजीलालजी का झुकाव धीरे-धीरे सार्वजनिक कार्यों, देशभक्ति तथा समाज-सुधार की ओर होने लगा। सेठ जमनालालजी बजाज के संपर्क के कारण यह प्रवृत्ति जोर पकडने लगी। नेताओं, सुधारकों तथा देशभक्तों से घनिष्ठता बढ़ने लगी। इससे खर्च बढ़ने लगा। भाइयों में खिचाव-तनाव बढ़ने लगा। अनबन जैसी परिस्थिति हो गयी। ऐसी शंका भी होने लगी कि कहीं मामला कोर्ट-कचहरी तक न चला जाय। इस मामले में श्री चैनसुखदासजी छावड़ा का बड़ा उपकार मानना चाहिए कि उन्होंने प्रयत्न करके आपस में मामला निपटा दिया। पाँच पंच मुकर्रर हुए, जिनमें जमनालालजी, जाजूजी, श्री मनोहर पंत देशपाडे, काणे साहब आदि थे।

नुकसान और नौकरी

सार्वजनिक तथा राष्ट्रीय प्रवृत्तियों में भाग लेने के कारण चिरंजीलालजी दूकान की तरफ ध्यान नहीं दे सके और हालत यह हो गयी कि दूकान ठप हो गयी। लोगों की तरफ लगभग सवा लाख रुपया लेना था, वह डूब गया और इतना ही कर्ज सिर पर चढ़ गया। लेनी रकम के लिए किसी पर नालिश नहीं की जा सकी। जमनालालजी को सारी परिस्थिति समझायी गयी। उन्हें काफी दुःख हुआ। कुटुंबियों ने चिरंजीलालजी को सलाह दी कि वे दिवालिया बन जायँ, लेकिन जमनालालजी ने ऐसा करने से रोका। उन्होंने सारी जायदाद बिकवाकर और अपने पास से २५ हजार रुपये कर्ज देकर लोगों की पाई-पाई चुकायी। ये रुपये आगे चलकर चिरंजीलालजी ने चुका दिये।

ऐसी स्थिति मे नौकरी के सिवा कोई चारा नहीं था। चिरंजीलालजी पढ़े-लिखे नहीं थे, सम्पन्न घर में आये थे, राजसी ठाठ में रहे थे और दुनिया का दूसरा यानी अभावग्रस्त पहलू नहीं देखा था। मालिक रहे हुए व्यक्ति के लिए नौकरी करना कितना मुश्किल होता है, इसे भुक्तभोगी ही जान सकता है! लेकिन परिस्थिति के आगे आदमी विवश होता है। यह तो चिरञ्जीलालजी का परम भाग्य था कि इन्हें सेठ जमनालालजी बजाज जैसे आदर्श पुरुष का संपर्क

सधा, उनकी सहानुभूति और आत्मीयता मिली। सन् १६२७ में नौकरी स्वीकार की और जमनालालजी का जो पल्ला पकडा सो अब तक उनका रोम-रोम जमनालालजी के उपकारों से प्लावित है। ३० वर्ष तक उनके यहाँ नौकरी की, लेकिन जमनालालजी ने भी इनकी शान को निबाहा, आदर दिया। चिरंजीलालजी ने भी जमनालालजी के चरणों में अपने को संपूर्ण रूप से, हर क्षण के लिए समर्पित कर दिया। कभी उन्होंने अपनी वेतनवृद्धि के लिए नहीं कहा, कभी मदद के लिए नहीं कहा, कभी पुत्रों की छात्रवृत्ति के लिए नहीं कहा! जब भी चिरंजीलालजी को किसी तरह की आवश्यकता हुई, वह अपने-आप पूरी होती चली गयी। चिरंजीलालजी को स्वयं को आश्चर्य होता है कि जमनालालजी ने उनमें ऐसी क्या बात देखी कि एक नाचीज को इतना बढ़ावा दिया! जमनालालजी वस्तुतः जीवनपारखी जौहरी थे।

चिरंजीलालजी जीवन में लगभग १५ कंपनियों के डाइरेक्टर, सेक्रेटरी, चेअरमैन आदि रहे, बड़े-बड़े मुकदमों में काम किया। देशभक्तों, व्यापारियो, त्यागियों से संबंध आया।

सामाजिक क्षेत्र में

समाज-सेवा का बीज चिरंजीलालजी में बचपन से ही था। वह बीज जानदार था। हम देख चुके हैं कि १०-१२ वर्ष की उम्र में ही वे रोकड़ मिलाना छोड़कर गुरु गोपालदासजी के भाषण में दौड पड़े थे। फिर ब्रह्मचारी होना चाहते थे। समाज-सेवा के क्षेत्र में आने में सेठ जमनालालजी के संपर्क ने सिंचन का काम किया। उन्हींकी प्रेरणा से चिरंजीलालजी सन् १६२३ में झंडा-सत्याग्रह में तथा १६३० मे जंगल-सत्याग्रह में जेल गये। हौसला बढ़ता गया, कदम आगे बढ़ते गये। जीवन में ऐसे ही निमित्त मिलते गये कि जिनके कारण चिरंजीलालजी समाज-सेवा की ओर उत्तरोत्तर अग्रसर होते गये।

पं० उदयलालजी काशलीवाल की मित्रता

पं० उदयलालजी बंबई रहते थे। उन्होंने चिरंजीलालजी का नाम सुन रखा था। पढ़े-लिखे भावनाशील व्यक्ति थे। उन्होंने एक पत्र चिरंजीलालजी को लिखा कि दुनिया में मेरा कोई नहीं है—न भाई, न पिता, न माता। आप मेरे

भाई बन जायँ। पत्र का चिरंजीलालजी पर कुछ ऐसा असर हुआ कि उन्होंने तुरंत लिख दिया कि मैं आपका भाई हूँ। दोनों में से किसीने एक-दूसरे को देखा नहीं, जाना नहीं, फिर भी कुछ ऐसी आंतरिक प्रेरणा हुई कि भाई बन गये।

इस अर्से में महात्मा भगवानदीन जी, अर्जुनलालजी सेठी से संपर्क बढ़ा। महात्माजी और सेठीजी वर्धा आये। हमेशा उनके संपर्क में रहने के कारण चिरंजीलालजी समाज-सेवा और राजनीति की तरफ झुकते गये, हिम्मत बढ़ती गयी। एक जैन पोलिटिकल कान्फरेंस भी वर्धा में हुई। वह अपने ढंग की अनूठी थी।

जाति-बहिष्कार का मामला

चिरंजीलालजी का मन तो खूब उछलता था, लेकिन उनकी माँ पुराने विचारों की थीं। चैनसुखदासजी छावडा, जो एक ट्रस्टी थे, स्थितिपालक थे। वे सरल और सेवाभावी तो थे, लेकिन चिरंजीलालजी उनसे बहुत डरते थे। इस कारण आगे बढ़ नहीं पाते थे। इसी बीच एक ऐसी घटना हो गयी कि उसने चिरंजीलालजी को बागी बना दिया।

वर्धा में महात्मा गांधीजी को मानपत्र देने का विचार हुआ। मानपत्र म्युनिसिपल मैंबर की हैसियत से देना था। गाधीजी ने शर्त रखी कि वे मानपत्र तब स्वीकार करेंगे, जब वर्धा के सब कुएँ हरिजनों के लिए खोल दिये जायँ। म्युनिसिपल कमेटी ने उनकी यह शर्त मंजूर कर ली और ७० कुएँ हरिजनों के लिए खुले कर दिये। इसका एक समारोह जमनालालजी बजाज के बगीचे में हुआ। वहाँ हरिजन भाई आये और उन्होने कुएँ से पानी निकाला। चिरंजीलालजी ने भी अपने हाथ से पानी खींचकर पीया। चिरंजीलालजी के इस कार्य को समाज में 'अपराध' माना गया। पंचायत बैठी और एक महीने तक चलती रही। सिवनी से चैनसुखदासजी छावड़ा को बुलाया गया। पंचायत ने फैसला सुनाया कि चिरंजीलालजी रामटेक की यात्रा करें, शांतिनाथ भगवान् की पूजा करें, ११) भंडार में चढ़ायें और आगे से ऐसे कामों में भाग न लें। अगर चिरंजीलालजी को यह बात मंजूर हो, तो उनसे संबंध रखा जाय, नहीं तो उनके साथ खान-पान बंद कर दिया जाय।

समाज के लोगों ने चिरंजीलालजी के साथ खानपान बन्द कर दिया। इतना ही नहीं, जो लोग बाहर से आते थे, उनको भी रोकते थे और कहते थे कि ढेड़ (महार) के यहाँ मत जाइये। (महाराष्ट्र में 'ढेड' नामक एक अछूत या नीच जाति होती है। उसीका नाम लेकर चिरंजीलालजी को उस कोटि का बताया जाता था। एक प्रकार से यह गाली ही थी।)

चिरंजीलालजी पूरी तरह सुधारक तो बने नहीं थे, समाज और जाति का मोह भी उनमें था ही। बल्कि कहना चाहिए, डर भी था। अगर वे चुप रह जाते, तो भी कुछ नहीं था। उन्होंने नागपुर प्रातीय खंडेलवाल सभा में अपील कर दी। उन दिनों इस सभा का संगठन देखने लायक था। सभा ने चिरंजी-लालजी को निर्दोष सिद्ध कर दिया। इस पर भी वर्धा के लोगों ने जिद नहीं छोड़ी। उनको माँ पर व्यंग्य कसते और जब वे मंदिर जातीं, तो बहकाते भी। उनको भी लोग ढेडनी कहते! अब वर्धा के पंचों ने चिरंजीलालजी के विरुद्ध खंडेलवाल महासभा मे अपील की। यह अखिल भारतीय संगठन था। सभा का अधिवेशन मोजमाबाद में था। चिरंजीलालजी का भी वहाँ एक व्याख्यान हुआ। वहाँ २५ हजार जैनी एकत्र हुए थे। उन सबमे एक चिरंजीलालजी ही खादीधारी तथा मूँछ-रहित थे। लोग चिरंजीलालजी को देखते और इशारा करते, यह आया है रांडों का विवाह करानेवाला! जब चिरंजीलालजी मन्दिर गये, तब कुछ लडके दरवाजे पर गाना गा रहे थे। गाने की पंक्ति इस प्रकार थी:

'वर्धा के भ्रष्टाचारी ने राडों का ब्याह रचाया है।'

असल में चिरंजीलालजी उस समय तक विधवा-विवाह के प्रचारक या समर्थक भी नहीं थे, लेकिन लोगों ने जबरदस्ती बना ही दिया। कभी-कभी ऐसी घटनाएँ भी बड़ी काम की साबित हो जाती हैं। बुराई में से भलाई निकलना इसीको कहते हैं। उनमें अपने-आप हिम्मत आ गयी।

खंडेलवाल महासभा ने चिरंजीलालजी के मामले के लिए एक कमेटी बैठायी। कमेटी ने फैसला सुनाया कि चिरंजीलालजी मन्दिर में एक नारियल चढ़ा दें। चिरंजीलालजी ने फैसले को अस्वीकार कर दिया और यह बात समाचार-पत्रों में प्रकट कर दी। यों एक नारियल की कोई कीमत नहीं थी और

मंदिर में नारियल तो हमेशा चढ़ता ही था। लेकिन सजा के रूप में नारियल चढ़ाना उन्हें स्वीकार नहीं था।

माँ की व्यथा

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, चिरंजीलालजी की माँ पुराने विचारों की धर्मपरायण सात्त्विक महिला थीं। चिरंजीलालजी के सुधारप्रिय विचारों से तथा समाज के असहयोग और व्यंगों से वे सदा दुःखी रहती थीं। एक बार वर्धा में ऐलक पन्नालालजी महाराज का चातुर्मास हुआ। वे हमेशा दोपहर को शास्त्र-प्रवचन करते थे। चिरंजीलालजी भी उसमें जाते थे। वे हमेशा ताना मारते रहते कि सुधारक लोग अपनी माँ का ब्याह क्यों नहीं करते! वे नाम तो नहीं लेते थे, लेकिन इशारा चिरंजीलालजी की ओर ही रहता। ऐसी स्थिति में एक भावनाशील धर्मभीरु माँ के दिल को कितनी चोट पहुँच सकती है, इसकी कल्पना की जा सकती है! चिरंजीलालजी कहते हैं कि जब वे सोने गये, तो उनकी माँ खूब रोयीं! अंत में तो चिरंजीलालजी ने भी चतुराई और सेवा से ऐलक महाराज को खुश कर लिया और वे भी ऐसी बातें करना भूल गये।

माँ के दुःखी हृदय को समाधान देने के लिए सेठ जमनालालजी ने श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर में संत एकनाथ, ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि के संबंध में व्याख्यान कराये, नाटक भी कराये। इनका चिरंजीलालजी की माँ पर काफी असर हुआ। जानकीदेवी बजाज भी उनको समझाती रहती थीं। इससे चिरंजीलालजी की माँ में हिम्मत आयी।

समाज-सुधार की दिशा में

आज तो हम १९६० मे जी रहे है। देश स्वतंत्र हो गया है। दुनिया के और देशों के साथ हमारे सम्बन्ध बढ़ गये हैं, बढ़ते जा रहे हैं। देशों ही नहीं, चन्द्रलोक की दूरी भी क्षण-क्षण पर कम होती जा रही है। कानून भी हमारा साथ दे रहे हैं। लेकिन कल्पना कीजिये, चालीस-पचास वर्ष पहले की! वह ऐसा समय था, जब लोग अपनी जाति को ही सर्वश्रेष्ठ मानते थे और ऐसा नियम लेने में गर्व का अनुभव करते थे कि वे और किसी जाति के हाथ का नहीं खायेंगे। खंडेलवाल जैनी सैतवाल जैनी के हाथ का भोजन नहीं करते थे। क्या जमाना था वह!

एक तरफ तो मानवता की ऊँची-ऊँची बातें होती थीं, अध्यात्म की दुहाई दी जाती थी और दूसरी ओर व्यवहार में जाति और परम्परा का इतना प्राबल्य था कि मानवता काँप उठती थी। क्रांतदर्शी वही होता है, जो युग के आगे की, बुनियाद की सोचता है। चिरंजीलालजी क्रांतदर्शी तो नहीं थे, किन्तु इतना पहचान गये थे कि युग का निर्माण करनेवाले ही सही मार्ग पर हैं। युग के प्रवाह में तो जनता बहती ही है। संयोग ऐसे मिलते गये कि चिरंजीलालजी सुधारकों के संपर्क में आते गये।

वर्धा के पास देवली नाम एक कसबे का स्थान है। वहाँ पर श्री रुखबसावजी मेघल नामक सज्जन रहते थे। बड़े परोपकारी और धर्मनिष्ठ थे। उन्होंने देवली में एक जैन मेला भराया। उसमें उन्होने घोषित कर दिया कि सब जैन एक हैं और सैतवाल जाति की बहनों को चौके में प्रवेश करने दिया जाय। धीरे-धीरे पद्मावती परवार, बन्नोरे, बघेरवाल और गंगेरवाल जातियों में रोटी-बेटी व्यवहार शुरू हो गया। सैतवालों में भी ऐसे संबंध होने लगे। वर्धा में पहला अंतर-जातीय विवाह श्री आर० पी० काले ने किया। बाद में तो आपने विधवा-विवाह ही किया। इस तरह अंतरजातीय विवाह का प्रचार बढ़ता गया। चिरंजीलालजी के भाई गुलाबचन्दजी बड़जाते (सूरजमलजी के भाई) ने अपना विवाह सैतवाल समाज में किया। उस विवाह को लेकर समाज में पंचायत बैठी थी। लेकिन कोई खास परिणाम नही निकला। फिर तो समाज में सैकड़ों विवाह होने लगे। ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रचार होने लगा, गाधीजी की बातों का असर होने लगा, लोगों की हिम्मत खुलने लगी। और अब तो अंतरजातीय ही नहीं, अंतरप्रांतीय ही नहीं, अंतरदेशीय विवाह तक होने लगे हैं। इसमें शक नहीं कि अब इन मामलों में समाज मानवतावादी होता जा रहा है।

पर्दा-प्रथा के विषय में चिरंजीलालजी पर जमनालालजी और जानकीदेवीजी का बहुत असर रहा। सेठजी के यहाँ देशभर से अनेक विदुषी और कार्यकर्त्री बहनें आती रहती थीं। उनको देखकर चिरञ्जीलालजी के विचार पर्दाप्रथा के खिलाफ बनते गये। उन्होंने अपने घर में परदा हटाने का प्रयत्न किया, लेकिन शुरू में सफलता नहीं मिली। उनकी माँ के स्वर्गवास के बाद चिरञ्जीलालजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री प्रताप-

चन्द्र का विवाह कोटा के श्री मोतीलालजी पहाड्या की पुत्री सौ० रत्नप्रभादेवी के साथ हुआ। विवाह में पर्दा नहीं रखा गया। सत्यभक्तजी ने अपनी पद्धति से सप्तपदी करायी। दहेज बिलकुल नहीं लिया। मजे की बात यह थी कि बहू खुले मुँह रहती थी और उसकी सास लंबा पर्दा रखती थी। दोनों सास-बहू जब मंदिर जातीं, तो जाति की बहनें सास की तो तारीफ करतीं और बहू को चिढ़ातीं! यहाँ तक कहा जाता कि यह बहू है या बेदी! प्रतापचन्द की माँ को इससे बड़ी तकलीफ होती थी।

लेकिन एक रोज चिरञ्जीलालजी की पत्नी का पर्दा अपने-आप खुल गया। घटना यह हुई कि एक दिन श्रद्धेय डॉ० राजेन्द्रप्रसादजी तथा अन्य कुछ लोगों को भोजन का निमंत्रण चिरञ्जीलालजी ने दिया। जानकीदेवी भी निमंत्रण में थीं। उन्होंने सब अतिथियों से कहा कि इनके यहाँ कोई भोजन मत करो, क्योंकि चिरञ्जीलालजी की पत्नी पर्दा करती है। अब तो परिस्थिति ही बदल गयी। जानकी देवी उठीं और चट से पर्दा सरका दिया। उस दिन से चिरञ्जीलालजी के घर में पर्दा समाप्त हो गया।

इसी तरह जब चिरञ्जीलालजी की माँ का स्वर्गवास हुआ, तब कुटुंबियों ने मोसर करने पर काफी जोर और दबाव डाला; लेकिन चिरञ्जीलालजी ने मोसर नहीं किया।

तीनों पुत्रों के विवाह में चिरञ्जीलालजी ने दहेज भी नहीं लिया। दहेज-प्रथा को वे शुरू से बुरा मानते रहे हैं और सैकड़ों शादियाँ जो करायीं वे भी बड़ी मितव्ययता से करायीं।

वेदी प्रतिष्ठा और परिषद् का अधिवेशन

एक बार चिरञ्जीलालजी की माँ बहुत बीमार हो गयीं। उन्होंने संकल्प किया कि अगर स्वस्थ हो गयी, तो जैन-मंदिर में एक गुम्बद बनवाऊँगी। चिरंजीलालजी पहले तो टालते रहे और माँ से 'हाँ' 'हाँ' भी कहते रहे। लेकिन जब चिरञ्जीलालजी ने समझ लिया कि अब अपना कारोबार कमजोर होता जा रहा है और न जाने कब क्या परिस्थिति हो जायगी, तब उन्होंने मंदिर में ऊपर की ओर एक वेदी बनवायी और उस पर गुम्बद बनवायी। वेदी-प्रतिष्ठा करायी। नागपुर के पं० रामभाऊजी शास्त्री

प्रतिष्ठाचार्य थे। इसी अवसर पर भारत दिगम्बर जैन परिषद् का दूसरा अधिवेशन भी वर्धा में हुआ। अधिवेशन के सभापति अकोला के प्रसिद्ध वकील जयकुमारजी देवीदासजी चवरे थे। श्री दौलतरामजी खजानची स्वागताध्यक्ष थे। यह अधिवेशन भी अपने ढंग का अनूठा था। बाहर से बैरि० चंपतरायजी, बाबू रतनलालजी वकील बिजनौर, ताराचन्दजी नवलचन्दजी जवेरी बम्बई, बालचन्दजी कोठारी पूना, अजितप्रसादजी लखनऊ आदि अनेक विद्वान, वकील नेता आये थे। प्रतिष्ठा आदि में कुल १० हजार रुपये खर्च हुए।

स्वागत आदि के प्रमुख सेठ जमनालालजी बजाज थे। अन्तिम दिन लगभग दो हजार लोगों का मिष्टान्न भोजन बच्छराज-भवन की विशाल छत पर हुआ। यह सारा उत्सव और व्यवस्था देखकर चिरञ्जीलालजी की माँ को परम संतोष हुआ।

सिंघई पन्नालालजी की मैत्री

सिं० पन्नालालजी अमरावती के रहनेवाले थे। आप चिरंजीलालजी के अनन्य मित्रों तथा हितैषियों में थे। यों भी कहा जा सकता है कि जब चिरंजीलालजी धर्म के प्रति विद्रोही होने लगे, तब आप ही ने उन्हें विचलित होने से बचाया। इस संबंध में एक घटना का उल्लेख करना जरूरी है।

एक बार वर्धा में आचार्य शांतिसागर महाराज का मुनि-संघ आया। उस संघ में आठ-नौ मुनि तथा अनेक त्यागी, ब्रह्मचारी थे। उनमें मुनि चन्द्रसागरजी भी थे। चन्द्रसागरजी अपनी गृहस्थावस्था मे चिरंजीलालजी के मित्र भी रह चुके थे। वे नाँदगॉव (नासिक) के रहनेवाले थे। वर्धा भी आ चुके थे। चिरञ्जीलालजी भी नाँदगाँव गये थे। इस समय वे मुनि थे। जब वे आहार के लिए निकलते थे, तब चिरञ्जीलालजी तथा उनकी मॉ अपने घर के सामने पड़गाहने के लिए खड़े रहते थे। वे दो-एक चक्कर भी उनके घर तक लगाते थे। उनका आग्रह था कि जो शूद्र-जल का त्याग करेंगे, उन्हींके यहॉ आहार करेंगे। उनके साथ जो भक्त लोग रहते थे, वे गृहस्थों से ऐसा नियम लिवाते थे। चिरञ्जीलालजी ऐसा नियम लेना नहीं चाहते थे। उनकी माँ अवश्य कहती थीं कि मैं नियम लेने को राजी हूँ, मैं आहार दूँगी। लेकिन भक्त लोग कहते थे कि चिरञ्जीलालजी नियम लेंगे, तब ही आहार होगा। आखिर उनके यहॉ आहार नहीं हुआ।

श्री चिरंजीलालजी बड़जाते
(भरी जवानी और पूरे वैभव में)

अभिनन्दित दम्पति

श्री चिरंजीलालजी एवं सौ० प्रमिलादेवी बड़जाते

इसी बीच एक और ऐसी घटना हो गयी, जिसने आग में घी का काम किया। एक भाई ने एक परचा छपवाकर बाँटा, जिसमें लिखा था कि आचार्य शांतिसागरजी अमुक जाति के हैं और उस जाति में विधवा-विवाह प्रचलित है, तब वे उन लोगों के घर आहार क्यों नहीं ग्रहण करते, जिनके यहाँ विधवा-विवाह हुए हैं। वह परचा आचार्य महाराज के सामने जलाया गया। काफी उत्तेजना फैली।

जब संघ ने वर्धा से प्रस्थान किया, तब चिरञ्जीलालजी भी पवनार तक गये। वहाँ से लौटते समय उन्होंने चन्द्रसागरजी को वन्दन किया। उनका चरण-स्पर्श किया। इससे मुनिजी भड़क उठे और कहा कि 'ऐ पापी, हाथ मत लगा!' इससे चिरञ्जीलालजी को काफी आघात लगा। एक तो मुनि और फिर इतनी कटुता! धर्म तो पतितों के उद्धार के लिए है। इस समय चिरञ्जीलालजी एकदम विचलित हो उठे और धर्म को छोड़ देने की सोच बैठे!

बस, इसी समय डूबते को तिनके का सहारा मिल गया—पन्नालालजी सिंघई ने उबार लिया। अपने स्नेह और मधुर व्यवहार से सिंघईजी ने चिरंजीलालजी को समझाया। यों उनका आपसी सम्पर्क सन् '१७ से ही था। वे पुराने विचार के थे, परन्तु सुधारकों से काफी प्रेम रखते थे। जब चिरञ्जीलालजी सन् '२३ और '३० में जेल गये, तब भी वे बीच-बीच में वर्धा आकर चिरञ्जीलालजी के कारोबार को देखते रहते थे।

एक समय चिरञ्जीलालजी निमोनिया या टाइफाइड से बीमार पड़ गये। पन्नालालजी को लगा कि इस बीमारी में काफी खर्च हो गया होगा। उन्होंने किसीसे बिना कुछ कहे सुने तकिये में तीन सौ रुपये के नोट रख दिये और स्टेशन चले गये। चिरञ्जीलालजी की माँ की नजर तकिये पर गयी और लगा कि इसमें नोट जैसा कुछ है। निकालकर देखा। माँ को यह निश्चय करने में देर नहीं लगी कि हो न हो यह नोट पन्नालालजी ने ही छोड़े हैं। उनको स्टेशन से बुलाया गया और किसी तरह समझा-बुझाकर नोट वापस किये गये!

कलकत्ता में वीरशासन-जयन्ती उत्सव पर पन्नालालजी गये थे। वहाँ रात को चिरञ्जीलालजी और सिंघईजी एक ही कमरे में सोये! बातों-बातों में सिंघईजी बोल पड़े, 'चिरञ्जीलाल, मुझे अपनी मृत्यु नजदीक दीखती है, पता नहीं कब

चल बसूँ। तुमसे इतना ही अनुरोध है कि जैनधर्म को कभी मत भूलना। उसीसे तेरा कल्याण होगा।' क्या मालूम था कि वे घर भी नहीं लौट पायेंगे! उनका आरा में स्वर्गवास हो गया!!

दौलतरामजी खजानची

दौलतरामजी खजानची का जिक्र किये बिना नहीं रहा जाता। वर्धा के जैन समाज के इतिहास में उनका स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा है। समाज उनकी सद्-भावना के लिए सदा ऋणी रहेगा।

खजानचीजी रायबहादुर बंसीलाल अबीरचन्द के खजानची थे। खजाने में बैठते थे। उन दिनों बैंक नहीं थे। खजाने का काम बंसीलाल अबीरचंद के मार्फत चलता था। यह फर्म बहुत धनी थी। खजानचीजी समाज के भले के लिए हमेशा सोचते रहते थे। कुछ धर्म-भाइयों को कारोबार के लिए रकमें भी देते रहते थे। इसमें कुछ रकम फँस गयी। एक ओवरसियर की कुछ रकम बंसीलाल अबीरचंद के यहाँ जमा थी। उसने बंसीलाल अबीरचन्द पर मुकदमा कर दिया। बंसीलाल अबीरचन्द के एक मुनीम खजानचीजी को कामठी ले गये। वहाँ उनको धमकाया, पीटा और उनकी सारी जायदाद बिक्री करा ली। यह बिक्री बोगस (गैर-कानूनी) थी। जब चिरंजीलालजी को मालूम हुआ कि ऐसी पोकल बिक्री हुई है, तो उन्होंने खजानचीजी से कहा कि मै इसे रद्द करवा सकता हूँ। लेकिन खजानचीजी सा० सरल और सात्त्विक वृत्ति के थे। उन्होने ऐसा करने से इनकार कर दिया। रुपया तो उनका लगभग २० हजार ही फँसा था। लेकिन जायदाद लगभग ४० हजार की चली गयी। खजानची सा० ने जैन मन्दिर के लिए जैन बोर्डिंग के पीछे की एक जमीन भी साढ़े चार हजार में ली थी। समाज के पंचों ने उनको आश्वासन दिया था कि यह रकम चंदा करके दे दी जायगी, लेकिन पूरी रकम नहीं ही दी गयी। जैन भाइयों ने भी उनकी देनी रकम नही लौटायी। कामठी से लौटकर उन्होंने एक बैलगाड़ी ४५) में चिरञ्जीलालजी को दे दी और वर्धा छोड़कर चले गये। बाद में पता ही नहीं चला कि उनका स्वर्गवास कैसे हुआ।

लेखक ने भी उनको बचपन में देखा था। बड़ी शान्तमूर्ति थे। रहने का तौर तरीका बड़ा भव्य था। उनको इस बात का बड़ा शौक था कि जो भी नयी चीज बाजार में आती, वे जरूर खरीदते। घर सजाने का उन्हें बड़ा शौक था।

बन्सीलाल अबीरचन्द ने आश्वासन दिया था कि ओवरड्राफ्ट की रकम चुकाने पर जो रकम बचेगी, वह लौटा दी जायगी। लेकिन अब तक यह प्रामाणिकता नहीं बरती गयी और आज तो इस बड़ी फर्म के सम्बन्ध में भी अनेक तरह की चर्चा प्रदेशभर में चल रही है। उनकी मिलें बन्द पड़ी हैं। समय एक-सा नहीं रहता। अन्याय और पाप का पैसा सारी प्रतिष्ठा को खोखला कर डालता है और कीर्ति का वृक्ष इस तरह सूख जाता है कि आखिर वह जलावन के ही काम आता है। वर्धा के जैन समाज का कर्तव्य है कि खजानची सा० की स्मृति को हमेशा ताजा बनाये रखने के लिए कुछ कदम उठाये।

ब्र० शीतलप्रसादजी

चिरंजीलालजी का ब्रह्मचारीजी से भी काफी संपर्क आया। वे लेखक, वक्ता, त्यागी और सुधारक थे। समाज की उन्होंने बहुत सेवा की है। सारे देश का भ्रमण भी किया। जब वे विधवा-विवाह के समर्थक हो गये, तब वर्धा आये और सनातन समाज की स्थापना की। 'सनातन जैन' पत्र के प्रकाशन के लिए सेठ जमनालालजी ने उनको ५००) प्रदान किये। स्थितिपालकों ने उनका विरोध किया और सुधारकों ने स्वागत किया। सनातन जैन समाज के संचालक और संगठन में वर्धा के स्व० हीरासावजी डोमे का बड़ा हाथ था।

स्वामी सत्यभक्तजी

सन् १६३६ के लगभग स्वामी सत्यभक्तजी वर्धा आये। पहले वे समाज में पं० दरबारीलालजी के नाम से प्रसिद्ध थे। अजमेर से उन दिनों जो 'जैनजगत्' प्रकाशित होता था, उसके आप संपादक थे और समाज-सुधार की दृष्टि से यह पत्र क्रांतिकारी माना जाता था। चिरंजीलालजी के सुधारक विचारों का समर्थन इसने खूब किया। चिरञ्जीलालजी के स्नेह ने ही सत्यभक्तजी को वर्धा का बना दिया कहा जाय, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। सेठ जमनालालजी का भी उनको काफी सहयोग रहा है। वर्धा से एक मील की दूरी पर बोरगाँव में उनका सत्याश्रम है, जहाँ सर्वधर्म समभाव की उपासना चलती है।

गुलाबचन्दजी बड़जाते

वर्धा में श्री लक्ष्मीचंदजी गुलाबचंदजी बड़जाते की एक कान थी। कपड़े

का व्यापार था। गुलाबचंदजी चिरंजीलालजी के गोत्र के भाई लगते थे। जब चिरंजीलालजी का जाति-बहिष्कार हुआ, तब यही एक ऐसे हिम्मतवाले थे जिन्होंने समाज और कुटुम्ब की परवाह न करके चिरंजीलालजी का पूरी तरह साथ दिया। यहाँ तक कि जब गुलाबचंदजी की द्वितीय कन्या चंदाबाई का विवाह हुआ, तब समाज ने इतना विरोध किया कि वर्धा में नाई-धोबी तक का सहयोग नहीं मिला। फिर भी इन्होंने चिरंजीलालजी का साथ नहीं छोड़ा और अपनी ससुराल, वाशिम से काफी लोग बुला लिये। यह कम साहस की बात नहीं है।

श्री गुलाबचंदजी के तीन पुत्र हैं। उनमें से वर्धा में कनिष्ठ पुत्र श्री मूलचंदजी रहते हैं। मूलचन्दजी अपने पिता की तरह सामाजिक कार्यों मे काफी दिलचस्पी रखते हैं और जो भी उनके पास पहुँचता है, उसे यथासंभव पूरा सहयोग देते हैं। सरल प्रकृति के होनहार युवक हैं। चिरञ्जीलालजी की बैठक का एक स्थान श्री मूलचन्दजी का घर भी है। चिरंजीलालजो कहते हैं कि श्री मूलचन्द से उन्हें काफी अपेक्षा है। वे श्री चिरञ्जीलालजी के तीनों ट्रस्टो के ट्रस्टी भी हैं।

पारिवारिक स्थिति

श्री चिरंजीलालजी बडजाते सम्पन्न परिवार मे आये। समाज और राजनीति में पडे। सन् १९२७ में कारोबार ठप हो गया, उधारी डूब गयी। लेना-पावना बही-खातों में ही रह गया। देना पाई-पाई चुकाना पड़ा और आर्थिक स्थिति बिगड गयी। सामान्य भाषा में वे 'गरीब' हो गये। लेकिन यह 'गरीबी' ही चिरंजीलालजी के लिए वरदान साबित हुई। अगर वे गरीब न होते, तो आज उनके पास वह 'पूँजी' कहाँ होती, जो समाज-सेवा के फलस्वरूप उनकी रग-रग में व्याप्त है। उस आर्थिक गरीबी ने उनको सेवा-'सम्पन्न' बना दिया। सेवा की जीती-जागती मूर्ति हैं चिरंजीलालजी।

चिरंजीलालजी ने अपनी संपत्ति और जायदाद का बँटवारा बहुत पहले ही कर दिया है। इस समय आपके तीन पुत्र हैं : श्री प्रतापचन्द्र, श्री विजयकुमार और श्री किशोरकुमार। पहले दो की पढ़ाई तो साधारण ही हुई है, लेकिन तीसरे

पुत्र एम० कॉम हैं और हिन्दी में 'साहित्यभूषण' हैं। तीनों को संपत्ति का उचित भाग समान रूप से दे दिया है और वे अपनी स्थिति में सुखी और प्रसन्न हैं।

दो पुत्रियाँ थीं, जिनमें बड़ी पुत्री का देहांत विवाह के बाद हो गया। स्व० राजमती राष्टीय विचार की थीं। सन् '४२ के आंदोलन में जेल भी गयी थीं। उसका विवाह उदयपुर के श्री अनूपलालजी अजमेरा वकील के साथ हुआ था। वह अपने पीछे दो कन्याएँ छोड़ गयी हैं। एक कन्या श्री प्रतापचन्द के पास है। दूसरी अपने पिता के पास थी, जिसका विवाह हाल ही में हुआ है।

दूसरी पुत्री सौ० शाताकुमारी का विवाह कोटा के श्री नरोत्तमलालजी वकील के साथ हुआ है।

चिरञ्जीलालजी की धर्मपत्नी सौ० प्रमिलादेवी बड़जाते पढ़ी-लिखी तो नहीं हैं, लेकिन चिरंजीलालजी के साथ रहते-रहते अनुभव में काफी प्रौढ़ हैं। आपके नाम पर एक ट्रस्ट भी है, जो २० हजार रुपये का है। उसकी आय से गरीब विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति दी जाती है। समाचार-पत्र आते हैं। एकाध छोटी-मोटी पुस्तिका भी प्रकाशित की जा सकती है।

अभी-अभी श्री प्रमिलादेवीजी ने रामनगर (वर्धा) स्थित जैन मन्दिर में धर्मशाला जैसा एक हॉल बनवाया है, जिसमें ५०००) खर्च हुआ है। इसी तरह महारोगी सेवा-मंडल तथा जैन विद्यार्थी-गृह को एक-एक हजार रुपया दिया है। जब साहू शातिप्रसादजी जैन को मालूम हुआ कि उनके मामले के निपटारे की खुशी में यह धर्मशाला बनी है, तो उन्होंने चिरंजीलालजी को छह हजार रुपये भेज दिये। लेकिन चिरंजीलालजी ने यह रकम वापस कर दी।

प्रमिलादेवीजी को संस्कारों के कारण बहुत बरदाश्त करना पड़ा है। यह कहने में हमें कोई संकोच नहीं है कि चिरंजीलालजी भले ही उदार, भावुक और परदुःखकातर हों, लेकिन अपने विचारों के कारण उन्होंने अपनी धर्मपत्नी को खूब सताया है। भारतीय महिला होने के कारण वे सब कुछ सहन करती रही हैं। इसे हम कमजोरी न कहकर उनका साहस ही कहेंगे। पैसे का लोभ तो खैर बड़ों-बड़ों से नहीं छूटता, सो हम कैसे कहें कि प्रमिलादेवीजी भी इससे बच पायी हैं। कभी-कभी चिरंजीलालजी विनोद में उनसे कहते हैं कि 'सुनो प्रताप

की माँ, मैं लाख रुपये की बात कहता हूँ।' तो वे उतने ही सहजभाव से कह देती हैं, 'मुझे लाख रुपये की बात नहीं सुननी, आप उस बात के बदले हजार रुपये ही दे दीजिये।' इस तरह इन दोनों बूढ़ों का विनोद चलता रहता है।

श्री चिरञ्जीलालजी के नीचे लिखे पारिवारिक ट्रस्ट हैं :

१ प्रमिलादेवी बड़जाते जैन सेवा ट्रस्ट— २०,०००)। इस ट्रस्ट द्वारा गरीब छात्रों को छात्रवृत्ति दी जाती हैं।

२. सुगणाबाई बड़जाते चेरिटेबल ट्रस्ट— १५,०००)

यह ट्रस्ट चिरंजीलालजी की माताजी के नाम पर है। इससे गंगापुर में जमनालाल गोनस्ल सुधार केन्द्र चलता है। चरोखर के लिए मुरझड़ी ग्राम में ५० एकड़ जमीन है। ट्रस्ट की आमदनी ७००) वार्षिक है।

३. चिरंजीलाल बड़जाते ट्रस्ट— ४०,०००)। यह ट्रस्ट पारिवारिक है। इस ट्रस्ट की आमदनी में से लगभग १२००) वार्षिक गरीब छात्रों को छात्रवृत्ति के रूप मे तथा फुटकर सहायतादी जाती है।

इन सब ट्रस्टो में अधिकतर जमीन ही है।

४. चिरंजीलालजी के पास लगभग २० हजार रु० के शेयर हैं। इनकी आमदनी से ही उनका खर्च चलता है। अब उन्होंने एक वसीयतनामा भी लिख दिया है। भारत जैन महामण्डल के लिए भी कुछ व्यवस्था कर दी है।

अपने तथा परिवार के सम्बन्ध में एक बार (३१ १० '५१ को) चिरंजीलालजी ने अपने स्मरण-रजिस्टर मे नीचे लिखी बाते लिखीं, जो बड़े महत्त्व की हैं :

"एक अप्रैल के बाद अच्छे मुहूर्त में सेठ को अपने विचार तथा त्याग-पत्र देकर मुक्त होने मे भला है।

प्रभु वह शक्ति दे, जिससे अन्तिम जीवन सुख-शान्तिपूर्वक बीते। किसी प्रकार का भी अहंकार या घमंड या धनसंग्रह की बुद्धि या कुटुम्बीजनों में मोह न रहे और अन्तिम जीवन सात्त्विकता से बीते, ऐसी प्रभु से अर्ज है। नीचे मुजब कार्यक्रम रोज नियमित हो :

(१) स्वाध्याय, (२) देव-दर्शन, (३) दान, (४) तप, (५) संयम, (६) मन की शांति व प्रसन्नता।

उपर्युक्त बातों को जीवन में बने वहाँ तक कुछ-न-कुछ उतारने का प्रयत्न करते रहना ।

जीवन में जितनी भी झंझटें कम हों और जवाबदारी कम हो, ऐसी कोशिश करना, जिससे जीवन सुख-शांति से बीते ।

तीनों लड़कों से मेरी अर्ज है कि सेठ जमनालालजी के फर्म के काम के लिए कभी भी श्री कमलनयनजी या रामकृष्णजी कोई काम कहें, वह नटना नहीं । तन, मन, धन से इस खानदान की—जो भी आपलोगों से बने, सेवा करनी चाहिए । सब एक जूट से (मिलजुलकर) रहें ।

तीनों भाइयों के अलग-अलग रहते हुए भी प्रेम में फर्क न आये और एक-दूसरे के दुख-दर्द मे काम आवें ।

निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना :

(१) कर्जा नहीं लेना ।

(२) शराकत (साझेदारी) में व्यापार नहीं करना ।

(३) सट्टा नहीं करना ।

(४) आमद से ज्यादा खर्च नहीं करना ।

(५) कोर्ट-कचहरी से बचना ।

(६) कानून के खिलाफ कोई कार्य नहीं करना ।

अपनी संतान को बुद्धिमान बनाना । लोकल (स्कूली) शिक्षण के साथ-साथ धार्मिक शिक्षण भी देना । खासकर कसरत, व्यायाम का शिक्षण भी देना । बाल-बच्चे धार्मिक तथा लौकिक बुद्धिमान, तंदुरुस्त बने रहें, इसका खयाल रखना ।

स्व० जमनालालजी तथा मेरी स्व० पूज्य माता सुगणाबाई को आज दीपावली के शुभ मंगलमय अवसर पर प्रणाम करके सत्य, अहिंसा का पालन करने का पूरा प्रयत्न करना ।"

सेठ जमनालालजी के कार्य

सेठ जमनालालजी के यहाँ चिरंजीलालजी ने ३० वर्ष तक काम किया । इन वर्षों में चिरञ्जीलालजी ने सैकड़ों काम किये हैं । जमनालालजी ने भी इनको बड़े-बड़े कार्य सौंपे और संयोग की बात कि ये उनमें सफल ही होते गये । विरोधी-

तत्त्व भी इनके पीछे लगे रहे, लेकिन 'जाको राखे साइयाँ मारि सकै नहिं कोय।'

चिरञ्जीलालजी के कार्यों से सेठ जमनालालजी को भी संतोष रहा। बाद में कमलनयनजी भी काफी संतुष्ट रहे। जब चिरंजीलालजी निवृत्त होने लगे, तब कमलनयनजी ने कहा था कि आप निवृत्त न हों। लेकिन कुछ ऐसी वृत्ति होने लगी कि अब नौकरी से मुक्त होना ही चाहिए, अतः आग्रह देखकर कमलनयनजी को भी इनकी बात माननी पड़ी।

अणुव्रती बने

आचार्य श्री तुलसी के व्यक्तित्व और उनके अणुव्रत आंदोलन से आकर्षित होकर चिरंजीलालजी अणुव्रती बन गये हैं और परिग्रह की मर्यादा बाँध ली है। सीमित आमदनी में सीमित व्यय करना अब वे अवसर-प्राप्त धर्म मानते हैं।

वर्धा में सार्वजनिक कार्य

चिरंजीलालजी की सार्वजनिक प्रवृत्तियाँ केवल बाहर के लिए ही नहीं रहीं, वर्धा में भी उन्होंने काफी कार्य किये है। यो तो वर्धा की प्रत्येक संस्था से आपका थोड़ा-बहुत संबंध रहा है और अनेक तरह से सेवा करते ही रहते हैं, पर कुछ खास संस्थाओं का नामोल्लेख करना उपयुक्त होगा :

(१) **दि० जैन बोर्डिंग**—इस बोर्डिंग हाउस का प्रारम्भ स्व० माणिकचंद्रजी जे० पी० बंबई के हाथो हुआ था। चिरजीलालजी के काका श्री पन्नालालजी ने २१०१) देना स्वीकार किया था। यह रकम दी गयी। लगभग १२ वर्ष तक चिरञ्जीलालजी ने इस बोर्डिङ्ग की तन-मन-धन से सेवा की। हर साल वार्षिकोत्सव कराते रहे। उत्सव के लिए समय-समय पर प्रतिष्ठित लोग आते रहे। श्री पूर्णसावजी सिवनी, गोपालदासजी बरैया, धन्नालालजी कासलीवाल, नत्थूसावजी एलिचपुर, नवलचंद हीराचन्द बम्बई, चुन्नीलाल हेमचन्द बम्बई जैसे लोग उत्सवों पर पधारे।

(२) **मारवाड़ी सेवा समाज**—इसके चिरञ्जीलालजी दो वर्ष तक सभापति रहे और दस साल तक सभासद। इस संस्था की ओर से एक धर्मार्थ औषधालय चलता था। इसकी ओर से बाढ़-पीड़ितों की सहायता भी हुई।

(३) **म्युनिसिपल मेंबरी**—लगभग १२ वर्ष तक वर्धा की म्युनिसिपल कमेटी के मेंबर रहे। इसी अर्से में हरिजनों के लिए कुएँ खोले गये।

(४) **मारवाड़ी शिक्षा-मंडल**—यह वर्धा की एक ख्यातिप्राप्त संस्था है। स्व० सेठ जमनालालजी ने यह संस्था स्थापित की थी। लगभग १२ वर्ष तक चिरञ्जीलालजी इसके मंत्री रहे। अभी भी कार्यकारिणी के सदस्य हैं।

(५) जमनालाल सेवा-ट्रस्ट के मैनेजिंग ट्रस्टी और श्री लक्ष्मीनारायण देव-स्थान के ट्रस्टी हैं।

(६) चिरञ्जीलालजी के पास एक खासा पुस्तकालय भी था। वे चाहते थे कि यह पुस्तकालय सुचारुरूप से चले। किताबों की सूची ढंग से रहे। उन्होने इसके लिए बहुत कोशिश भी की। लेकिन आखिर उन्होंने अपना पुस्तकालय कारंजा के जैन गुरुकुल को तथा बाहुबली आश्रम को प्रदान कर दिया। कारंजा आश्रम को १००१) नकद भी दिये। बाहुबली जैन गुरुकुल को ५०१) दिये। कुछ किताबें अन्य पुस्तकालयों में भी दे दी गयीं।

(७) अपनी माता के नाम पर आपने एक ग्रंथमाला भी भारत जैन महा-मंडल में शुरू की। इस 'सुगणाबाई बडजाते ग्रथमाला' में आपने ४०००) के लगभग लगाया। उसके अंतर्गत नीचे लिखी किताबे प्रकाशित हुई —

१. मणिभद्र, २. महावीर वाणी (चार बार), ३. महावीर का जीवन-दर्शन ४. जो सन्तों ने कहा, ५. आँखों देखे आन्दोलन।

महावीर वाणी से तो चिरंजीलालजी इतने प्रभावित हैं कि उसका केवल हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करके बाँटते रहते हैं।

(८) चंदेरिया (चित्तौड) में मुनि जिनविजयजी ने एक आश्रम स्थापित किया है। आश्रम के कुएँ के लिए आपने ५०१) प्रदान किये हैं।

(९) बुलडाणा (विदर्भ) में जैन धर्मशाला के निर्माण के लिए २५००) की सहायता की।

(१०) चांदा में सरकारी टी. बी. अस्पताल में ५००) की सहायता दी।

(११) इसी तरह अनेक लोगों को व्यक्तिगत रूप से, विवाह, बीमारी, बेकारी आदि के समय हमेशा मदद करते ही रहते हैं।

भारत जैन महामंडल के उद्धारक

सन् १६३७ की बात होगी। बैरिस्टर जुगमंदरलालजी ने चिरञ्जीलालजी से कहा कि 'यह उनका बोया हुआ पौधा है। किसी दिन इसकी उपयोगिता को समाज समझेगा। आप इसे सँभालिये।' और चिरञ्जीलालजी थे कि भारत जैन महामंडल के पौधे को बच्चे की तरह उठा लाये। सभा-सम्मेलनों का चस्का तो था ही। लेकिन यह तो धरोहर थी। एक ओर तो समाज में यह वातावरण था कि जातियाँ भी अपनी अहंता और कट्टरता मे आकंठ डूबी हुई थीं, इधर यह महामंडल था कि सब संप्रदायों में एकता की घोषणा करता था! कौन इसे सहायता देता, किसको जरूरत थी? लेकिन चिरञ्जीलालजी थे कि हताश नहीं हुए और जहाँ भी मंडप का संकेत मिला, महामंडल का मंच तैयार कर लेते थे। किसीके यहाँ शादी हो, दत्तकविधान हो, मंडल का जलसा कर ही लेते थे। और तो और, मित्रगण भी मजाक उडाते रहते कि क्यो इस तरह का तमाशा करते रहते हैं? ऐसी संस्था को दफना ही क्यों नहीं देते? चिरंजीलालजी थे कि सुन लेते और मन ही मन दुःख मानकर चुप हो जाते। क्या करते? वे जानते थे कि जो आज ताना कसते हैं, वे एक दिन इसमें रस लेंगे और इसकी उपयोगिता को पहचानेंगे। संतोष का फल मीठा होता ही है। धीरज रखा, तो आज महा-मंडल ही महामंडल दिखाई दे रहा है।

यो कहा तो जा सकता है कि महामंडल ने विधायक काम क्या किया? लेकिन गिनाये नहीं जा सकते, ऐसे कितने ही अप्रत्यक्ष काम महामंडल से हुए हैं। रात-दिन चिरंजीलालजी देश का दौरा करते रहते है। लोगों के, कार्यकर्ताओं के संपर्क मे आते रहते हैं और उनमें समाज-सुधार तथा समाज-सेवा की भावना का संचार करते रहते हैं। भगवान निराकार होते हैं, लेकिन कितने करोड प्राणी उस अप्रत्यक्ष की प्रेरणा से जीवन मे कृतकार्य होते हैं। महामंडल का कार्य गणित के अंकों से नहीं, भावना की गहराई से मापा जा सकता है। जब मौज में या लहर में आते हैं, तो चिरञ्जीलालजी एक के बाद एक, पचीसों काम ऐसे गिना जाते हैं कि सुनकर महामंडल की महत्ता स्वीकार कर लेनी पड़ती है! संपर्क और विचार-जाग्रति से बहुत काम अपने-आप हो जाते हैं।

आज चिरंजीलालजी का रोम-रोम महामंडल का गीत गाता है। वे स्वयं महामंडलमय हो गये हैं।

व्यक्तित्व

चिरञ्जीलालजी का व्यक्तित्व भानुमती की पिटारी है। वे बहुत भोले हैं, तो बहुत चतुर भी हैं। बहुत अधीर हैं, तो उतने ही दृढ़ भी हैं। सामान्य व्यवहार में आप देखेंगे कि उनमें सहिष्णुता नाम मात्र भी नहीं है, लेकिन जितना उन्होंने सहन किया है, वह मामूली बात नहीं है।

एक बार भी वे जिस व्यक्ति के सम्पर्क में आ जाते हैं, उसके साथ सम्बन्ध निभाने में चाहे जितनी हानि उठानी पड़े, वे उसके लिए तैयार रहते हैं। समाज के होनहार युवक-युवतियों के विवाह कराने का तो उन्हें व्यसन ही लगा हुआ है। साथियों के बीच वे 'शादीलाल' नाम से विख्यात हैं। एक बार जिसकी शादी करा दी, उसके वे पिता बन ही गये।

एक बार मैंने देखा कि एक भाई उनके पास आया। कहने लगा 'सेठजी, मेरी पत्नी बीमार है। कुछ रकम दीजिये।' चिरञ्जीलालजी बोले, 'भाई, मैं आजकल कोई कामकाज नहीं करता, कर्ज नहीं देता।' फिर भी उसने आग्रह किया, तो पचास रुपये दे दिये। मैं तो देखता रह गया। मैंने उनसे बाद में कहा कि 'आप इतने ढीले कैसे हो गये? 'ना' कहने की हिम्मत तो आपको दिखानी ही चाहिए। इस तरह कैसे चलेगा।' तो बोले, 'भाई, तुम्हारा कहना ठीक है। समझता हूँ। लेकिन क्या करूँ! किसीकी तकलीफ मुझसे देखी नहीं जाती। दूसरी बात यह कि एक बार मैं उनके यहाँ भोजन कर चुका हूँ। यह सुनकर तो मेरी आँखें खुल गयीं! इनके व्यक्तित्व का रहस्य मेरी समझ में आ गया और मन-ही-मन प्रणाम करके लौट गया।

मेरे हितचिंतक

मेरा और चिरंजीलालजी का इधर बीस वर्ष से निकट संपर्क रहा है। यों हमारे तथा चिरञ्जीलालजी के परिवार में रिश्तेदारी तो है ही और पिताजी उनके कारोबार के मुनीम भी बरसों रह चुके थे। इसलिए मेरे लिए चिरञ्जीलालजी

का परिचय नयी बात नहीं कही जा सकती। उतने बचपन से मैं उनको जानता हूँ, जहाँ तक स्मृति की पकड़ पहुँचती है। लेकिन असल सम्बन्ध मेरा पिछले बीस-वर्षों से आया है। काम का पहला पाठ मैंने उन्हींसे सीखा। एक समय था, जब पिताजी और उनमें जातिगत विचारों तथा पक्षपातों के कारण मतभेद भी थे। कभी-कभी कुछ बातें इन्हींसे सुनने को भी मिलीं। क्या वह जमाना था, क्या वह जातीयता थी कि अपने भी पराये लगते थे! लेकिन मुझे तो उन्होंने बड़ी आत्मीयता से अपनाया। चिरञ्जीलालजी के विचारों को मैं निकट से पढ़ता रहा। उनके पत्र-व्यवहार को देखता था, उनके अतिथि-सत्कार को देखता था। सभा-सम्मेलन में शरीक होता था। इन सबका यह असर हुआ कि एक अत्यल्प पढ़ा हुआ लड़का विकास की सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। उसमें आत्मविश्वास पैदा होने लगा। नहीं कह सकता कि अगर चिरञ्जीलालजी का वरदहस्त मुझ पर न होता, तो मेरी क्या स्थिति होती। मैंने दुनिया में पैर रखा ही था कि पिताजी चल बसे और माँ दुनिया से बेखबर – पागल हो गयी। पढ़ाई-लिखाई के नाम पर यही हाल था कि लोग मुझे 'मूरख' ही कह सकते थे।

भारत जैन महामंडल में काम करने और सीखने का अवसर मिला। 'जैन-जगत्' के प्रकाशन के साथ उसमें मुझे भी जोड़ दिया। मेरे लिए वे काम जुटाते रहे, मैं उनमें जुटता गया। धीरे-धीरे विचारों में परिवर्तन होता गया। उन्हींकी कृपा और तत्परता से मैंने अन्तर्जातीय विवाह की ओर कदम बढ़ाया और यह हिम्मत भी मुझमें उन्हींके संपर्क से आयी कि मैं जाति और रूढ़ि की गुलामी की बेड़ियों को तोड़ने मे समर्थ हुआ। यह मेरा सद्भाग्य है कि उनका मुझ पर पुत्रवत् स्नेह है।

मुझे वर्धा छोड़कर काशी आना पड़ा। जिस दिन मेरी धर्मपत्नी काशी के लिए वर्धा से रवाना हुई, उस दिन चिरञ्जीलालजी का दिल मोम से भी अधिक गीला हो उठा था। वह कहती है कि वे उस दिन वर्धा से नागपुर तक साथ थे और बैठे-बैठे आँखें गीली करते रहे! गला भरा हुआ था। कितना स्नेह! कितनी ममता!! इसीलिए तो कहता हूँ कि एक बार वे जिसको अपना लेते हैं, उसे मत-भेदों के बावजूद भी छोड़ना पसंद नहीं करते। मैंने उन्हें लिखा कि आपको कुछ

दिन के लिए काशी आना होगा, तो आ गये। मैं तो चाहता हूँ कि वे अब अपना उत्तर-जीवन काशी में ही शांतिपूर्वक बितायें। काशी विश्वप्रकाशी है। काशी-वास उनके लिए पुण्यप्रदायी और संतोषप्रद भी होगा। लेकिन जानता हूँ, वे इसे स्वीकार नहीं करेंगे।

अब चिरञ्जीलालजी ६५ वर्ष पूरे करके ६६ वें में प्रवेश कर रहे हैं। हमारी उनसे प्रार्थना है कि अब वे अपने शरीर पर दया करें और प्रवास रोककर घर पर ही रहें। इस बारे में श्री कमलनयनजी ने तो बहुत पहले अपने एक पत्र में इन्हें लिख दिया था :

'अब आपकी अवस्था ऐसी हो गयी है कि जिसमें काम और सेवा का भी अधिक लोभ नहीं रखना चाहिए। एक-न-एक रोज महान् यात्रा करनी ही है, तो अब छोटे-मोटे पर्यटन बन्द किये जा सके, तो उसका खयाल रखना चाहिए। किसी एक स्थान पर बैठकर शाति व समाधान का जीवन गुजारने का खयाल रखें। आपके लिए वही तपस्या हो जायगी और उसमें सुख भी मिलेगा।

(ता० २२ नवंबर '५५ के एक पत्र से)

इसी तरह रामकृष्णजी बजाज भी इनसे बम्बई जाने पर कहते रहते हैं कि 'आप बस में न बैठा करे। टैक्सी में ही बैठा करें।'

चिरञ्जीलालजी ने भारत का भ्रमण कम नहीं किया है। न केवल जैनतीर्थ, बल्कि चारों धाम की यात्रा भी वे कर चुके हैं। पर्यटन का तो जैसे उनको व्यसन ही है। लेकिन अब उन्हें इससे मुक्त होना चाहिए। कमलनयनजी के शब्दों में यही उनकी 'तपस्या' हो जायगी।

हम सबकी यही कामना है :

तुम सलामत रहो हजार बरस,
हर बरस के दिन हों पचास हजार।

●

स्मृति के कण

चिरंजीलाल बड़जाते

[चिरंजीलालजी के अनुभव-भंडार में यों तो सैकड़ों और हजारों घटनाएँ हैं और उनमें जीवन के अजीबोगरीब रहस्य छिपे हैं। हमारा खयाल है कि अगर कोई साहित्यकार उनके पास बैठ जाय और कुरेद-कुरेदकर घटनाओं को शब्दों का जामा पहना दे, तो यह कृति साहित्य-जगत् की अनमोल निधि बन सकती है। यहाँ तो केवल थोड़ी-सी बानगी प्रस्तुत की जा रही है। इन संस्मरणों में समय का कोई क्रम नहीं है। इनमें से बहुत-से संस्मरण 'जैन जगत्' तथा 'नया जीवन' में प्रकाशित हो चुके हैं। ये संस्मरण उन्होंने सन् '५६ में लिखाये थे।]

१. वह ताँगेवाला

बीना की बात है। गाड़ी का समय हो चला था। एक ताँगा जा रहा था। मै उसमें बैठ गया। मै कभी बिना ठहराये न कोई चीज खरीदता हूँ, न किसी सवारी का उपयोग करता हूँ। नाई से दाढ़ी भी पैसे ठहराकर बनवाता हूँ। क्योंकि बाज लोग बाद मे झगड़ा करते है, दूने और चौगुने पैसे माँगते है और उतने पैसे अपनी इज्जत बचाने के लिए देने पड़ जाते हैं। खासकर ताँगेवालो और रिक्शावालों के सम्बन्ध में तो यही आम अनुभव है। लेकिन उस दिन जल्दी में था, बिना ठहराये ही बैठ गया।

स्टेशन आया, उतरा। मैने ताँगेवाले के हाथ में आठ आने थमाये और आगे बढ़ने लगा।

ताँगेवाला वृद्ध था। उसने दो आने वापस लौटाते हुए कहा : सेठजी, मेरा रेट छह आना सवारी है, ज्यादा नहीं ले सकता।

मैने कहा : छह आना है तो क्या हुआ, मैं तुम्हें राजी-खुशी आठ आने दे रहा हूँ।

नहीं, मैं नहीं ले सकता—उसने कहा।

मैं उसकी बात सुनी-अनसुनी करके स्टेशन के प्लेटफार्म तक पहुँच चला, तो वह दौड़ता हुआ मेरे निकट आया और बोला : लीजिये आपके दो आने।

मैं सुनकर चकित-थकित रह गया। उस वृद्ध मुसलमान ताँगेवाले की दृढ़ता के आगे मेरा मन पुलकित हो उठा। मैंने कहा : मैं आपको अपने मन से इनाम दे रहा हूँ।

लेकिन वह भी एक ही था। कहा : इनाम किस बात का ? मैंने मेहनत की है, मेहनत का ले सकता हूँ। यहाँ और बहुत-से ताँगेवाले हैं, जो दो आना भी लेते हैं और दो रुपया भी। लेकिन मेरा नियम एक है। छह आना सवारी से अधिक न कभी लेता हूँ, न कभी कम। इसलिए आपसे छह आने ही लूँगा।

उस वृद्ध मुसलमान की इस अनासक्ति और निर्लोभ वृत्ति को देखकर मेरा मस्तक झुक गया।

काश ! अहिंसा और सत्य का दम भरनेवाले हम इस कसौटी पर अपने व्यवहार को कसने का प्रयत्न करते !

२. पैसे देना भूल गया

बम्बई के वेलकम होटल की बात है। एक दिन किसी भाई के साथ मैं उस होटल में नाश्ते के लिए चला गया। उस होटल का रिवाज यह है कि जल-पान पूरा हो चुकने पर आदमी पैसे की एक चिट्ठी सामने लाकर रख देता है। सात आने की चिट्ठी मेरे सामने आयी। पता नहीं, मैं किस मनःस्थिति में था कि जेब से पैसे निकालने के बदले वह चिट्ठी ही जेब में डाल ली। न किसीने पैसे माँगे, न मैंने दिये। दफ्तर चला आया, मानों कुछ हुआ ही न हो।

दूसरे दिन सबेरे जब मैं शौच को गया और वहाँ जेब से वह पुर्जा निकला, तो बड़ा बुरा लगा। मन ग्लानि से काँप उठा। अब मुझे चैन नहीं था। बाहर निकला, कपड़े पहने और उस होटल तक गया।

होटल के मालिक से मैंने यह घटना कह दी और कहा कि इस भूल के प्रायश्चित्तस्वरूप एक रुपया दण्ड भी लीजिये।

होटल के मालिक ने कहा : भाईसाहब, एक आप ही मिले हैं, जो पैसे के साथ-साथ दंड भी देना चाहते हैं। लोग तो पैसा भी कहाँ देना चाहते हैं ! उन्होंने मुझसे दंड तो नहीं लिया, लेकिन ऊपर से अपनी ओर से चाय पिलायी।

यह दूसरी बात है कि उस होटल के हर कर्मचारी को मुझ पर विश्वास हो गया हो और कोई पैसे के सम्बन्ध में बोलता तक नहीं ! लेकिन अगर हम उस होटल और मैं को छोड दें, तो होटल-मालिक की उस बात का हमारे पास क्या जवाब है कि पैसे ही कितने लोग देना चाहते हैं ?

चाहे प्लेटफार्म पर जाइये, चाहे सिनेमाघर, चाहे अखबार पढ़िये या शाक-सब्जी खरीदिये, आज हर आदमी की वृत्ति यह हो गयी है कि सामनेवाले को छकाया कैसे जाय। मैं बार-बार यही सोचता रह जाता हूँ कि आदमी दो-चार आने पैसे ही क्यों दबाना चाहता है। असल बात यह है कि सैकड़ों और हजारों को पचाने की ताकत नहीं होती और पचाना चाहे, तो पचा भी नहीं सकते, कोई पचाने भी नहीं देता। लेकिन थोड़े-से पैसों को लेकर आये दिन ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं।

३. मालिक आ रहे हैं !

वर्धा के पास ब्राह्मणवाड़ा एक देहात है। वहाँ हमारी कुछ खेती होती थी। एक दिन मैं वहाँ जाने के लिए निकला। देहात के कर्मचारियों को खबर कर दी थी। बैलगाड़ी से निकला।

रास्ते में दो स्थानों पर बैल चौंके। घना जंगल था। वहाँ शेर आदि जंगली जानवरों का भय हमेशा बना रहता था। बैल वहाँ चौंकते तभी हैं, जब शेर आदि की गंध आती है। किसी तरह सूर्यास्त होते-होते हम ब्राह्मणवाड़ा पहुँच गये।

उस दिन हमारे कार्यकर्ता की पत्नी ने घर झाड़-पोंछ और लीप-पोतकर बड़ा साफ-सुथरा कर रखा था।

मैं अपने साथ खाने की सामग्री ले गया था। मैंने पानी माँगा, तो मुझे कहा गया कि कार्यकर्ता की पत्नी कुएँ पर पानी लाने गयी है। लेकिन मेरे खा चुकने

के बाद तक पानी नहीं आया, तो किसीको कुएँ पर भेजने की बात आयी। इतने में किसीने आकर खबर दी कि वह कुएँ पर पैर फिसल जाने से गिर पड़ी और मर गयी।

दिनभर बेचारी ने उत्साह में कार्य किया, घर की सफाई की और आखिर यह दृश्य देखने को मिला !

पास-पड़ोस की बहनों ने कहा : वह आज कह रही थी कि मालिक आ रहे हैं। घर के सामने से मुर्गियों को हटाया, यह किया, वह किया।

घर की सफाई में घर का ही सफाया हो गया !

घटना मेरे लिए अविस्मरणीय बन गयी। उस कुएँ को पक्का बँधवा दिया गया और आज भी मैं उसे आतिथ्य-स्मारक के रूप में याद कर लेता हूँ और उस कुएँ से अब भी मेरे कानों में यह ध्वनि आती रहती है : 'मालिक आ रहे हैं !'

४. क्या रुपये देने को लिये थे ?

जब हम दोनों भाइयों का कारोबार सम्मिलित रूप से चलता था, तब एक व्यक्ति के हमारे यहाँ कुछ रुपये जमा थे। उस समय उस भाई का कारोबार भी ठीक था। पर जब हम दोनो भाइयों का कारोबार अलग-अलग हो गया, तो उस व्यक्ति का देना भी भाई की ओर ही गया। कुछ समय बाद उस व्यक्ति ने अपनी रकम उठा ली।

एक दिन वह भाई मेरे पास आया और बोला : भाईजी, मैं मारवाड़ जा रहा हूँ। शादी करनी है। रुपयों की जरूरत पड़ेगी। मैं खबर दूँ, तो रुपये भेजने की कृपा कीजिये।

यद्यपि उस समय मेरा हाथ तंग था, लेकिन 'हाँ' कर चुका था, इसलिए सूचना मिलते ही मैंने उसके पास चार सौ रुपये भिजवा दिये। शादी करके वह कुछ दिनों बाद वर्धा आया, तब उसने कहा कि दूकान आदि जमानी है, अगर

आप तीन सौ रुपये और दे दें, तो शहर के व्यापारियों से माल आदि लेने में बड़ी सुविधा होगी। उस समय तीन सौ के आधार पर आदमी तीन हजार का भी काम चला लेता था। मैंने उसकी आवश्यकता को देखकर तीन सौ रुपया और दे दिया। अब उसकी तरफ सात सौ रुपये हो गये थे।

बहुत दिनों के बाद मैं रुपयों के लिए उसके पास गया। रातभर बैलगाडी में चलकर उसके गाँव पहुँचा। दरवाजे पर वह मिला। 'जय रामजी की' करने के बाद उसने छूटते ही पूछा : कैसे आना हुआ सेठजी ?

पहले तो मैं यह सुनकर जैसे सन्न रह गया, फिर सँभलकर बोला : भाई, रुपयो के लिए ही आया हूँ। जरूरत है।

काहे के रुपये, आपको क्या हो गया है ? तंगी आयी, तो बुद्धि भी फिर गयी मालूम होती है। रुपये क्या देने को लिये थे ?

मैं बैलगाडी का बैलगाड़ी में और उसका दो टूक का उत्तर ! मुझ पर तो घड़ो पानी पड़ गया।

जिसकी शादी के लिए रुपये दिये, जिसको आजीविका के लिए सहारा दिया, वही आज अनजान बनकर तिरस्कार कर रहा था। गाड़ी से उतरने को भी नहीं कह रहा है। एक बार तो ऐसा लगा कि परोपकार करना पाप ही तो नहीं है ?

मैं गाँव के बाहर नदी किनारे गया। जी भरकर रोया, फिर हाथ-मुँह धोकर कुछ नाश्ता-पानी किया और जरा भी मुझे उधारी की वसूली नहीं मिली। लाचार थक-थकाकर मैं घर लौट आया। कहावत प्रसिद्ध है कि विपत्ति में कोई सहायक नहीं होता।

लेकिन यह क्या ?

दूसरे ही दिन मैंने सुना कि वह उसी दिन रात को मर गया और उसकी पत्नी जेवर, रुपया-पैसा लेकर अपना रास्ता नाप गयी।

तब समझ में आया कि जब परोपकार पीड़ित होता है, तो पाप की मौत हो जाती है। लेकिन मैं अब तक जान नहीं पाया कि वह उसी दिन क्यों मरा। अब तक यह रहस्य ही बना हुआ है।

५. अन्याय का पैसा

वर्धा में हमारी फर्म प्रसिद्ध थी। कारोबार बहुत बड़ा था। लाखों का व्यापार होता था। लेकिन सबके दिन समान नहीं होते। धीरे-धीरे ह्रास के दिन आये और एक दिन हमारा कारोबार फेल हो गया।

जब मैं इसकी गहराई में जाता हूँ, तो मुझे कारोबार के ठप होने का एक कारण प्रतीत हुआ।

नामदेव नामक एक व्यक्ति की तरफ कुछ रुपया लेना था। बेचारा गरीब था। गरीब था वह आर्थिक दृष्टि से, लेकिन वह अमीर था और वह पूँजी थी उसकी भक्ति-परायणता, सरलता। वह वास्तव में संत-हृदय था। नामदेव तो उसका नाम था ही, पर वह महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत नामदेव–तुकाराम का भक्त भी था।

मैंने अपने मुनीम से अनेक बार कहा कि उस पर मुकदमा मत करो। लेकिन उस पर मुकदमा किया गया, डिगरी भी उस पर हो गयी, फिर भी मैंने कहा कि अब चुप हो जाओ। डिगरी वसूली के लिए वारण्ट मत निकालो। बेचारा कैसे जीवन बितायेगा? लेकिन मुनीम का जीवन अर्थ में ही बीता था, वे उसके आगे किसीको महत्त्व नहीं देते थे।

आखिर वे अपने मन का करके ही रहे। बेचारे के घर के बर्तन आदि भी कुर्क कर लिये गये। उसका तो क्या, वह भक्त था, कुछ भी न बोला।

लेकिन संत को सताना अन्याय है, पाप है, अपराध है। यह मैं पहले से मानता था।

इस घटना ने मेरे मानस पर गहरी चोट की और कारोबार भी चौपट हो गया। किसी महात्मा ने सच ही कहा है कि पाप का एक छींटा भी भस्म कर देता है।

६. सूत के धागे की कीमत

मैंने माँ से आकर कहा कि मैंने आज अमुक बहन को धर्म की बहन मान लिया है और उससे राखी बँधा ली है।

माँ वृद्ध थी, अनुभव था उसे, मातृ-हृदय उमड़ पडा। बोली : बेटे, तूने यह क्या किया ? धर्म की बहन बनाना तो ठीक, लेकिन उसका पालन करना बड़ा कठिन होता है। फिर दो बहनें तो तुमको थीं ही, ऐसी क्या जरूरत थी बहन बनाने की ?

माँ के स्वर मे जरा वेदना और तेजी थी। मैं जवान था। पैसा भी आगे-आगे नाचता था। मैने कहा : माँ, बेचारी का पति भक्त है, किसीके साथ कोई नाता-रिश्ता नहीं, वह अपने को एकाकी, निरीह अनुभव करती है। क्या हुआ बना लिया तो ?

माँ अब क्या कहती।

उस बहन के पति ने मेरी साझेदारी में थोड़ा-बहुत रूई का काम शुरू किया। धीरे-धीरे वे कारोबार बढ़ाने लगे। उनको और अधिक पैसा कमाने का चस्का लगा। मुझसे उन्होने कहा कि बम्बई के अमुक व्यापारी को चिट्ठी लिख दें, ताकि वहाँ कुछ किया जा सके। मैं अनुभवशून्य भावुक था। बातों में आकर चिट्ठी लिख दी। उन्होंने बम्बई में सट्टा खेलना शुरू कर दिया। अन्त में जाकर पता लगा कि उन्हें ६० हजार का नुकसान लगा है। वे तीन साझीदारों के साझे में यह करते थे।

आखिर मैंने उन्हें बहुत कुछ कहा-सुना। वे अपनी बुआ के यहाँ से किसी तरह कुछ रकम लाये। फिर भी थोड़ी-सी रकम उनकी तरफ रह गयी। बाकी सबका नुकसान मुझे चुकाना पडा।

बाद में उन्होंने खानगॉव नामक एक देहात में दूकान की।

बहन को जब मालूम हुआ कि मेरे भाईचारे का उसके पति ने दुरुपयोग किया और सम्बन्ध बिगड़ते जा रहे है, तो वह मन-ही-मन दुखी रहने लगी और अन्त में बीमार पडकर मर गयी।

बहन के मरने के बाद उनके विचार-परिणाम मेरे प्रति बदल गये। मुझे गालियाँ भी बकने लगे। उन्हें एक देहात में मालगुजारी की कुछ जमीन भी

मिली। वह मुझे कर्ज के पेटे देनेवाले थे, लेकिन बहन के मरने के बाद वह जमीन दूसरे को बेच दी।

आखिर मुझे अदालत की शरण लेनी पडी और बाद में उन्होंने प्रायश्चित्त-स्वरूप मुझसे क्षमा भी माँग ली।

अन्त में उन्हें वहाँ के जीवन से ग्लानि हो गयी। मेरे पास आये। बोले: अब मैं यहाँ से विदा हो रहा हूँ। मुझे विदा दे दीजिये।

मैंने उन्हें विदाई में १०१ रुपया दिया और वे किसी तीर्थस्थान पर चले गये।

वे खाने-पीने के मामले में बड़े संयमी थे। किसीके हाथ का पानी भी नहीं पीते थे, किन्तु मानस की गहराई में कौन झाँक सकता है? उमर की तरह विचार-परिवर्तन भी होता ही रहता है।

इस घटना ने मुझे दो पाठ सिखाये—एक तो यह कि किसी की साझेदारी में काम नहीं करना चाहिए, क्योंकि मुख्य साझेदार को सबका नुकसान भरना होता है और दूसरे, किसी प्रकार का सम्बन्ध या रिश्ता बहुत सोच-समझकर बाँधना चाहिए।

७. चुकता रसीद दे दी

एक भाई के द्वारा उनसे मेरा परिचय हुआ। वे सुप्रसिद्ध समाज-सेवक और साहित्य-सेवक माने जाते थे।

वर्धा में मैंने सन् १९२३ मे मध्यप्रदेशीय दिगंबर जैन सभा का आयोजन किया। उनको मंत्री बनाया।

कुछ दिनों बाद उनका पत्र मिला कि व्यक्तिगत जरूरी काम के लिए पाँच सौ रुपये भेजिये। मैंने रुपये भेज दिये।

उन्होंने एक प्रकाशन-संस्था भी खोली। अपने उग्र विचारों के कारण उनको स्टेट ने अपनी सीमा के बाहर चले जाने का आदेश दे दिया। उनकी आर्थिक हालत बिगड़ती गयी थी।

उन्होंने और भी कुछ रुपये मँगाये। मेरी हालत भी उस समय तंग हो गयी थी, फिर भी कुछ रुपया भेज दिया।

समय बदला। उस स्टेट के मुख्य मंत्री बदले। अब जो मुख्य मंत्री थे, वे उनके निकट के मित्र थे। अब वह आदेश उठा लिया गया और वे स्टेट में प्रविष्ट हो गये।

मंत्री महोदय की उन पर कृपा-दृष्टि थी। उनकी छाया में उनका काम बन गया। हालत सुधर गयी। ऊपर की कमाई भी होने लगी।

अपनी हालत खराब होने पर एक बार मैं उनके यहाँ गया। दरवाजे पर आवाज दी। लेकिन भीतर से उन्होंने कहला दिया कि जाओ, कह दो कि बाबूजी नहीं हैं। मैंने यह सुन लिया। वे भीतर थे, पर जब 'नहीं है' कहने का भाव मेरी समझ में आ गया, तो मैं वहाँ से चला गया। लेकिन मैं हार माननेवाला न था।

दूसरे दिन मैं बड़े सबेरे उनके यहाँ पहुँच गया। वे दरवाजे पर दतौन कर रहे थे। मुझे देखते ही बोले : ओहो ! चिरञ्जीलालजी ! आप कब आये ? ठहरे कहाँ हैं ? यहीं क्यों नहीं ठहर गये ?

इस समय कटु या नंगे सत्य का या खरी-खरी सुनाने का मैंने संवरण किया। जैसे वे शब्दों के माध्यम से अपनी असलियत को छिपा गये और अकटु सभ्यता के आवरण में अनैच्छिक अहिंसक बने रह सके, वैसे ही मैं भी नग्न सत्य को पीकर रह गया। मानो कल कुछ हुआ ही न था।

उस दिन उन्हींके यहाँ भोजन किया। उनसे कहा कि मुझे रुपयों की जरूरत है। दे सकें, तो बड़ी कृपा होगी।

लेकिन उन्होंने बड़ी नम्रतापूर्वक इनकार कर दिया। कहा कि अभी तो हैं ही नहीं, होते तो आपके रुपयों की क्या बात थी।

मैं जानता था कि उनके पास अब पैसा भी था, स्टेट में मान भी था और पहले दिन के व्यवहार को भी देख चुका था।

मैं व्यथित और उत्तेजित हो उठा। मैंने उसी समय कोरा कागज लिया और उस पर 'रुपये भरपाये' की रसीद लिख दी। रसीद में मैंने लिखा था :

श्री बाबूजी,

मैं आपके यहाँ आया। आपने घर में होते हुए भी कहला दिया कि आप घर में नहीं हैं। लेकिन आपके सम्बन्ध को देखते हुए मैं आपके स्नेह को कैसे छोड़ सकता हूँ ? मुझे इस समय रुपयों की बहुत जरूरत थी। किन्तु आपने इनकार कर दिया। खैर, कोई बात नहीं।

इस रसीद के द्वारा मैं लिख दे रहा हूँ कि मुझे पूरा रुपया मिल गया है। अब मेरा आपकी तरफ किसी प्रकार का लेना-देना नहीं रहा।

इसके बाद भी मैं उनके यहाँ आता-जाता रहा। उन्हींके यहाँ भोजन भी करता रहा, लेकिन कभी भी उन्होंने उस रसीद की और रुपयो की चर्चा नहीं की।

८. उदयलालजी काशलीवाल

मेरी उम्र कोई २० वर्ष की रही होगी। नया-नया खून था, नया-नया उत्साह था। समाज-सेवा के मैदान में उतरा ही था। वर्धा के दिगम्बर जैन बोर्डिंग हाउस का सभापतित्व भी मुझे मिल गया। समाचार-पत्रों ने मेरा नाम छापा।

उदयलालजी काशलीवाल ने समाचारपत्रों में मेरा नाम पढ़ा। परिचय बढ़ाया। मैं उनसे बहुत प्रभावित हुआ। वे भी तरुण थे।

एक बार उन्होंने लिखा कि वे मणिभद्र उपन्यास का हिन्दी में अनुवाद कर रहे हैं। उसको प्रकाशित कराना है, पाँच सौ रुपया भेज दें। मैंने रुपया भेज दिया।

मणिभद्र छप गया। पुस्तक मुझे समर्पित की गयी। उसमे मेरे लिए बड़े ऊँचे शब्दों का प्रयोग किया गया था। लेकिन मै तो ऊँचे शब्दों और समर्पण के शब्द को भी न जानता था।

एक दिन वे अचानक वर्धा आये। आते ही बोले : चिरञ्जीलालजी कहाँ हैं। हमारा तब तक साक्षात् परिचय नहीं हुआ था। फिर तो वे मुझसे ऐसे मिले कि मानो हम जन्म-जन्मान्तर के सगे भाई हों।

वर्धा वे कुछ दिनों तक रहे। मैंने उनको बड़े प्यार से रखा। बड़े ही नम्र और सात्त्विक स्वभाव के थे वे।

उन दिनों अन्तरजातीय या विधवा-विवाह करना आसान बात न थी। ज़रा-ज़रा-सी बात पर जाति-बहिष्कार की घोषणा हो जाया करती थी। उदयलालजी विवाह करना चाहते थे। समाज में प्रयत्न किया गया। मेरी माँ भी पाँच हजार रुपये खर्च करने को तैयार थी। लेकिन दुर्भाग्य से वे और हम उस जाति में पैदा हुए थे जिसमें पैसे का ही बोलबाला रहा। गरीब को कन्या कौन देता!

वे सुधारक तो थे ही। एक विधवा ब्राह्मणी से उनका विवाह करा दिया गया। अर्जुनलालजी सेठी विवाह के पुरोहित बने थे। विवाह के पाँच-छह वर्ष बाद वे चल बसे। ब्राह्मणी अब पागल-सी हो गयी। प० नाथूरामजी प्रेमी इस संबंध के पक्ष में नहीं थे।

सेठ जमनालालजी बजाज ने उदयलालजी की प्रतिभा से प्रभावित होकर पन्द्रह हजार रुपये से बंबई में गांधी हिन्दी पुस्तक भंडार खुलवा दिया था। बाद में वह साहित्य भवन लिमिटेड में परिवर्तित हो गया। वह ब्राह्मणी अब दिन को ही लालटेन हाथ में लेकर शहर में घूमने लगी और सेठजी को बदनाम करने लगी कि मेरे पति के पन्द्रह हजार रुपये खा लिये।

मैं उस समय यद्यपि उनके काम पर नहीं था, फिर भी यह मुझसे बरदाश्त न हो सकता था। सेठजी ने भी मुझसे इसका संकेत किया। मैंने किसी तरह समझा-बुझाकर उस ब्राह्मणी को विश्वम्भरदासजी गार्गीय, झाँसी के यहाँ भेज दिया। वहाँ भी वह पागल-सी रही। वे भी दुःखी रहे। अंत में वह मर गयी। इस बात का आज भी हमें अफसोस है कि उदयलालजी की मित्रता के नाते भी उस ब्राह्मणी को न सँभाल सका। लेकिन मेरी भी कुछ लाचारी थी।

उदयलालजी समाज के सच्चे सेवक और उत्साही युवक थे। हमारी मित्रता भी अंत तक बनी रही। खेद है कि ऐसे सेवक की प्रतिभा का लाभ समाज को अधिक समय तक न मिल सका।

उदयलालजी के स्मरण में सेठ जमनालालजी ने ब्र० शीतलप्रसादजी को सनातन जैन समाज के संचालन के लिए पाँच सौ रुपये दिये थे।

९. मेरी दुर्बलता

मुझे विद्वानों और त्यागियो के संसर्ग मैं आनन्द आने लगा था । जब मुझे मालूम हुआ कि अमुक त्यागी और विद्वान् को एक आश्रम इसलिए छोड़ देना पडा कि उनके विचार परम्परा और रूढियों के बहुत आगे थे। वे समाज-सेवक तो थे, पर अपने ढंग के थे। भरी जवानी मैं उन्होंने सन् १९१० में घर-बार छोड दिया, ऊँची सरकारी नौकरी छोड दी और सेवा के मैदान में कूद पड़े। चार साल तक एक शिक्षा-संस्था के संस्थापक, अधिष्ठाता, सञ्चालक और सर्वस्व रहने के बाद उन्होंने उसे छोड दिया। समाज उनके प्रयोगों को सहन न कर सका।

मेरे प्रेमभरे निमत्रण पर वे वर्धा आ गये। एक सज्जन के यहाँ वे भोजन करते और बोर्डिंग के अधिष्ठाता का कार्य करते थे। उस समय तक वे सातवीं प्रतिमाधारी थे।

कुछ समय बाद बोर्डिंग हाउस का अधिवेशन हुआ। बोर्डिंग के बीच की मंजिल पर अधिवेशन हो रहा था। ब्र० शीतलाप्रसादजी वहाँ उपस्थित थे। समाज रूढ़िप्रिय था। ब्रह्मचारीजी की उन दिनों चलती थी। अधिष्ठाताजी ऊपर के भाग मे बैठे थे। उनको वर्किंग कमेटी में नहीं बुलाया गया। ब्र० शीतलाप्रसादजी अधिष्ठाता बना दिये गये।

बाद में अधिष्ठाताजी के पास जब मै पहुँचा, तो वे व्यथित थे। उन्होंने कहा: मुझे यहाँ बुलाया क्यों गया? क्या मैं राह का भिखारी था कि यहाँ भटक गया? क्या मै इतना खतरनाक था कि मीटिंग में बैठ भी नहीं सकता था? मुझमें काटो तो खून नहीं! वस्तुतः यह मेरा बहुत बड़ा अपराध था। एक त्यागी का यह अपमान था, जो मेरी कमजोरी से हुआ। समाज तो महान् लोगों को ठुकराता ही है। और वह दुःख की बात नहीं, पर मैं ही उस समय समाज की हवा में क्यों बह गया, पता नहीं। आज भी मुझे इस घटना का दुःख है।

१०. बालपन की प्रीत

बचपन की मधुर स्मृतियाँ जीवन की स्थायी निधि होती हैं। उषःकाल की तरह बचपन भी बड़ा पवित्र, निर्मल, प्रेरक और मधुमय होता है। लेकिन यह समय सदा टिकता नहीं और फिर तो केवल स्मृतिमात्र ही रह जाती है।

उस दिन मैं जयपुर के रामनिवास बाग मे टहल रहा था, तो पीछे से किसीने आवाज दी : ओ चिरंजी ! ओ चिरंजी !! सुनकर मैं अवाक् रह गया। आज इस स्थान पर चिरंजी कहनेवाला कौन महाभाग है ? नजदीक आने पर मैंने पहचाना कि वे मेरे बचपन के साथी गोपीचन्दजी चौधरी थे।

एक समय था, जब हम दोनो साथ-साथ खेलते थे, पढ़ते थे। बचपन के राज मे न कोई छोटा-बड़ा होता है, न कोई धनी-गरीब, न कोई ऊँच-नीच। बचपन में हर व्यक्ति धूलभरा हीरा होता है।

बरसों बाद हम मिले थे। आँखों से आँखें मिलीं, आत्मा से आत्मा। दो बचपन एक साथ मिल रहे थे। उन्होंने विनोद करते हुए कहा : अरे चिरंजी, भूल गया, अब काहे को याद करे तू। बड़ा हो गया, पैसा भी हो गया। घमंड आ गया तुझे। अब वे मुझे कहाँ छोड़नेवाले थे। अपने घर ले गये। आतिथ्य-सत्कार किया।

अब जब भी जयपुर जाता हूँ, तो उनके यहाँ गये बगैर नहीं रहता।

जीवन में हजारों से सम्बन्ध आता है, मित्र बनते हैं, लेन-देन चलता है; लेकिन इन सबके बावजूद भी बचपन के साथी से मिलने में जो अमृतोपम सुख मिलता है, उसकी तुलना स्वर्ग से भी नहीं की जा सकती।

११. मेरी पढ़ाई

आज से पचास वर्ष पहले की बात कह रहा हूँ। पढ़ाई तो हर युग में होती रही है और आगे भी होती रहेगी। पढ़ाई-शास्त्र के इतिहास में मुझे जाना भी नहीं है। मैं तो केवल यह बताना चाहता हूँ कि पढ़ाई की आत्मा क्या होती है। देहातों में विज्ञान तो अब भी नहीं पहुँचा है, लेकिन पचास वर्ष पहले तो उसकी गंध भी नहीं थी।

हम सब बच्चों को एक मौलवी साहब पढ़ाया करते थे। स्लेट-पैंसिल उस समय नहीं थी। मिट्टी का समतल ढेर बनाकर उस पर लाल गेरू बिखेर दी जाती थी और उस पर लकड़ी के बड़ते से अक्षर लिखे जाते थे। मौलवी साहब बच्चों को उर्दू पढ़ाते थे, और एक पंडितजी पहाड़ा आदि। जब कभी कोई त्यौहार या उत्सव आदि का दिन आता, तब उर्दू के कुछ शेर आदि कंठस्थ करने को देते थे।

और इस सब पढ़ाई के बदले मौलवी साहब को हर घर से महीनेभर में आध सेर आटा मिलता था। वे उसीमें संतुष्ट रहते थे।

गाँव का शिक्षक, गाँव का वैद्य गाँव की निधि होते हैं। गाँव उनकी फिक्र करे और वे गाँव की। लेकिन आज तो सारे संबंधों की आत्मा पैसा हो गया है। शिक्षक बिना रुपयों के बात नहीं करता और वैद्य भी बिना पैसे लिये किसीके दरवाजे पर पैर नहीं रखता।

आज की पढ़ाई इतनी भार रूप हो गयी है कि बड़े-बड़े विचारक उसका तोड़ देने की बात करते हैं।

असली पढ़ाई है प्रेम और अनुभव। प्रेम का अढ़ाई अक्षर पढ़ लें तो भी पंडित हो सकते हैं।

१२. जैन पोलिटिकल कान्फ्रेंस

पूज्य बापू ने देश में राजनीति की हवा फैला दी थी। बड़े-बड़े विचारक गांधी की आंधी में कूद पड़े थे। फिर भी देश का अधिकाश वर्ग इससे घबराता था, भयभीत था। ब्रिटिश सत्ता थी।

किसीने मेरे सामने सुझाव रखा कि वर्धा में जैन पोलिटिकल कान्फ्रेंस की जाय। मैं राजी हो गया। श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह को अध्यक्ष मनोनीत किया गया। महात्मा भगवानदीनजी को बुलाया गया। अर्जुनलालजी सेठी पूरे जोश से उसमें लगे थे। श्री अजितप्रसादजी लखनऊ भी आये थे।

एक स्थानीय व्यापारी को हम लोगों ने स्वागताध्यक्ष बनाया था। उस समय तो पोलिटिकल या राजनीतिक नाम से ही विदेशी सत्ता को चिढ़ थी।

चारों तरफ पूछताछ होने लगती। हमारे स्वागताध्यक्ष महोदय तो एक तीर्थ पर चले गये।

जब पूज्य जमनालालजी बजाज को मालूम हुआ कि वे कांफ्रेंस आदि में कुछ समझते नहीं और घबरा गये हैं, तो मेरी ओर से उनको पत्र लिख दिया कि वे बिलकुल न घबरायें। आप स्वागताध्यक्ष नहीं रहेंगे। आपका इस्तीफा मंजूर कर लिया है। पर वे कांफ्रेंस तक नहीं लौटे।

मैं भी कान्फ्रेंस का अर्थ नहीं जानता था। जमनालालजी ने मुझे भी बहुत कुछ समझाया। उस समय वे राय बहादुर भी थे।

कांफ्रेंस का समय निकट आया। श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह, महात्मा भगवानदीनजी आदि का भव्य जुलूस निकाला गया। एक से एक बढ़कर भाषण हुए। पंडित नेकीराम शर्मा और खापर्डे महाराज के भी राजनीतिक भाषण हुए।

जैन भाइयों ने कांफ्रेंस को असफल बनाने का प्रयत्न किया। ब्र० शीतल-प्रसादजी भी वहाँ पहुँच गये। लेकिन कांफ्रेंस हुई और सफल हुई।

उसके वे सजीव दृश्य आज भी मेरी आँखों के सामने झूमने लगते हैं। इसी अधिवेशन में महात्मा भगवानदीनजी को एक मानपत्र दिया गया, जिसमें उनको षष्ठ गुणस्थानवर्ती लिखा गया था। षष्ठ गुणस्थान में तो सर्व-संग परित्यागी मुनि ही आते हैं। अतः उनके प्रति इस पद का व्यवहार सारे समाज के लिए खलबली का विषय बन गया था। और यह उस समय की बात है, जब कि सरकार के विरुद्ध एक शब्द बोलना भी गुनाह था, सामाजिक क्रांति की बात करना अपराध था। धर्म रूढ़ियों में आबद्ध था, शिक्षा की दृष्टि से समाज एकदम गिरा हुआ था। उस समय का यह प्रयत्न आज की अपेक्षा बाल-प्रयोग ही था, फिर भी उसका अपना महत्त्व था।

१३. दिवालिया होने से बच गये

सन् १९२७ में हमारा कारोबार फेल हो गया। लोगों का लगभग सवा लाख रुपया देना सिर पर था। एक लाख रुपया उधारी में अटक गया, कुछ खेती में और मकान आदि में।

बहुत से लोगों ने कहा कि अगर हम दिवालिया बन जायँ तो घर के जेवर, खेतीबारी बच जायगी और साहूकार लोग भी चुप हो जायेंगे। हिस्से के अनुसार कर्ज अदायगी हो जायगी। बहुत से कर्जदार दिवालिया बन जाते थे, लेकिन यह अपमानजनक माना जाता था। दिवालिया बनना एक प्रकार का कलंक माना जाता था। माँ ने कहा कि चाहे सर्वस्व चला जाय, लेकिन दिवालिया नहीं बनना है।

सेठ जमनालालजी बजाज ने इस संबंध में हमारी बहुत मदद की, काफी समय दिया। उन्होंने और पू० जाजूजी ने भी यही कहा कि दिवालिया बनने की जरूरत नहीं है। सेठजी ने सारा हिसाब-किताब देखा। बहुत से साहूकारों को बुलाकर किसीको खेत, किसीको मकान, किसीको नकद चुका-चुकाकर हिसाब निपटाते रहे।

उनका स्वय का भी काफी रुपया था। लेकिन उन्होंने मकान, जेवर, खेत आदि न लेकर असामियाँ ही ली। यानी उधारी ही अपने लिए ली। प्रायः कोई साहूकार उधारी नहीं लेना चाहता।

उनकी सलाह और मदद से मैं और मेरा परिवार इस बड़े भारी संकट से मुक्त हो गया। यों तो सेठजी के हम पर अनन्त उपकार हैं, किन्तु जब मैं उनके यहाँ काम नहीं करता था और बाजार में बैठकर मुँह पर कालिख पुतने का समय आ गया था, तब सेठजी ने जो ढाढस बँधाया, लोगों का देना निपटाया, वह हमारे जीवन के लिए बहुत बड़ी बात है।

१४. मित्रता के नाम पर

एक बार एक भाई मेरे पास आये। उनकी स्थिति तंग थी। सुधारक भी थे। किसी भी सुधार और सुधारक को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती थी। उसके लिए कुछ किया जाय, यह मेरी इच्छा रहती थी।

उन्होंने कहा कि अगर दो हजार रुपया मिल जाय, तो वे खादी-प्रचार का काम करना चाहते हैं। खादी-काम उन दिनों शुरू ही हुआ था। मैंने सोचा, अगर ये खादी का काम करें और कुछ जीविका भी निकल आवे, तो ठीक है। रुपया तो बाद में दे ही देंगे।

कुछ समय बीतने पर मैंने रुपयों की माँग की और उनकी हालत भी ठीक हो गयी थी। तब उन्होंने देने से इनकार कर दिया। मित्र पर नालिश करना मैंने उचित नहीं समझा। कानूनी मियाद तीन वर्ष की होती है। वह खतम हो चुकी थी। उसका उन्होंने नाजायज फायदा उठाया।

आखिर दो हजार का फैसला एक हजार में किया गया। सौ रुपये प्रतिवर्ष की किश्तें बाँधी गयीं। लेकिन वे भी पूरी नहीं चुकीं।

उस घटना ने मुझे व्यथित तो किया ही, लेकिन एक सबक भी दिया और वह यह कि अगर किसीको मित्र मानते हो, तो कर्ज से रकम मत दो। कुछ देना ही पड़े, तो कर्ज मानकर मत दो और वापस नहीं मिलती है, तो दुःख मत मानो। वापस लेने की भावना से मत दो।

पैसे के चक्कर में मित्रता के धर्म को निभानेवाले विरले ही होते हैं।

१५. मन्दिरों का परिग्रह

हमारे यहाँ परिग्रह को पाप कहा गया है। परिग्रह सारे अनर्थों की जड़ होती है। हिंसा के साथ-साथ परिग्रह को जोड़ने का यही अर्थ है कि परिग्रह भी हिंसा और विनाश का कारण होता है।

लेकिन जिस प्रकार चोरी करना अपराध माना गया, तिरस्करणीय माना गया, वैसे ही परिग्रह को तिरस्करणीय या त्याज्य नहीं माना गया। अपरिग्रह को व्यक्तिगत जीवन में प्रतिष्ठा तो मिली, किन्तु समाज-जीवन में परिग्रह की ही महिमा रही। परिग्रह को तो बल्कि कानून का भी सहारा मिलता गया।

जो परिग्रह समाज में प्रतिष्ठा पाता रहा, वह वीतराग-मंदिरों में भी संचित होने लगा। वहाँ भी सोने, चाँदी और हीरे-जवाहरातों का प्रवेश हो गया।

एक ओर तो हम यह कहते रहे कि मंदिरों में जो कीमती उपकरण हैं, वे निर्माल्य हैं, जो चीज चढ़ा दी गयी, वह छूने के योग्य नहीं रह जाती; लेकिन दूसरी ओर उसकी रक्षा के लिए नाना प्रकार के हिंसक साधनों का उपयोग भी करते रहे हैं। बन्दूकधारी सिपाही भी पहरे पर रखे जाने लगे। एक ओर तो त्याग की यह उत्कृष्ट भावना कि मंदिर के उपकरणों को छूना भी पाप और दूसरी

श्रोर उनकी रक्षा की आसक्ति में हम इतना भी भूल गये कि उसके लिए साधन कैसे चाहिए। इस तरह हमारे त्याग की रक्षा हिंसा के बल पर की जाने लगी।

जिन लोगों ने मन्दिर-निर्माण की प्रथा डाली, वे कितने महान् थे! उनकी सीख को मानकर जिन लोगों ने अपनी अर्जित कमाई में से लाखों रुपयो का दान करके देशभर मे जो बड़े-बड़े मन्दिर खड़े कर दिये हैं, वे भी धन्यवाद के अधिकारी हैं। आज की नवशिक्षित पीढ़ी भले ही उन मन्दिरों में लगी रकम का उपहास उड़ाये और कहे कि अरबो रुपयों की राष्ट्रीय संपत्ति बेकार पड़ी है। लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि हमारी संस्कृति में पैसे को उतना महत्त्व कभी नहीं दिया गया, जितना आज दिया जाता है। पैसा पुराने लोग भी कमाते थे, लेकिन उसके त्याग के महत्त्व को भी जानते थे और सामाजिक तथा धार्मिक जीवन की साधना के लिए उसका सदुपयोग भी करते थे। हमारे देश के हजारो मन्दिर इस बात के जीवंत उदाहरण है कि भोग की अपेक्षा त्याग का आदर्श पूर्वजों के सामने था। आज हमारा जो सामाजिक जीवन है, वह इन मन्दिरों, शास्त्र-सभा, पूजा-उपासना पर ही आधारित है।

१६. ये स्त्रियाँ और ये पुरुष

एक संस्कृत के विचारक ने कहा है कि स्त्री का चरित्र और पुरुष का भाग्य कोई नही जान सकता। यह लिखनेवाला पुरुष था। अगर लिखनेवाली विदुषी होती, तो वह लिख सकती थी—पुरुष का चरित्र और स्त्री का भाग्य कोई नहीं जानता।

दोनो के भाग्य और दोनों के चरित्र पर, दुर्भाग्य और दुश्चरित्र पर भारतीय वाङ्मय में सहस्रो कथाएँ मिलती है।

भाग्य और चरित्र के मूल्य युग-युग में बदलते रहे हैं, आगे भी बदलते रहेंगे। एक जमाने में भाई-बहन ही पति-पत्नी बन जाते थे, और यह उस समय का नैसर्गिक विधान था। किसी जमाने में एक-एक पुरुष के लिए सहस्रों पत्नियों का विधान किया गया और सबसे गौरवशाली, महान् वह माना गया, जिसके पास सबसे अधिक पत्नियाँ हों, और यह संख्या ९६ हजार रानियो तक पहुँच गयी।

एक जमाना ऐसा भी आया कि जिसमें स्त्रियाँ अपने पति के साथ सती होना

अपना धर्म मानती थीं। किसीने कहा, वहाँ देवता रहते हैं, जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है और किसीने नारी को विष की बेल भी कह दिया।

समाज का ढाँचा परिस्थितियों के अनुरूप बनता-बिगड़ता है। हिमालय की तराई में आज भी बहु-पतित्व की प्रथा है। दक्षिण में आज भी मातृ-सत्ता चलती है। मतलब यह कि एक जमाने में जो धर्म माना गया, वह किसी दूसरे जमाने में अधर्म हो गया और जो अधर्म था, वह धर्म हो गया।

आज समाज का जो रूप है, उसमें एक पति और एक पत्नी आदर्श या धर्म माना जाता है। विधवा-विवाह के बारे में सुधारक वर्ग का कहना है कि वह धर्म तो नहीं है, किन्तु परिस्थिति विशेष में अधर्म भी नहीं है।

हम यहाँ पर कुछ ऐसे उदाहरण रखेंगे, जिनसे समाज सुधार की समस्या कितनी जटिल है, यह विदित होगा।

× × ×

एक दिन एक आदमी हमारे पास आया और बोला कि उसकी पत्नी अमुक आदमी के घर चली गयी है, अब लौटना नहीं चाहती।

मैंने उस आदमी को बुलाकर पूछा, तो उसने कहा कि सेठ जी, इसमें मेरा दोष नहीं है, वह खुद आयी है। मेरा तो उसे रखने का इरादा नहीं है। जाती हो तो जाय।

अब उस स्त्री से पूछने की बारी थी। उसने कहा, सेठजी, मै अपनी वेदना कैसे बताऊँ। मेरा आदमी रोज दो-चार आदमी को लाता है, पुलिस मैनों को लाता है। और जबरदस्ती मुझ पर अत्याचार, बलात्कार कराता है। उसके इस अमानुषी अत्याचार से मैं तंग आ गयी हूँ। इसीसे सोचा कि किसी एक के साथ रहकर जीवन बिताना अच्छा है।

अब मैं क्या कहता।

मैंने पति-पत्नी दोनों को देहात में, खेती पर भेज दिया। सोचा कि अलग रहने से दोनों में प्रेम रहेगा और स्त्री भी बच जायगी। लेकिन वहाँ दूसरा ही काड हो गया। खेती की देखरेख हमारे एक रिश्तेदार करते थे। वे अविवाहित थे। वे स्वयं ही उस स्त्री के जाल में फँस गये।

जब मुझे मालूम हुआ, तो मैंने अपने रिश्तेदार भाई से कहा कि तुम इससे

शादी कर लो। शादी से वे इनकार हो गये। शादी तो वे जाति के सिवा और कहीं करना नहीं चाहते थे।

आखिर एक सज्जन मेरे पास आये। ये शादी करना चाहते थे। मैंने उनसे सारी परिस्थिति बता दी। फिर भी वे राजी हो गये। उनकी शादी करा दी।

बरसों के बाद जब वे सज्जन मुझसे मिले, तो कहा कि आपके कारण मेरी शादी हो गयी, हम दोनों बड़े सुखी हैं। अनाचार या भ्रष्टाचार की कोई घटना नहीं घटी।

आज वे जीवित नहीं हैं, पर उनके संतान हैं, पास में कुछ पैसा भी है। परिवार की प्रतिष्ठा भी है।

जिसकी स्त्री को समाज ने पतिता कहा, वह सती निकली और जिन लोगों ने शादी से इनकार किया, वे दब्बू और व्यभिचारी। आज जो लोग जाति-मर्यादा की बात करते हैं, प्रस्ताव करते हैं, वे स्वयं इतने गिरे हुए होते हैं कि सिर लज्जा से झुक जाता है।

× × ×

हमारे एक तरुण कार्यकर्ता ने अन्तर्जातीय विवाह किया। विवाह कभी छिपकर नहीं होता। कार्यकर्ता पढ़ा-लिखा है। उसकी पत्नी भी पढ़ी-लिखी है। बरात में जाति के लोग भी शामिल हुए थे। प्रान्त और देशभर में पत्रिकाएँ गयीं। विवाह के बारह महीने बाद तक जातीय सभा या पंचायत की आँख नहीं खुली। आँख खोलना उन लोगों ने ठीक भी नहीं समझा, क्योंकि खतरा भी वे लोग देख रहे थे। कहीं उस कार्यकर्ता ने अदालत में घसीट लिया तो! बारह महीने बाद भी सभा-संचालकों ने कोई निर्णय नहीं किया और एक जाँच-कमेटी यह पता लगाने के लिए नियुक्त की कि विवाह हुआ है या नहीं।

और यह सभा इतना ही नहीं करती, यह भी करती है कि आप चाहें जैसा विवाह कर लीजिये, उसका आनन्द लूटिये, बाल-बच्चे पैदा कीजिये; लेकिन लिखकर दे दीजिये कि हमारा उस स्त्री से संबंध नहीं है, तो आपको जाति में ले लिया जायगा। आप निर्दोष करार दिये जायँगे।

जो सच्चा सुधारक होगा, वह इन खतरनाक लोगों और उनकी खतरनाक सभाओं से अवश्य बचेगा। वे खुल्लमखुल्ला कहते हैं—घर में रखने का दोष नहीं, शादी करना ही पाप है।

× × ×

एक समाज-सुधारक भाई अपने रिश्ते की किसी विधवा बहन को लेकर आये। कहा कि इसका विवाह कहीं करा दीजिये। वह बहुत सुन्दर थी, लेकिन विधवा जो थी! आखिर एक भाई मिले। उनसे विवाह करा दिया गया। वे एक मिल में काम करने लगे।

मिल के अस्पताल में एक नर्स से उनका प्रेम हो गया। नर्स से प्रेम हो गया, तो पत्नी से दिल का हट जाना स्वाभाविक था। पत्नी को यह बरदाश्त नहीं हुआ। उसने परिचितो म अपनी शिकायत रखी। लेकिन परिणाम क्या होता। पति ने पत्नी पर लाञ्छन लगाये। उसे दुश्चरित्रा कहा।

वह बेचारी गरीबी में समय गुजारती रही। दो लड़कियों का भार भी उस पर पड़ गया था। कुछ पढ़ी-लिखी थी। एक जगह कन्या-शाला में अध्यापकी मिल गयी। पेट पालने लगी।

कुछ समय बाद उसके पिता का देहान्त हो गया। पिता की कुछ संपत्ति उसे मिल गयी। उससे उसे कुछ ब्याज की आय होने लगी। एक मकान भी बना लिया। आज वह अपनी लड़कियों सहित खा-पीकर सुखी है।

लेकिन जिसको प्रेम का, रूप का आकर्षण होता है, उसे पैसे का भी होता है। अब उसका पति कहने लगा कि यह मकान कहाँ से बना? यह सारा पैसा उसीकी कमाई का है। वह परित्यक्ता पत्नी भी उसकी, उसके पिता का धन भी उसीका, मकान भी उसीका! धमकियाँ दी जाने लगीं।

एक बार उसने अपने पति पर अदालत में मुकदमा भी किया था कि उसके उदर-निर्वाह की व्यवस्था हो। अदालत ने २५ रुपया मासिक का फैसला दे दिया। किन्तु यह समाज कानून और नैतिकता की परवाह कब करता है। आज वही पति सिद्ध करना चाहता है कि उसकी पत्नी के पास जो कुछ सम्पत्ति है, वह उसीकी अर्जित है। क्या उसने उसे लाञ्छित करने में कसर रखी थी? जिन लोगोंने उस बेचारी के प्रति सहानुभूति बतायी, उन्हींको उस पति ने लांछित किया।

और यह घटना हमें बताती है कि समाज कहाँ खड़ा है—पति और पत्नी दोनों में से किसी पर भी उसका नियंत्रण नहीं, दोनों की उसे परवाह नहीं, दोनों के प्रति उसकी कोई जवाबदारी नहीं--फिर भी समाज का हर प्राणी आँख उठाकर देखने को तैयार।

जो नर्स है, वह भी समाज का एक अंग है; जो पति है, वह भी समाज की इकाई है। पर समाज तब तक नहीं देखता, जब तक परंपरा में बाधा न आये। क्या कोई भला आदमी कह सकता है कि नर्स का अपराध कम है? क्या वह समाज की व्यवस्था में विघ्न डालनेवाली अपराधिनी नहीं है और उसकी पत्नी ने अपने भरण-पोषण के लिए २५ रुपया की डिकरी करवा ली, तो क्या गुनाह किया था?

× × ×

अब यह भी एक घटना लीजिये।

रिश्ते में हमारे एक काका मर गये। उनकी विधवा पत्नी अपने को संयम से रख पाने में असमर्थ थी। सुना कि दो बार भ्रूण हत्याएँ भी हो गयीं। ये भ्रूण हत्याएँ उन लोगों से हुईं, जो विधवा-विवाह और अन्तर्जातीय विवाह को फूटी आँखों भी नहीं पसन्द करते।

इस तरह के पाप की अपेक्षा मैंने यह उचित समझा कि उसका किसी एक के साथ विवाह कर देना ठीक होगा। किसीने सुझाव दिया कि हमारी खेती पर जो एक जातीय भाई काम करते हैं, उन्हींसे विवाह कर दिया जाय। वह भी राजी हो गये। विवाह कर दिया।

इधर इससे विवाह हुआ, लेकिन उधर देहात में एक दूसरी स्त्री से उसका प्रेम-संबंध भी था। लोगों को इसका पहले पता न था। जब इस विवाहित पत्नी ने आक्षेप किया, तो वह अपनी प्रेमिका को शहर छोड गया। शहर में खेती के काम-काज से आता, तब उसके यहाँ भी जाता। उसके बाल-बच्चे भी होते रहे। इस पत्नी से भी दो लड़कियाँ हुईं।

खेती के काम की ओर दुर्लक्ष्य होने लगा और बहुत सारी चीजे गायब होने लगीं। धीरे-धीरे पता चला कि ये चीजें वह अपनी प्रेमिकाके यहाँ पहुँचाता है।

पत्नी तो नाराज थी ही, हम लोग भी इस चीज को बरदाश्त नहीं कर सकते थे। उस पर अनेक प्रकार के बन्धन डाले गये, लेकिन प्रेम अन्धा जो होता है।

धीरे-धीरे वह दमे का शिकार हो गया। दोनों वृद्ध हो चले। बरसों तक खेती पर काम करने के कारण हमारे परिवार के सदस्य-जैसे हो गये।

मैं दोनों से बराबर कहता कि हमसे संबंध मत रखो। लेकिन वे क्यों मानने

लगे। लड़कों को यह सब बरदाश्त न होता था। सब मुझे ही कहते कि यह विवाह कराकर मैंने आफत मोल ली। मैं अपनी नैतिक जवाबदारी को समझता था।

विवाह मैंने कराया था। अगर यह असफल हो जाता है, तो फिर सुधारक किस मुँह से अपनी बात रख सकेंगे ?

दोनों लड़कियों के विवाह भी मैंने करवा दिये। आज दोनों में से एक का देहांत हो गया है।

आज भी दोनों हैं, रहते हैं।

उसकी जो लडकी मर गयी है, उसके पति ने समाज को सभा को लिखकर दे दिया कि उसने विवाह करके गलती की थी, उसे इसका पश्चात्ताप है। उसकी प्रार्थना है कि उसे सभा में, जाति में फिर से शामिल कर लिया जाय।

चूँकि उसने अब थोडा पैसा भी कमा लिया है और अपने रिश्ते की एक बहन वह सभा के मंत्री के भतीजे को देने का प्रलोभन दे चुका है, इसलिए मंत्री महोदय ने अपने जैसे दकियानूसी विचारकों की सलाह से उसे जाति में ले लिया और यह शर्त लगा दी कि वह तीर्थराज, सम्मेद शिखर की यात्रा करके आये। सबसे बडी शर्त यह रखी गयी कि वह अपने लडकों का विवाह उस जाति में नहीं कर सकेगा।

सभा के सभापति से जब किसीने प्रश्न किया, तो जवाब मिला कि—अजी, लडके जायेंगे कहाँ, लेकिन आज तो जाति-मर्यादा के लिए हमें ऐसा करना ही पड़ा।

अब पाठक सोचें कि यह जाति-मर्यादा क्या है और व्यक्ति-मर्यादा क्या है ?

जो अपनी स्त्री के मरने पर सास-ससुर को अपने यहाँ रखने से इनकार कर देता है, जो जीवनभर किसी एक के साथ रहकर भी उसे गलती मानता है—क्या उसकी भी कोई मर्यादा है ? अगर वह न मरती, तो क्या वह उसे गलती मानता ? कानून उसे गलती मानने देता ? और जब उसने विवाह किया था, तब क्या यह कहा था कि मैं गलती कर रहा हूँ। तब तो उसने यही कहा था कि वह सुधारक है, क्रान्ति की ओर कदम रख रहा है।

क्या ऐसे आदमी का भी कभी विश्वास किया जा सकता है ? लेकिन हाँ,

किया जाता है। और उस समाज में किया जाता है, जो समस्त गुणों को ताक में रखकर जाति-मर्यादा का दम भरता है।

और यह जाति-मर्यादा भी किस चिड़िया का नाम है? घर में रहकर कोई कितना ही अनाचार, व्यभिचार, दुराचार करता रहे, शराबी हो, जुआरी हो, मिथ्याभाषी हो, चोर हो, चाहे जो हो—किन्तु जो केवल अन्य जाति में विवाह नहीं करता, तो मान लिया जाता है कि जाति की मर्यादा की रक्षा हो गयी। और हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि ऐसे ही बहुत से लोग सभाओं के, समाज के कर्णधार कहलाते है।

१७. हत्या के कगार पर

उस समय मैं सात वर्ष का था। नानाजी के यहाँ पढ़ने के लिए भेज दिया गया था। एक दिन नानाजी का अचानक देहात हो गया। उम्र उनकी ८५ वर्ष की थी। उनकी मृत्यु अफीम खाने से हुई थी, इस बात की लोगों में काफी चर्चा थी। कोई कहते थे कि उन पर कर्ज हो गया था, इसलिए मर गये; कोई और कुछ कहते थे।

मेरे मामाजी की पहली पत्नी का देहात हो गया था। उन्होंने दूसरा विवाह बड़ी उम्र मे किया। विवाह के थोड़े दिन बाद ही वे चल बसे। उनकी पत्नी जवान थी। इतना मुझे याद है कि मामीजी मुझे बड़े प्यार से रखती थी। खिलाती-पिलाती थी। एक दिन गाँव के पंच लोग आपस में कानाफूसी करने लगे। रात को बैलगाडी मँगाकर मामीजी को उसमें बैठाकर ले चले। मैं नहीं जानता था कि यह क्या हो रहा है। मुझे इतना ही मालूम हो सका कि मामीजी चली गयी हैं। यह घटना लगभग ५५ वर्ष पहले की है।

यह घटना आयी-गयी हो गयी। मामीजी का कहीं पता नहीं चला। किसीने जानने की कोशिश भी नहीं की। एक दिन मैं एक संस्था में गया। संस्था आर्यसमाज द्वारा संचालित थी। मैं वहाँ एक लड़के को भरती कराने ले गया था। वहाँ पहुँचकर व्यवस्थापिकाजी से मिला। उनसे बातचीत की।

उन्होंने पूछा, 'कहिये, क्या बात है?'

मैं बोला, 'मैं इसको यहाँ रखने आया हूँ। इसका बाप मर गया है। स्थिति खराब है!'

वे बोलीं, 'आप कहाँ के रहनेवाले हैं ?'

मैं बोला, 'मैं मारवाड़ में जयपुर जिले का रहनेवाला हूँ।'

वे बोलीं, 'किस गाँव के हैं ?'

मैं बोला, 'उग्रास का हूँ।'

वे बोलीं, 'आप कौन हैं ?'

मैं बोला, 'मैं सरावगी हूँ।'

वे बोलीं, 'यहाँ सरावगियों का क्या काम ? आप जैन-समाज की संस्था में ले जाइये।'

मैं बोला, 'जी, आपका कहना ठीक है; पर मै वहाँ गया था। उनके यहाँ गुंजाइश नहीं है। आप रख लें।'

फिर वे अचानक पूछ बैठीं, 'अच्छा, तो आप उग्रास के है ! चिरंजीलाल बड़जात्या को जानते हैं ?'

मैं अब क्या बोलता ! 'जी, मैं ही चिरंजीलाल हूँ !'

इतना सुनते ही वे मेरा हाथ पकड़कर भीतर अपने कमरे मे ले गयी और छाती से चिपकाकर खूब रोयीं। रो चुकने पर उन्होंने अपनी आपबीती सुनायी।

बोलीं, 'देख चिरंजीलाल, अब तो समय बीत ही रहा है ! बूढ़ी हो चली हूँ, आँखों से भी कम दिखाई देता है ! मुझ पर आर्यसमाज का बड़ा उपकार है ! यह तो शायद तुमको याद होगा कि लोग मुझको बैलगाड़ी मे बैठाकर ले गये थे।

मेरी पुरानी स्मृतियाँ आँखों के सामने नाचने लगी। मैंने कहा, 'हाँ, इतना ही मुझे याद है !'

फिर वे कहती रहीं, 'बैलगाड़ी मे वे लोग मुझे एक कुएँ पर ले गये। रात का समय था। कुएँ पर पहुँचकर मुझे मालूम हुआ कि वे मुझे कुएँ में गिराना चाहते हैं। मैं काँप गयी ! मैं गर्भवती भी थी ! चिरंजीलाल, यह समाज बड़ा विचित्र है ! तुमको शायद याद हो, मकान के बगल मे एक व्यक्ति रहते थे। वे रिश्ते में मेरे जेठ होते थे। उनकी मुझ पर आँख थी और उन्होंने मुझे अपने जाल में फँसा लिया। गर्भ रह गया। इसीकी हाय खाकर तुम्हारे नानाजी मर गये। बाद में लोग अपनी इज्जत बचाने के लिए मुझे कुएँ में गिराना चाहते थे।

'मैंने उनसे कहा कि आप मुझे कुएँ में क्यों गिराते हैं, कहीं छोड़ दीजिये !

मैं सौगंध खाती हूँ कि फिर इस गाँव की सीमा में पैर नहीं रखूँगी। आखिर वे लोग जैनी ही थे। उनको दया आ गयी और उन्होंने मुझे······स्टेशन पर छोड़ दिया। स्टेशन बहुत बड़ा था। मैं वहाँ अकेली बैठकर विलाप कर रही थी। इतने में वहाँ से ········ सज्जन गुजरे। उनकी दृष्टि मुझ पर पड़ी। एक असहाय अबला को विलाप करती देख उनका मन द्रवित हो गया। मैं कहीं किसी गैर धर्मी या म्लेच्छ के हाथ न पड़ जाऊँ, इसलिए वे मुझे घर ले गये।······समाज के द्वारा मेरी सार-सभाल की। मेरे एक कन्या हुई। उस समाज ने मुझे और मेरी लड़की को पढ़ाया। लड़की एम० ए० हो गयी है। मैं भी पढ़-लिखकर इस संस्था को देखती हूँ!'

आगे वे बोलती गयीं, 'यहाँ मुझे काफी आराम है। लड़की की शादी वगैरह कर दी। उसके भी लड़के-बच्चे हैं और सुख से हैं। कल तुम मेरे मकान पर आना।'

दूसरे दिन मैं उनके मकान पर गया। मकान अच्छा था। उनकी पुत्री ने मीरा का भजन गाया। बड़े प्रेम और श्रद्धा से मैंने मिष्टान्न भोजन किया।

मामीजी का यह दर्शन अब से लगभग २० वर्ष पहले यानी बचपन की उस घटना के लगभग ३५ वर्ष बाद किया। मेरे सामने समाज का नक्शा खिंच गया। फिल्म की तरह एक के बाद एक चित्र मेरे सामने उभरने लगे! मैं क्या सोचता? सोचने और करने की राह तो एक ही है, अगर सीधी तरह सोचा जाय और कुछ किया जाय! रूढ़ियों और संस्कारों के वश होकर समाज अपने सिद्धांतों तथा विवेक-बुद्धि को किस तरह तिलांजलि दे सकता है, यह इस घटना से स्पष्ट है!

मामीजी को मैंने पूज्य बापूजी तथा सेठ जमनालालजी से मिलाया। सारी घटना सुनकर जमनालालजी द्रवित हो उठे। उन्होंने मुझसे कहा था कि किसी प्रकार की मदद की जरूरत हो, तो कहना।

उनकी लड़की मेरी बहन ही लगती थी। जब तक वह जीवित रही, मैं उनके यहाँ बराबर आता-जाता रहा। यह बड़े अचरज की बात है कि जिस दिन मेरी पुत्री राजमती का स्वर्गवास हुआ, उसी दिन मामाजी की पुत्री का भी स्वर्गवास हुआ। यह भी मुझे मालूम हुआ कि जिस दिन राजमती को क्षय हुआ था, उसी दिन उसको भी क्षय ने पकड़ लिया था। पूर्वजन्म और पूर्वसंस्कारों की यह कैसी ममता और एकात्मता है!

●

उनका उपकार

[चिरंजीलाल बड़जाते]

[श्री चिरंजीलालजी ने यह वक्तव्य दो वर्ष पूर्व अपने परिचितों तथा मित्रों में वितरित किया था। वास्तव में यह वक्तव्य उनके हार्दिक उद्‌गारों से भरा है---एक-एक शब्द मर्म से भरा है। शब्द-छटा और शब्द-छल से दूर यह वक्तव्य हृदय की सफाई का प्रतिबिंब है।]

सेठ जमनालालजी बजाज का संबंध मेरे साथ करीब ३५ साल से रहा। सन् १९१५ में जब मैं गोद आया, तभी से। उस समय सेठजी जेठमलजी बडजाते फर्म के ट्रस्टी थे और उन्होंने ही मुझे जेठमल बडजाते के नाम पर गोद लिया था। मैं नाजुक स्वभाव का था। भूत-प्रेत, जादू टोने, मंत्र-तंत्र आदि पर मेरा विश्वास था और मैं डरता भी बहुत था। उन्होने मेरे अन्दर से डर निकालने का प्रयत्न किया और १९२३ में नागपुर-झंडा-सत्याग्रह में जेल भेज दिया, जिससे मुझमें हिम्मत आयी और मेरा डरपोकपन जाता रहा।

मैं पहले मखमल व रेशमी विलायती कपड़े पहना करता था। सेठजी की-प्रेरणा से मैंने विदेशी वस्त्रों को त्याग स्वदेशी को अपनाया और शुद्ध खादी पहनना शुरू किया। सादगी से रहने की आदत तभी से पड़ गयी।

मैं पहले बहुत ही कट्टरपंथी जैन था। सेठजी की वजह से नयी विचार-धाराओं में ढला और सब धर्मों को आदर की दृष्टि से देखने लगा। विधवा-विवाह, जात-पाँत तोड़ना, मरण-भोज बन्द करना, पर्दा-प्रथा का उठाना आदि आदि कार्यों को करने और प्रचार में योग देने लगा।

नागपुर-कांग्रेस की स्वागतकारिणी के सेठजी अध्यक्ष बने। मैं कांग्रेस के कार्य में १९१८ से भाग लेता था, पर इसके बाद कांग्रेस-संगठन में लग गया। महात्मा गांधी के सन् १९२१ के असहयोग-आन्दोलन में सेठजी ने बहुत काम किया तथा उनकी ही आज्ञा से मैं भी यह काम उत्साहपूर्वक करने लगा।

१९२७ में मैं गरीब बन गया। करीब एक लाख रुपये की उधारी अदालत में नालिश न करने से डूब गयी। करीब उतना ही रुपया कांग्रेस तथा सामाजिक कार्यों में मैंने अपना खर्च कर दिया। कांग्रेस तथा सामाजिक कामों में लगे रहने के कारण व्यापार दूसरों के भरोसे चलता रहा, इसलिए उसमें काफी घाटा आया। एक लाख का मुझ पर कर्ज हो गया। मेरे मित्र, कुटुम्बी तथा अन्य सम्बन्धी मुझे दिवालिया बनने की सलाह देने लगे, परंतु सेठजी ने मुझे हिम्मत बँधायी और दिवालिया न बनने दिया। मेरी जायजाद बिकवाकर सबका पाई-पाई कर्ज चुकवा दिया। पच्चीस हजार रुपये अपने पास से कर्ज दिये, जो आगे चलकर मैंने चुकवा दिये। यदि मेरा कर्ज न चुकता, तो मैं सार्वजनिक सेवा के योग्य न रहता।

सेठजी की प्रेरणा से १९२७ में हरिजन-आंदोलन में कुएँ और मंदिर खुलवाने के काम में लग गया। उस समय जातिवालों ने मुझे जातबाहर कर दिया। मेरी माँ जब मंदिर जाती, तो समाजवाले उस पर ताना कसते और कहते कि यह ढेड़नी (चमारनी) मंदिर में आयी है। मुझे वे लोग ढेड़ कहकर संबोधित करते। सेठजी को यह मालूम हुआ, तो उन्होंने मेरी माँ को बहुत समझाया और हिम्मत बँधायी। मेरी माँ में सहनशीलता और धीरज आये, इस दृष्टि से एकनाथ, संत ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि के नाटक मंदिर में करवाकार दिखाये, जिससे मालूम हो कि पहले भी संत पुरुषों को कितना दुःख समाज की ओर से सहना पड़ा था।

सेठजी के उपकार की बात कहाँ तक कहूँ ? मैं अधिक पढ़ा-लिखा नहीं था। पचीस रुपये पर भी शायद ही कोई मुझे नौकर रखता। सेठजी ने मुझे सौ रुपया मासिक देकर मेरा हौसला बढ़ाया, काम सिखाकर और सौंपकर मुझमें आत्मविश्वास पैदा किया और व्यावहारिक कार्यों में होशियार बनाकर धीरे-धीरे इस योग्य बना दिया कि मैं अपने पैरों पर अच्छी तरह से खड़ा हो सकूँ। आगे चलकर पाँच सौ रुपये मुझे मिलने लगे और मैं चार-पाँच कंपनियों का काम देखने लगा।

सेठजी ने सेवाग्राम का काम मुझे सौंपा और सबसे पहले मुझे मकान बनवाने का काम दिया। गांधीजी सेवाग्राम में घनघोर पानी बरसते हुए भी दिये

हुए ठीक समयपर पहुँचे। मेरा गांधीजी के साथ जो सम्पर्क आया, वह जमनालालजी के कारण ही आया।

मेरी बड़ी पुत्री राजमती पर तो उनका बड़ा स्नेह था। उन्होंने उसे महिलाश्रम में भरती करवा दिया था, जहाँ वह स्वावलंबन की शिक्षा पाती रही। वह पाखाना भी अपने हाथों साफ करती थी। वह राष्ट्रीय प्रवृत्तियों में भाग भी लेती रही और छह माह की सजा भी भुगत चुकी थी।

मेरी मां की ७५०० रुपयों की संपत्ति का उन्होने एक ट्रस्ट बना दिया था, जिसका मूल्य उनके जीवन-काल में ही ८०००० रुपये हो गया था। उसी संपत्ति से तथा खेती का काम करने से घर का खर्च भी चला और कुछ सेवा भी बन पडी।

मुझमें अनेक दोष थे। सेठजी के सत्संग से मेरा जीवन सुधरा। सेठजी समय-समय पर मुझे अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपते थे। श्री राजेन्द्रबाबू की जायदाद सँभालने तथा उनके कर्ज को चुकाने की व्यवस्था करने के लिए मुझे जीरादेई तथा छपरा आदि स्थानों पर भेजा था। उस समय श्री राजेन्द्रबाबू तो सेवा के कामों में लगे हुए थे और इनके भाई बहुत उदार थे। कुछ इलेक्ट्रिक के काम में रकम फँस गयी थी। इसलिए उन पर कर्ज हो गया था। इस काम को सुलझाने के लिए सेठजी ने मुझे भेजा और सेठजी के मार्गदर्शन और सलाह से मैंने वह काम पूरा किया।

सेठजी को खेती के काम में बडी रुचि थी। उन्होंने बच्छराज खेती लि० नाम से एक कंपनी खोली, जिसका मुझे मैनेजिंग डाइरेक्टर बनाया। अपने स्वर्गवास से १ वर्ष पहले, जब कि सेठजी ने रेल में बैठना छोड दिया था, बैलगाडी मे बैठकर दस-बारह गाँवो का उन्होंने भ्रमण किया और कंपनी की खेतीबाडी तथा गाय-बैल आदि देखकर बहुत प्रसन्न हुए। मृत्यु के आठ दिन पहले उन्होंने मुझे बुलवाया और कहा कि तुम कमलनयन की नौकरी छोडकर गो-सेवा के कार्य में लग जाओ। परन्तु इसके साथ उन्होने एक कडी शर्त लगायी और वह यह थी कि घरबार के साथ मेरा कोई संबंध न रहे, मैं पैसा कमाना छोड़ दूँ और जैन मुनियों की तरह रहूँ। मैं कभी हिम्मत करता, तो कभी अपनी कमजोरी देख-

कर डर जाता। एक दिन सेठजी मेरे घर आये और दाल-बाटी की रसोई बनवायी। भोजन कर चुकने के बाद मेरी पत्नी से कहा कि तू चिरंजीलाल को मेरे सुपुर्द कर दे और हमेशा के लिए उससे सम्बन्ध छोड़ दे। मेरी धर्मपत्नी ने अपनी लाचारी बतायी और माफी माँगी। उनकी यह बात हमें आज भी याद आ जाती है। पर आज भी वैसा करने की हिम्मत नहीं होती।

सेठजी ने सत्य और अहिंसा को व्यवहार में उतारा और अपने जीवन से दूसरों पर असर डाला। मैंने हजारों साधु-सन्तों, मठो और तीर्थों के दर्शन किये हैं। पर मेरा जीवन सेठजी के कारण ही सुधरा और सुखी बना। उन्हींकी प्रेरणा से मैं दो बार जेल गया और अनेक सार्वजनिक कार्य करने के मुझे अवसर मिले। आज भी जीवन में कभी कोई गलती होने लगती है, तो झट उनकी मूर्ति सामने आ खडी होती है और मुझे बचा लेती है। उन्हींकी प्रेरणा थी कि मुझसे अपनी संपत्ति के गो-सेवा और विद्यार्थियों के लिए ट्रस्ट हुए।

६ अक्तूबर को ६३ साल पूरे करके ६४वें साल मे प्रवेश कर रहा हूँ। आज इस पवित्र अवसर पर पू० सेठजी, श्रीकृष्णदासजी जाजू और मेरी माता सुगणादेवी के उपकारो का स्मरण करता हूँ, क्योंकि इन्होने मेरे जीवन और व्यक्तित्व को बनाया। मैने जो कुछ उनसे पाया था, उनके ऋण को चुकाने के लिए सेवा-कार्य में लगा हुआ हूँ। अब शरीर और इंद्रियाँ कमजोर हो जाने से मुझसे ज्यादा सेवा तो बन नही पडती, पर शुद्ध भावना रखकर जैन-धर्म के सभी संप्रदायों में एकता बढ़ाने तथा अतिथि-सेवा का काम ही कर पाता हूँ। आज भी इस उम्र में मुझमें सत्संग, तीर्थयात्रा तथा मंडल के काम के लिए घूमने में युवकों से भी बढ़कर उमंग है, पर आंखें और कान पहले की तरह काम नहीं करते। स्मृति भी कम होने लगी है।

पू० सेठजी की इच्छा के अनुसार मैं सर्वसंगपरित्याग कर संपूर्ण रूप से सेवा-कार्य में तो नहीं लग पाया, पर भाई रिषभदासजी के कारण मैंने नौकरी छोड़कर निवृत्ति ली। पैसा कमाना छूटा, पर खर्चे की आदतें सुधर नहीं सकीं, जिन्हें सुधारने की कोशिश में हूँ। फिर भी एकदम तो छूट नहीं सकतीं। पर सेठजी के सुपुत्र कमलनयनजी, रामकृष्णजी तथा उनके कुटुंबियों के प्रेम और आत्मीयता के

कारण मेरा काम चल जाता है। इतना ही नहीं, वे तो मेरा जीवन सुखी बनाने का पूरा ध्यान रखते हैं।

आचार्य तुलसीजी के कारण परिग्रह-परिमाण-व्रत लेकर २० हजार की सीमा बाँध ली है। लोगों को अब भी मुझसे सेवा-सहायता की बहुत अपेक्षा रहती है, पर मेरी लाचारी है, मैं अधिक कर नहीं पाता। मेरी यही कामना है कि सेठजी, जाजूजी और माताजी का स्मरण मुझे बल दे और मेरा अन्तिम जीवन शुद्ध, पवित्र और दूसरों के उपयोग में आनेवाला बने। मेरे मित्रों, आत्मीय स्वजनों से प्रार्थना है कि मेरा जीवन सफल बनाने में सहायता दें और कहीं भूल होती हो, तो उसे बतायें, जिससे कि मैं निर्दोष बन सकूँ।

●

काशी में तीस दिन

[चिरंजीलाल बड़जाते]

इधर साढ़े पाँच वर्ष से भाई जमनालाल बनारस रहने लगे हैं। अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन का मुख्य कार्यालय बनारस आ जाने के कारण सन् '५५ में उनको भी बनारस आ जाना पडा। उन्होंने कई बार आग्रह किया कि मैं एक बार बनारस आऊँ। पहली बार ता० ८ मार्च '५६ को मैं बनारस पहुँचा और २६ मार्च '५२ तक रहा। दूसरी बार अभी ता० ११ अगस्त '६० को बनारस पहुँचा और ता० २१ अगस्त तक, १० दिन रहा। तब मैं प्राकृतिक उपचार करवा रहा था। बनारस पहुँचने से पूर्व पवनार (वर्धा) में डॉ० रेड्डीजी की देखरेख में ५२ दिनो तक जल और फलाहार पर रहा। बनारस पहुँचने पर भी मैंने नमक, चीनी और घी का परहेज रखा।

जमनालालजी का लगभग तीन-चार वर्ष से आग्रह था कि मैं अपने संस्मरण लिखवा दूँ। श्री रिषभदासजी राका और जमनालालजी दोनों ही बार-बार जोर डालते थे। मेरा इरादा ऐसा कुछ नहीं था, मै साहित्यिक भी नहीं हूँ। मैं टालता रहा। लेकिन इन दोनों के बार-बार कहने से मैं भी राजी हो गया और सोचा कि चलो, बनारस में कुछ नोट करा दिया जायगा। लगभग तीस वर्ष तक मुझे स्व० जमनालालजी बजाज के सान्निध्य में उनकी सेवा में रहने का सद्भाग्य मिला है और उन्हींकी कृपा से बड़े-बड़े कार्यों में पडा हूँ, देश के नेताओं से संबंध आया है और उन्हींकी कृपा से जीने की कला हाथ लगी है।

लेकिन बनारस आने का मेरा उद्देश्य केवल यही नहीं था। जमनालाल के साथ दस-पाँच दिन रहने, बाल-बच्चों को देखने की इच्छा से ही मैं बनारस आया था। मुझे यह कहते हुए बड़ी खुशी होती है कि बनारस के ये तीस दिन मेरे लिए बड़े महत्त्वपूर्ण रहे।

जमनालालजी गंगा के किनारे रहते हैं। जिधर देखो, उधर गंगा-ही-गंगा

दीखती है। मकान के नीचे पक्का घाट है, जिसका नाम प्रह्लाद घाट है। पहली मर्तबा तो मैं रोज ही गंगा-स्नान करता था। इसके लिए मुझे नित्य प्रति अस्सी-नब्बे सीढ़ियों पर चढ़ना-उतरना पड़ता था। यह मेरे लिए बढ़िया व्यायाम था। दो मील चलना या इन सीढ़ियों पर चढ़ना-उतरना बराबर था। नजदीक ही काशी स्टेशन है, उसीके पास उत्तर भारत का पूरब-पश्चिम को जोड़नेवाला महाकाय सुविस्तृत पुल है, जो लगभग एक मील लम्बा है। नीचे रेल चलती है और ऊपर जनता तथा मोटर आदि। इस पर भी कभी-कभी घूमने जाया करता था।

धर्म का तो काशी एक प्रकार से गढ़ ही है। जैनो के तेईसवें तीर्थंकर पार्श्व-नाथ की जन्म-नगरी है। कबीर ने भी यहीं उपदेश किया था। तुलसीदासजी ने भी अपना अमर रामचरितमानस यहीं रचा था। तुलसीदासजी का स्मारक जमना-लालजी के मकान के पास ही है। स्मारक में तुलसीदासजी की बड़ी मनोरम और भव्य मूर्ति है। वहाँ भी भजन आदि होते रहते हैं। स्मारक के सामने एक बड़ा-सा चबूतरा है, जो खँडहर के रूप में पड़ा है। अगर उस पर फर्श हो जाय और रेलिंग लग जाय, तो दो-ढाई सौ लोगो के बैठने की सुन्दर जगह बन सकती है। मोहल्लेवालों तथा म्युनिसिपल कमेटी को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

बनारस में जैनों की तीन-चार संस्थाएँ बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। स्याद्वाद विद्यालय अपनी कोटि का एक ही विद्यालय है। आज तक सैकड़ों विद्वान् उसने दिये हैं, जो समाज और देश की सेवा कर रहे हैं। पार्श्वनाथ विद्याश्रम युनिवर्सिटी के नजदीक है, जो जैन-दर्शन के अभ्यासी छात्रों को आर्थिक सहायता प्रदान करता है और जैन-साहित्य के अन्वेषण, संशोधन की प्रेरणा देता है। वर्णी ग्रंथमाला का संचालन पं० फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री करते हैं, जो जैन-समाज के माने हुए विद्वानों में हैं। वैसे ही सन्मति जैन निकेतन भी युनिवर्सिटी में पढ़नेवाले छात्रों के लिए बढ़िया स्थान है, जिसमें साहू शांतिप्रसादजी तथा बाबू धर्मचन्दजी सरावगी आदि सज्जनो का विशेष हाथ है। पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य का निधन बनारस के जैन-समाज में एक अपूरणीय क्षति है। पहली बार आया था, तब तो उनसे मिला ही था। पिछले वर्ष उनका निधन हो गया। बड़े कर्मठ और अध्य-

वसायी थे। स्वतंत्र चितक थे। मुझसे उन्होंने कहा था कि आप आइये, ५-१० रोज मेरे पास रहिये। आपको जैन-दर्शन समझाऊंगा! विधि का विधान बड़ा विचित्र होता है।

राजघाट और चौक के बीच में, मैदागिन नामक स्थान पर एक विशाल जैन मंदिर तथा धर्मशाला है। यह धर्मशाला शहर के मौके पर बनी है। सड़क पर ऐसा सुन्दर स्थान चुनने के लिए पूर्वजों का जितना आभार माना जाय, कम है। सम्मेद शिखर, पावापुरी, चंपापुरी, राजगृह आदि के यात्रियों के लिए बनारस मध्य-वर्ती स्थान है। और वह धर्मशाला उनके लिए बड़ी सुन्दर है। मै मंदिर मे दर्शन के लिए रोज जाता था, एक भी दिन इसमें नहीं चूका। वहाँ रोज शास्त्र-सभा होती है, भजन-नृत्य आदि भी होते रहे। अनेक स्थानो के यात्रियों से भी परिचय हुआ, कुछ परिचित भी मिले। खेद है कि इस बार रोज मन्दिर नहीं जा सका। इस बार तबीयत थोडी नरम रही।

सारनाथ भी गया। सारनाथ बौद्धों का तीर्थस्थान है। बौद्ध परिभाषा में उसे ऋषिपत्तन कहते हैं। कहते है कि भगवान् बुद्ध ने पहला उपदेश वहीं पर किया था। एक बड़ा भारी स्तूप है। दो बौद्ध मन्दिर हैं। एक कॉलेज है। दवा-खाना है। प्राइमरी पाठशाला, पुस्तकालय, बिड़लाजी की बनवायी हुई विशाल धर्मशाला है। डाकघर भी है। जो सबसे बडा बौद्ध मन्दिर है, उसे मूलगंध कुटी कहते है। उसकी दीवारो पर जापानी कलाकारों द्वारा भगवान् बुद्ध के जीवन की घटनाएँ चित्रित हैं। चित्र बडे भावपूर्ण और आकर्षक हैं। चित्रकार ने लिखा है कि यह काम भगवान् बुद्ध की कृपा से ही सम्पन्न हो सका है। एक बौद्ध मन्दिर चीनी भक्तों द्वारा बनवाया हुआ है। उसमे भगवान् बुद्ध की मूर्ति चीनी कला का प्रतीक है। दीवारो पर बुद्ध की जीवन-घटनाओं के फोटो टॉगे गये हैं, जो परि-चय देते हैं। कला और संस्कृति पर देश और काल की कितनी छाप पड़ती है! हमारी भारतीय संस्कृति तो एक प्रकार का महासमुद्र है।

सारनाथ में एक जैन मन्दिर है। जैन-मन्दिर स्तूप के पास ऊँचे स्थान पर बना है। बड़ा ही भव्य मंदिर है। उसके चारों तरफ ऊँचा परकोटा है, बीच में विशाल आँगन है तथा बगीचा भी है। वेदी एक ही है, जिसमें ग्यारहवें

तीर्थंकर श्रेयांसनाथजी की प्रतिमा विराजित है। जैनी लोग सारनाथ को सिंहपुर कहते हैं और कहा जाता है कि यह भगवान् श्रेयासनाथ का जन्मस्थान है। दीवारों पर अनेक मुनियों और तीर्थस्थानो के चित्र हैं।

सारनाथ के ये तीनों मन्दिर अपनी शान के निराले हैं। सादगी, स्वच्छता और शांति तो वहाँ कण-कण में है। किसी भी मन्दिर में घण्टों बैठकर चिंतन करने की इच्छा होती है। देश में अगर ऐसे आदर्श मन्दिरों का निर्माण हो, तो वह संस्कृति के लिए बड़ा उपकार होगा। सारनाथ में ही भाई जमनालालजी के ससुर श्री कस्तूरचन्दजी रहते हैं, जहाँ वे दूकान करते हैं।

सारनाथ का अब काफी विकास हो गया है। सरकार ने सड़के काफी चौड़ी बना दी है, बिजली भी पहुँच गयी है, तीन ट्यूब वेल-नलकूप बन गये है। स्टेशन भी नया बना है। सारनाथ में सरकार ने काफी खर्च किया है। लेकिन दूसरी ओर जैन धर्मशाला अधूरी पड़ी है। इधर साहू शांतिप्रसादजी ने काफी रुपया लगाकर जैन मंदिर और धर्मशाला में बिजली, बिछायत आदि का इन्तजाम कर दिया है। कुएँ पर भी पंप बैठा दिया है। लेकिन फिर भी धर्मशाला की जैसी व्यवस्था होनी चाहिए, नहीं दिखाई दी। सुनते हैं, संचालक या अधिकारी लोग ही उस धर्मशाला का निजी तौर पर उपयोग करते हैं, यात्रियों के लिए गुंजाइश ही नहीं है। धर्मशाला को ठीक बनाना भी जरूरी है। उसमें साफ-सफाई भी नहीं है।

सारनाथ से मैं और जमनालालजी चंद्रपुरी गये थे। यह भगवान् चन्द्र-प्रभु का स्थान माना जाता है। यहाँ एक दिगंबर और एक श्वेताम्बर मंदिर है। एक श्वेताम्बर धर्मशाला भी है। दोनों मंदिरों के दर्शन किये। गंगा के किनारे एक छोटा-सा गाँव है। अच्छा स्थान है।

पहली बार जब आया था, तब डॉ० हीरालालजी के सभापतित्व में जैन आश्रम का वार्षिकोत्सव था। आश्रम के मंत्री लाला हरजसरायजी पंजाब से आये थे। आप बड़े ही उत्साही और लगन के सज्जन हैं। उत्सव दोपहर में २॥ बजे से ५ बजे तक हुआ। विद्याश्रम का विवरण बताते हुए मंत्रीजी ने बताया कि इस संस्था का उद्देश्य जैन-दर्शन में रुचि रखनेवाले उच्च विद्यार्थियों को स्कॉलरशिप देकर महत्त्वपूर्ण साहित्य निर्माण करना है। इस संस्था को
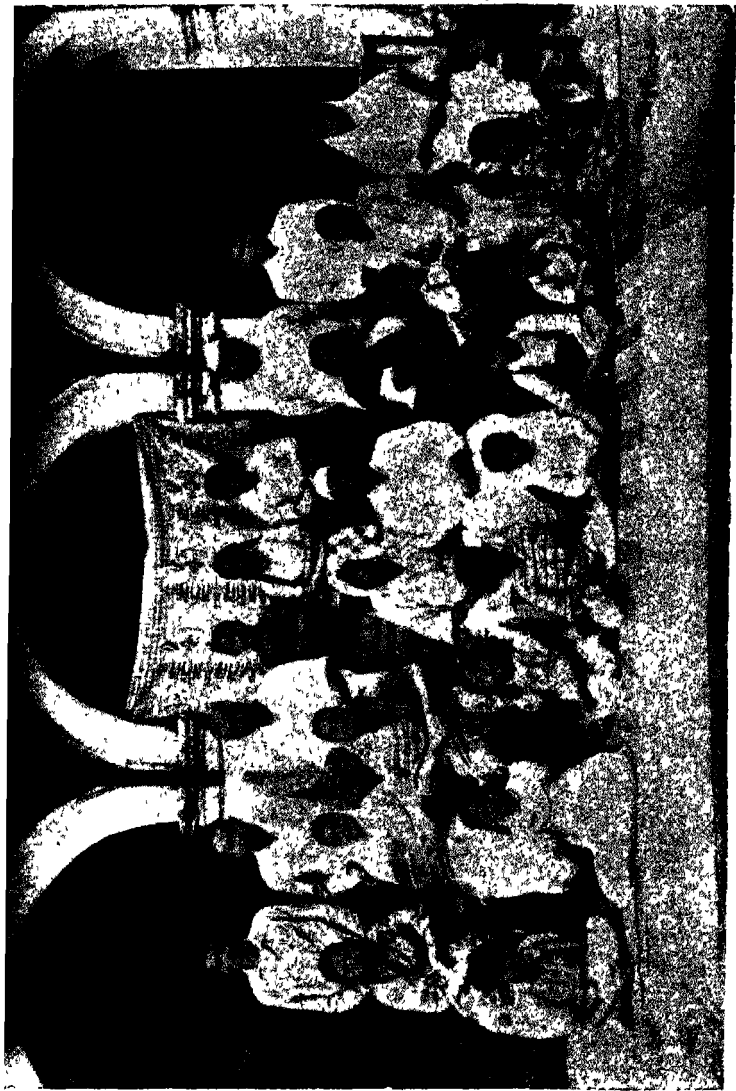
पूरे परिवार के साथ

सौभाग्य से डॉ० वासुदेवशरणजी अग्रवाल का सहयोग प्राप्त हो गया है, जिनकी प्रेरणा से यह संस्था जैन-साहित्य और जैन-दर्शन का बृहत् इतिहास निर्माण करने जा रही है। डॉ० वासुदेवशरणजी, पं० महेन्द्रकुमारजी, पं० फूलचंदजी, पं० कैलाशचद्रजी आदि के विचारपूर्ण भाषण हुए। श्री मोहनलाल मेहता का अभिनन्दन किया गया उन्होंने 'जैन कर्मवाद में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' महानिबंध लिखकर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी।

डॉ० हीरालालजी का भाषण अनेक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था। उन्होंने सांप्रदायिक भेदभावों को भूलकर एक होकर काम करने पर जोर डाला। उत्सव अत्यन्त सादगी से सम्पन्न हुआ।

भारत जैन महामंडल और वैशाली विद्यापीठ के संबंध में भी डॉ० हीरालालजी से चर्चा हुई थी।

वैशाली भगवान महावीर का जन्मस्थान है। वैशाली में जमीन का एक टुकड़ा ऐसा है, जहाँ पर कभी भी हल नहीं चला। महावीर-जयंती के दिन वैशाली में लगभग एक लाख लोग एकत्र होते हैं और उस जमीन पर दीपक सँजोये जाते हैं। वैशाली में कोई भी व्यक्ति माम नहीं खाता और वहाँ पर एक महावीर तीर्थंकर हाईस्कूल भी चलता है। उस गाँव में एक भी जैन-घर नहीं है। फिर भी आज ढाई हजार वर्ष के बाद भी महावीर स्वामी की शिक्षा का वहाँ के जन-मानस पर पूरा प्रभाव है। जब लोगों से पूछा गया कि महावीर तीर्थंकर हाईस्कूल में तीर्थंकर क्यों जोड़ा गया, तो बताया गया कि महावीर से भ्रम होता है और लोग हनुमान् भी समझ लेते हैं। तीर्थंकर इसीलिए जोड़ा गया। बाहर से आनेवाला भी कोई व्यक्ति वहाँ मांस नहीं खा सकता।

वैशाली मुजफ्फरपुर से बीस मील पर मोटर-सड़क पर है। रोज बस चलती है।

वैशाली में मुख्यतः प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के, जैन-धर्म, दर्शन के अध्ययन की व्यवस्था रहेगी। एक विशाल पुस्तकालय रहेगा। कार्यकर्ताओं के लिए क्वार्टर भी रहेंगे। डॉ० हीरालालजी के यहाँ आ जाने से पूर्वी क्षेत्र के

लिए एक बहुत बड़ा केन्द्र हो गया है। उनके मार्गदर्शन में यहाँ की संस्थाएँ काफी विकास करेंगी, ऐसी आशा है।

डॉ० हीरालालजी के सामने मैंने एक विचार रखा कि भारत जैन महामंडल का एक अधिवेशन वैशाली में किया जाय और एक बनारस में या सारनाथ में। ये दोनों अधिवेशन आडंबर और दिखावे से दूर सादगीपूर्ण वातावरण में हों। जो लोग बाहर से आये, उनके रहने के और खाने-पीने का प्रबन्ध समुचित हो; लेकिन पंडाल, मंच, रोशनी, जुलूस आदि में कतई खर्च न किया जाय। महा-मंडल को अब सांस्कृतिक धरातल पर लाने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से वैशाली और सारनाथ का वातावरण बहुत अनुकूल है। वैशाली का कार्य सम्प्रदाय-निरपेक्ष ही होगा, इसलिए भी वहाँ भारत जैन महामंडल का अधिवेशन आवश्यक है। बनारस विद्वानों का केंद्रस्थान है। यहाँ अनेक विचारकों और कार्यकर्ताओं का सहयोग सहज ही उपलब्ध हो सकता है। दूसरी बात यह है कि यहाँ जिस विचार का बीजारोपण होगा, वह सारे देश में जल्दी ही फैल सकता है।

मुझे तो दिनोदिन अब यह तीव्रता से महसूस होने लगा है कि देश में आज नये समाज की रचना का जो वातावरण बन रहा है, उसकी जो हवा फैल रही है, उसके लिए भारत जैन महामंडल का विचार-मंत्र ही जैन-समाज में नवस्फूर्ति, नवचेतना लाने में समर्थ हो सकेगा। महामंडल का साथ देनेवाले आज कितने लोग हैं, यह महत्त्व की बात नहीं है। गणित-शास्त्री गणित करते रहे, लेकिन जहाँ तक भावना का प्रश्न है, वह गणित की तरह नहीं फैलती। दो आदमी भी वह वातावरण निर्माण कर सकते हैं, जो लाखों से नहीं हो सकता। बनारस का पार्श्वनाथ विद्याश्रम दलसुखभाई, कृष्णचन्द्रजी और हरजसरायजी के प्रयत्नों का सुपरिणाम है। इसी तरह भारत जैन महामंडल में भी आज भले ही थोड़े-से कार्यकर्ता दिखाई दें, लेकिन वे ही उसके प्राण हैं।

मैंने भाई जमनालालजी के सामने अपनी दो-एक नयी योजनाएँ रखीं। वैयक्तिक मसलों और परिवार के वातावरण को लेकर मैं अपने सिर पर अनेक चिंताएँ ओढ़ लिया करता हूँ। मैंने एक योजना रखी कि वर्धा में अपने ही मकान में एक जैन-आश्रम जैसी संस्था बनाकर रहा जाय, किसीसे कुछ माँगा

न जाय और जो भी सेवा बन पड़े, वह वह की जाय। मेरे स्वभाव, वातावरण आदि को देखते हुए जमनालालजी ने सलाह दी कि अब मुझे किसी भी काम की स्वयं शुरुआत न करनी चाहिए और परिवार में भी अनासक्त बनकर रहना चाहिए। लड़के स्वयं समझदार हैं। अपना सुख-दुःख समझते हैं। उनको अपनी मर्जी के माफिक चलने देना चाहिए। वे अगर सलाह माँगते है, तो दे देनी चाहिए। वरना चुप रहना ही ठीक है। सारे झगड़े और मतभेद की जड दूसरे पर अपना विचार थोपना है। इस बात का अनुभव मैंने बनारस में किया। जमनालालजी के यहाँ तीस दिन रहा, लेकिन स्वयं होकर मैंने कभी कोई बात नही कही। जब-जब उन्होंने सलाह माँगी, तभी दी। यद्यपि मेरा ऐसा स्वभाव नहीं है, फिर भी ऐसा अभ्यास मुझे करना होगा।

बनारस की थियोसोफिकल सोसाइटी देखी। वातावरण बड़ा अच्छा है। मंदिर, पुस्तकालय और हाईस्कूल देखा। एक १५ वर्ष का बालक हमें पुस्तकालय और मंदिर दिखाने ले गया। बडा नम्र और होनहार छात्र था। कबीर साहब का मंदिर भी देखने गया। वहाँ प्रार्थना हो रही थी। वहाँ उनके फोटो रखे थे। कबीर ने भारतीय समाज को सामाजिक और धार्मिक जीवन के जो तत्त्व दिये, वे इतने सरल, सुबोध और सहज हैं कि युग-युग तक कबीर की वाणी वेदों और पुराणों से ज्यादा प्रभाव डालती रहेगी। राधास्वामी के मंदिर में भी गये। वहाँ भी राधास्वामी संप्रदाय के एक भाई एक ग्रन्थ पढ़ रहे थे। यों देखा जाय, तो मानव-उत्थान की बातें सारे धर्मों में एक ही हैं। कहने के ढंग अलग हैं। नदियाँ अनेक हैं, लेकिन उनका संगम एक ही है।

इस बार विश्वविद्यालय स्थित विश्वनाथ-मंदिर देखकर तबीयत खुश हो गयी। लगभग दस वर्षों से मंदिर बन रहा है, अभी भी काम चालू ही है। मन्दिर बड़ा भव्य है, दीवालों पर सब धर्मों के प्रवर्तकों के चित्र तथा उनके उपदेश उत्कीर्ण हैं। सफाई और शांति का तो वहाँ साम्राज्य है। बिड़ला-बन्धुओं की देखरेख में यह सारा काम चल रहा है। यह मन्दिर देखकर मुझे लगा कि वर्धा के श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर में भी उपदेश और गीता आदि धर्म-ग्रन्थ उत्कीर्ण कराये जायँ।

जैन मन्दिरों का वातावरण भी इतना भव्य हो। मैंने कलकत्ता के बेलगछिया मन्दिर में इसकी कुछ झलक देखी, महावीरजी में भी कुछ काम हुआ है। अनेक प्रकार के आडम्बरों और रिवाजों में हजारों रुपये खर्च करने की अपेक्षा इस प्रकार का वातावरण निर्माण करना ज्यादा उपयोगी होगा।

इस बार माँ आनन्दमयी के दर्शन किये। पुरानी स्मृतियाँ उभर आयीं। सेठ जमनालालजी ने उनको माँ माना था, उनके स्वर्गवास के १२ घण्टे बाद ही वे वर्धा पहुँच गयी थीं—जब कि उन्हें जमनालालजी के स्वर्गवास की कोई सूचना नहीं दी गयी थी। माँ के मुखमण्डल पर अपूर्व शांति और तेज है। दर्शन करने से परम शांति मिलती है।

सर्व-सेवा-संघ की ओर से संचालित साधना-केन्द्र देखा। सिद्धराजजी ढड्ढा से मिला। इस साधना-केन्द्र में श्री शंकररावजी देव, दादा धर्माधिकारी, विमला-बहन आदि रहते हैं। अच्छा स्थान है। जीवन के साध्यकाल में अपने चिंतन और अनुभव का लाभ समाज को देने के लिए दो-एक जैन केन्द्र भी ऐसे हों, जहाँ विद्वान् लोग बैठें और जीवन की समस्त चिंताओं से मुक्त रहें।

बनारस में श्री सतीशकुमार और श्री मधुपकुमार से मिला। साधकजी से मिलना नहीं हो सका। ये तीनों पहले तेरापंथी सम्प्रदाय के मुनि रह चुके हैं। समाज का कर्तव्य है कि ऐसे स्वतंत्रचेता लोगों को खोना नहीं चाहिए, बल्कि अपनाकर उनके साथ सम्मानित श्रावकों जैसा ही व्यवहार होना चाहिए। मुनि और श्रावक की स्थिति तो सापेक्ष ही है। कोई स्थिति ऊँच-नीच नहीं है। अपनी-अपनी जगह पर दोनों का मूल्य है।

जमनालालजी सर्व-सेवा-संघ के प्रकाशन-विभाग में काम करते हैं। वहाँ के व्यवस्थापक हैं। भूदान और सर्वोदय-विचार की सैकड़ों किताबें निकाली गयी हैं और बहुत सस्ते दामों पर वितरित की जाती हैं। उनका कार्य देखकर बड़ा समाधान हुआ। जमनालालजी अपने समय को बिलकुल फिजूल नहीं जाने देते और रात-दिन अपने काम में लगे रहते हैं। मैं उनके यहाँ रहा, लेकिन कभी भी उन्होंने अपने काम की उपेक्षा नहीं की। जिन लोगों के पास फालतू समय

होता है, वे अपने कर्तव्य और धर्म पर स्थिर नहीं रह पाते। उनके दिमाग में शैतान पैठ जाता है। प्रकाशन का कार्य उत्तरोत्तर बढ़ रहा है।

इस प्रकार मेरी यह तीस दिनों की काशी-यात्रा पूरी हुई। समय आनन्द में कटा।

काशी से कुछ ऐसी आसक्ति हो गयी कि पुनः-पुनः आने को जी चाहता है। देखें, वह अवसर कब मिलता है।

अंत में एक बात का उल्लेख जरूरी है। पिछले दिनों श्री रिषभदासजी राका तथा श्री भानुकुमारजी जैन ने 'जैन-जगत्' में मेरे लिए एक अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित करने की योजना प्रकाशित कर दी। पढ़कर मैं तो दंग रह गया। मेरी इतनी योग्यता और पात्रता कहाँ कि मैं अभिनन्दन-ग्रन्थ का बोझ झेल सकूँ। यह ठीक है कि विश्व में हर व्यक्ति का कुछ मूल्य है, कुछ अनोखी विशेषता होती है, लेकिन सामाजिक और सांस्कृतिक पात्रता बिलकुल अलग चीज है। मैंने रिषभदासजी से कहा कि यह आपने अच्छा नहीं किया। मेरी मित्रता और स्नेह पर यह अत्याचार है। अभिनन्दन-ग्रन्थ तो महात्मा भगवानदीनजी जैसे त्यागी, विद्वान् और सत्पुरुष का ही निकल सकता है, निकलना चाहिए। मैं नहीं समझता कि मैंने समाज के लिए कुछ किया है। अगर कुछ किया भी हो, तो निश्चित समझिये कि मेरा स्वार्थ उसमें कहीं-न-कहीं होगा ही। एक सामान्य गृहस्थ हूँ। लोभ मेरा छूटा नहीं है, मोह-ममता की बेड़ियों से घिरा हूँ। इसलिए अभिनन्दन-ग्रन्थ के भार से मुक्त करने की प्रार्थना मैंने रिषभदासजी से की। इसलिए भी मैं इस बार काशी गया कि भाई जमनालाल भी उस झंझट से बचें।

●

स्व० श्रीमती सुगणाबाई

[जमनालाल जैन]

अजमेर जिले में रूपनगढ़ नामक एक छोटा-सा ग्राम है। वहाँ पर श्री मन्नालालजी पाटनी और उनका परिवार रहता था। उनके दो पुत्र श्री जुहारमलजी तथा हंसराजजी और दो कन्याएँ थीं। उनमें से एक सुगणाबाई थी। श्री मन्नालालजी का परिवार बरार में अकोला जिले के वाशिम नामक ग्राम में आकर बस गया। उनके वंशज कुशल व्यापारी, सम्पन्न तथा सुखी है।

श्रीमती सुगणाबाई का जन्म विक्रम संवत् १६३४ के आसपास हुआ और विक्रम सवत् १६४७ में श्री जेठमलजी बडजाते के साथ उनका विवाह हुआ।

श्री जेठमलजी के पिता कुन्दनमलजी अपने बन्धु चंपालालजी के साथ वर्धा में आकर कपड़े का व्यवसाय करने लगे थे। योगायोग की बात कि विवाह के पाँच वर्ष पश्चात् ही श्री जेठमलजी का स्वर्गवास हो गया। अब सुगणाबाई के विधवा हो जाने से उनके संरक्षण का भार श्री पन्नालालजी पर आ पडा। श्री पन्नालालजी चंपालालजी के पुत्र थे।

पन्नालालजी अत्यन्त व्यवहारकुशल और मजे हुए व्यवसायी थे। कपड़े के व्यापार में आपने करीब दो-ढाई लाख रुपयो की कमाई की। वर्धा के दिगम्बर जैन-समाज की प्रवृत्तियों तथा हलचलों में उनका प्रमुख स्थान रहता था। आपने जीवनभर श्रीमती सुगणाबाई को मातृत्व की दृष्टि से देखा। बाल-विधवा होने पर भी सुगणाबाई को परिवार में किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ, बल्कि सबने उन्हें आदर ही दिया।

पन्नालालजी धार्मिक तथा सात्विक वृत्ति के थे। अपनी मृत्यु के समय वे एक ट्रस्टडीड मुकर्रर कर गये थे और मृत्यु-लेख में श्रीमती सुगणाबाई तथा अपनी धर्मपत्नी को एक-एक लड़का दत्तक लेने का अधिकार भी सौंप गये थे।

निश्चयानुसार दोनों के नाम पर दो लड़के दत्तक लिये गये। उनमें

(मारवाड़) में श्री मोहरीलालजी बड़जाते रहते थे। उनका एक लड़का श्रीमती सुगणाबाई ने लिया। यही पुत्र श्री चिरंजीलालजी के नाम से सुप्रसिद्ध है, जो व्यावहारिकता और समाज-सेवा से सारे जैन-समाज में सुपरिचित है। श्री पन्ना-लालजी की पत्नी मोहनादेवी के भी एक लड़का दत्तक लिया गया, जिनका नाम श्री सूरजमलजी बड़जाते था। उनका स्वर्गवास ता० १५ फरवरी '४२ को हो गया। उनकी धर्मपत्नी बुलढ़ाना में रहती हैं। सूरजमलजी की धर्मपत्नी श्रीमती चम्पा-देवी अपना सारा समय धर्म, ध्यान और स्वाध्याय में लगाती हैं। उनका घर एक एकान्त आश्रम-सा है। सूरजमलजी के दो पुत्र है, जो नागपुर में रहते हैं। बड़े पुत्र गेंदालाल 'लाइफ इन्शुरंस कारपोरेशन' में हैं और छोटे श्री शांतिलाल 'कामर्स कॉलेज' में प्रोफेसर हैं।

दोनों भाइयों का दत्तक-विधान होने तक और उसके कुछ काल बाद तक भी सारा परिवार सम्मिलित रूप से रहता था। लेकिन बाद मे श्री चिरंजीलालजी और सूरजमलजी अलग-अलग होकर स्वतन्त्र रूप से व्यवसाय चलाने लगे। यह बॅटवारा ता० २३-८-'२१ को हुआ।

श्रीमती सुगणाबाई सात्त्विक विचारों की साहसी महिला थीं। अलग होने पर जब चिरंजीलालजी ने रूई आदि के व्यापार में करीब-करीब डेढ़ लाख की सम्पत्ति स्वाहा कर दी, तब भी सुगणाबाई ने किसी प्रकार का दुःख प्रकट नहीं किया और न चिरंजीलालजी को कुछ कहा। दत्तक पुत्र होने पर भी सुगणाबाई तथा चिरञ्जीलालजी में माँ-बेटे का स्नेह और वात्सल्य बना रहा और चिरंजीलालजी उनकी बराबर सेवा करते रहे।

वे धार्मिक विचार की थीं। संवत् १९५७ मे वर्धा मे जब प्लेग फैला, तब उन्होंने श्री दिगम्बर जैन-मंदिर पर गुम्बद बनवाने का संकल्प किया। मंदिर के ऊपरी भाग मे वेदी-प्रतिष्ठा महोत्सव सन् १९२४-२५ में किया गया। उसी समय श्री भारतवर्षीय दि० जैन-परिषद् का अधिवेशन भी वर्धा में हुआ। अधिवेशन तथा प्रतिष्ठा में बाहर के कई सज्जन सम्मिलित हुए थे। बा० अजितप्रसादजी लखनऊ, बै० चंपतरायजी, ब्र० शीतलप्रसादजी जैसे व्यक्ति का लाभ प्राप्त हुआ था। समस्त आगत सज्जनों के भोजन आदि का प्रबंध सुगणाबाईजी की ओर से था। एक

बार वे अपने कुटुंबियों के साथ भगवान् गोमटेश्वर-बाहुबली की यात्रा को भी गयी थीं।

यद्यपि वे पुराने विचारों की भद्र-परिणामी महिला थीं, तथापि चिरंजीलालजी को उनकी सामाजिक सेवाओं के समय बराबर साथ और साहस देती रही है। अब से २५ वर्ष पहले की इन बातो को जब हम देखते है, तो आश्चर्य होता है आज के शिक्षितों की शाब्दिक सुधारकता पर। म्युनिसिपल कमेटी के मेम्बर की हैसियत से जब चिरंजीलालजी ने सार्वजनिक कुँओ को सबके लिए खुलवा दिया, तब जाति-वालो ने उन्हें बहिष्कृत कर दिया। उनकी माँ सुगणाबाई को भी बहकाया गया, धमकी दी गयी; परंतु उन्होने चिरञ्जीलालजी का साथ नहीं छोडा। कई बार ऐसे भी अवसर आये, जब उन्हे समाज की ओर से होनेवाले अपमान को सहना पड़ा है। एक बार उन्हें मन्दिर जाते समय 'ढेडनी' शब्द से सम्बोधित किया गया, लेकिन इस बारे में उन्होंने सहनशीलता ही दिखाई। समाज के भय से चिरंजी-लालजी को उनके मार्ग से विचलित नहीं किया। यदि यह बात उनमें न होती, तो आज चिरंजीलालजी का जो सामाजिक रूप दीख रहा है, वह न दीखता। ऐसे अवसरों पर स्व० सेठ जमनालालजी बजाज उन्हे ढाढ़स बँधाते और साहस की प्रेरणा देते। स्व० सेठ साहब के हृदय मे उनके प्रति अत्यन्त आदर था।

स्नेह और सौजन्य की तो वे देवी थी। उन्हे अतिथि-सत्कार और दूसरों की सेवा करने में बहुत आनंद आता था। चिरंजीलालजी का जीवन-निर्माण उनकी गोदी में ही हुआ और कहना चाहिए कि उनके स्नेह तथा सौजन्य ने ही इन्हें मनुष्य बनाया है। पं० अर्जुनलालजी सेठी, ब्र० शीतलप्रसादजी उनका आतिथ्य-सत्कार प्राप्त कर चुके हैं। यह चिरञ्जीलालजी का सौभाग्य है कि उन्हे ऐसी माँ मिली, जिसने सेवा और सौजन्य के संस्कार ही प्रदान किये। यह उनकी माताजी के जीवन तथा स्व० जमनालालजी बजाज की प्रेरणा का ही प्रभाव है कि उनमें समाज, धर्म तथा राष्ट्र के प्रति प्रेम है, दूसरो का आदर करना वे जानते हैं और अतिथि-सत्कार करने मे आनन्द का अनुभव करते हैं।

पं० उदयलालजी काशलीवाल का भी सुगणाबाईजी से काफी आत्मीय सम्बन्ध रहा है। वे वर्धा में एक-एक मास तक ठहरते और उनके हाथ का भोजन

कर आनन्द का अनुभव करते। जिस दिन चौके में सुगणाबाईजी न होतीं, तो उदयलालजी की इच्छा ही भोजन की नहीं होती थी—उस दिन वे आधे भोजन ही उठ जाते और यह बात प्रकट भी कर देते। मालूम होता है, पंडितजी का पूर्वजन्म संस्कारजन्य सम्बन्ध ही विशेष रहा है। इस तरह पंडितजी चिरञ्जीलालजी के परिवार से काफी समरस हो गये थे।

श्रीमती सुगणाबाई का स्वर्गवास संवत् १९९५ में ता० २१-३-'३८ को हुआ। उनकी स्मृति में श्री चिरञ्जीलालजी ने 'सुगणाबाई ट्रस्ट' स्थापित किया है। यह पारिवारिक ट्रस्ट है।

●

एक इंप्रेशन

समाज के 'गौरव'

[जमनालाल जैन]

जैन-समाज के समाज-सुधारकों और स्थिति-पालको में ऐसा कौन व्यक्ति है, जो वर्धा के श्री चिरंजीलालजी बडजाते को नहीं जानता ! यह एक ऐसा व्यक्तित्व है, जिसने स्थितिपालको और सुधारकों दोनो का प्रेम प्राप्त किया है, दोनों से जिसे आदर मिला है, जिसने दोनों को सगे भाई की तरह देखा है। ऐसा व्यक्तित्व ढूँढ़ने पर भी शायद ही मिले। सुधारको से मिलिये, वे रूढ़िग्रस्तों की भरपेट निंदा करने मे नहीं हिचकते और स्थिति-पालकों से मिलिये, तो सुधारकों के नैतिक दोषो तथा कथनी-करनी की तीव्र आलोचना करने में कोई कोर-कसर नहीं छोडते। लेकिन चिरंजीलालजी की निंदा या आलोचना सुनने का अवसर अब तक हमें तो नहीं मिला। हम यह नहीं कहना चाहते कि चिरंजीलालजी की आलोचना कोई करता ही नही। उनकी भी काफी आलोचना होती है और यह आलोचना उनके विरोधी नहीं, बल्कि उनके मित्र ही और उनके सामने ही करते रहते हैं। लेकिन यह आलोचना ऐसी नहीं होती, जिससे उनका व्यक्तित्व किसी माने में हल्का या निम्न कोटि का साबित हो। यह आलोचना तो तब होती है, जब वे अपनी मर्यादा का अतिक्रमण कर अति मानवता तक पहुँच जाते है और जिसके परिणामस्वरूप हित की जगह अनहित की आशंका होने लगती है।

किस विचारक के क्या विचार हैं और उन विचारो का समाज-जीवन पर कब कैसा प्रभाव पड़ता है, पड सकता है, इसकी गहराई मे जाने का काम चिरंजीलालजी का नही है। वे तो केवल एक बात देखते हैं—आदमी अपने-आपमें खरा और समाज-सेवा की भावनावाला है या नहीं। अगर आदमी खरा और सेवा-वृत्तिवाला है, जो समाज को, देश को कुछ न कुछ देता है, वह उनके लिए आदरणीय

और पूज्य है। उनके सहयोगी और मित्र कभी-कभी उनसे कहते हैं कि भाईजी, आपके लिए तो रामाय स्वस्ति और रावणाय स्वस्ति एक साथ एक अर्थ रखते हैं। वे इस फबती को सुन लेते हैं और मुसकरा देते हैं। यह 'मुसकराना' कुछ ऐसा होता है, मानो वे कह देते हैं कि "बच्चू, अभी नये-नये मैदान में उतरे हो, अनुभव लेकर देखो, तब पता चलेगा कि समाज में रहना कैसा होता है।" और सचमुच उनके जीवन के ५० वर्ष ऐसे ही मीठे-कड़वे अनुभवों को झेलते हुए बीते हैं। असल बात यह है कि जो आदमी किसी एक विचार में या पक्ष मे आबद्ध होकर दूसरे के प्रति उपेक्षा या तिरस्कार का भाव मन मे रखता है, वह साम्प्रदायिकता और संकुचितता से ऊपर उठा ही नहीं। जो अखंड मानवता में विश्वास करते हैं, जो सेवा और त्याग के प्रति निष्ठावान् होते हैं, वे विचारो के कारण भेद-विभेद को कोई मौका दे ही नहीं सकते। तीर्थंकर महावीर का अनेकांत '३६' की जगह '६३' की शिक्षा देता है और यह चीज अनजाने ही सही, चिरञ्जीलालजी के जीवन में व्याप्त हो गयी है। यही कारण है कि वे निःसंकोच रूप से हर धर्म के स्थानों पर पहुँच जाते हैं, हर दल और संप्रदाय के बीच दिखाई पड़ जाते हैं।

चिरञ्जीलालजी की लिखाई-पढ़ाई बहुत कम हुई या कह सकते हैं कि नहीं के बराबर ही हुई और फिर वे एक सम्पन्न परिवार में गोद आ गये। दत्तक आने के समय उनकी मानसिक और बौद्धिक स्थिति अत्यन्त मंद ही कही जा सकती है। लेकिन सम्पन्न परिवार में दत्तक आने के कारण उन्हें समाज में कुछ कार्य करने का मौका मिला। मिला क्या, उन्हें मौका दिया गया। आज भी जब पैसेवालों को समाज-सेवा के क्षेत्र में अनिच्छापूर्वक या नाम-प्रतिष्ठा के लिए उतरना पड़ता है या इसके लिए मजबूर किया जाता है, तब ५० वर्ष पूर्व की स्थिति को देखते हुए अगर चिरञ्जीलालजी को समाज-सेवा का आकर्षण लगा हो और उसमें प्रमुख कारण नाम की इच्छा या सम्पन्नता रही हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। सुदैव से चाहे जैसी परिस्थिति आने पर भी उनकी समाज-सेवा की भावना मंद या मंथर होने के बदले उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी और उन्हें इसके अनुकूल वातावरण तथा अनुकूल संगति मिलती रही, यह सचमुच उनके लिए गौरव की बात रही है। सन् '[illegible] में जब उनकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त गिर गयी, तब सेठ जमनालालजी ने उनको

ढाढ़स ही नहीं बँधाया, उनके कारोबार को अपने हाथ में लिया, सावधानी और धीरज के साथ निपटाया और छाती से लगाकर मित्र और भाई की तरह इनको सँभाल लिया। सेठजी के मार्गदर्शन में इनके जीवन का जीर्णोद्धार हो गया और अपने-आपको सेठजी के सुपुर्द कर दिया। एक बेपढ़ा-लिखा आदमी, जिसने जिंदगी में कभी किसीके हाथ के नीचे काम नहीं किया और जो सदा मालिक और सेठ के रूप में ही प्रतिष्ठा पाता रहा, वह आज दूसरों की ड्योढ़ी पर मुनीम बनकर पहुँचा। पैसा पास में नहीं और हाथ से काम भी जिसने न किया हो। जमनालालजी का कारोबार छोटा-मोटा नहीं! लेकिन जमनालालजी आदमी को परखते थे, वे सच्चे अर्थों में जीवन के जौहरी थे। चिरञ्जीलालजी उस समय भले ही बुद्धि और सोने-चाँदी के टुकड़ों की दृष्टि से निर्धन रहे हों, किन्तु भावना और शक्ति की दृष्टि से उनकी आत्मा बहुत बड़ी थी, यह सेठजी ने देख लिया था। यही कारण है कि धीरे-धीरे चिरञ्जीलालजी उनके फर्म के ही नहीं, परिवार के भी एक सदस्य-से बन गये और पन्द्रह कंपनियों का संचालन अत्यन्त कुशलता, सावधानी तथा विवेकपूर्वक करते रहे। सेठजी और चिरञ्जीलालजी का संबंध राम और हनुमान् जैसा रहा है। राम की आज्ञा का आँख मूँदकर पालन करना हनुमान् का कार्य है। राम की आज्ञा के आगे हनुमान् की बुद्धि और शक्ति नापने और तौलने की जरूरत नहीं। यही काम चिरञ्जीलालजी ने किया। सेठजी के जिन कार्यों में बड़े-बड़े बुद्धिमानों के छक्के छूट जाते थे, उनमें चिरञ्जीलालजी पूरी आत्मनिष्ठा के साथ, बिना किसी परेशानी की परवाह किये कूद पड़ते थे और यथासंभव वह काम पूरा करके ही चैन लेते थे। हनुमान् तो राम का काम करना अपना कर्तव्य ही समझते थे। कार्य की सफलता तो रामजी की कृपा पर ही निर्भर थी। इसी तरह चिरञ्जीलालजी भी कहते है कि मेरा काम तो काम करना था, जो सफलताएँ मिलीं, वे सेठजी के पुण्य-भाग्य से। आज वे सेठजी के कारोबार से निवृत्त हो गये हैं, फिर भी अनासक्त भाव से श्री कमलनयनजी और श्री रामकृष्णजी बजाज को उनके कार्यों में सहयोग देते ही रहते हैं। सच बात तो यह है कि उनका हृदय और सारा तन-मन सेठजी की भक्ति से ओत-प्रोत है, जिनके कारण वे चुप नहीं रह सकते। हनुमान् राम के बिना जीवित कैसे रह सकता है?

चिरञ्जीलालजी सुख के नहीं, दुःख के साथी हैं। उनका कोई साथी, मित्र या कुटुम्बी खा-पीकर सुखी है, तो वे उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखेंगे; किन्तु अगर उन्हें मालूम हो जाय कि उनका कोई विरोधी और शत्रु भी किसी आफत में, विपत में या दुःख में पड़ गया है और वे किसी भी रूप मे उसकी मदद कर सकते है, तो वे उस समय सारी बातो को भुलाकर उसके पास पहुँच जायँगे और यथाशक्ति उसकी सहायता करेगे। तब वे विचार नहीं करेगे कि यह वही आदमी है, जिसने अमुक समय उनके साथ कैसा सलूक किया था! भयकर नुकसान पहुँचानेवाले के साथ भी ऐसे समय उनकी आत्मा द्रवित हो उठती है और मर्यादा का विचार न करके भी उसकी सहायता को दौड पड़ते हैं। जमनालालजी के यहाँ से उन्हें हटाने के लिए भी बहुत लोगो ने बहुत प्रकार से प्रयास किये, सेठजी के पास अनेक तरह की चुगलियाँ खायीं, किन्तु इनका व्यवहार उन सबके साथ ज्यो-का-त्यो रहा। इस वृत्ति के कारण उनको कई बार बहुत कुछ बरदाश्त भी करना पडता है, किन्तु स्वभाव ही कुछ ऐसा पड़ गया है। वे ये सारी बाते समझते भी हैं, चर्चा भी करते हैं, किन्तु स्वभाव के आगे लाचार रह जाते हैं। ताल पर जैसे नर्तक के पग उठने लगते हैं, वैसा ही इनका हाल है।

यद्यपि चिरञ्जीलालजी का पालन-पोषण रूढ़िवादी परिवार में ही हुआ, किन्तु गोद आने के बाद इन्होने अपने आसपास का वातावरण इस प्रकार का बनाया कि ये दिनों दिन सुधार की ओर ही बढ़ते गये। पं० उदयलालजी कासलीवाल, महात्मा भगवानदीनजी, ब्र० शीतलप्रसादजी, बाबू अजितप्रसादजी, अर्जुनलालजी, सेठी सत्यभक्तजी आदि के सपर्क के कारण समाज-सुधार के उनके विचार पक्के होते गये। जमनालालजी के कारण बापू के निकट संपर्क में भी वे आये। काग्रेस और काग्रेसी नेताओं का स्नेह भी इन्हें काफी मिला। आदमी जिस प्रकार के वातावरण में रहता है, वैसा ही बन भी जाता है। अगर चिरञ्जीलालजी जमनालालजी के कारोबार को सँभालने की जगह समाज और देश के क्रियात्मक आदोलनों में पूरी तरह कूद पड़े होते और थोडा शिक्षण अधिक हुआ होता, तो आज कम-से-कम जैन-समाज को एक ऐसा नेता मिला होता, जो सारे संप्रदायों को अपने प्रेमपाश में बाँध लेता। चिरंजीलालजी के विचार तो सुधारकवा के बनते गये, लेकिन कारोबारी और हिसाबी होने के कारण उनकी वृत्ति समन्वयात्मक ही

अधिक रही। किसीको नाराज करना और किसीका जी दुखाना उनके स्वभाव में नहीं रहा। समन्वय की भूमिका में क्रांति की आग प्रत्यक्ष दिखायी नहीं देती, वह भीतर ही भीतर वडवानल की तरह धधकती रहती है। समाज-सुधार के सैकड़ों कार्यों में उन्होंने हजारों रुपया मुक्त-हस्त से खर्च किया है, लेकिन उसका कोई बाह्य चिह्न या स्मारक किसीको कैसे दीख सकता है? ढिंढोरा न पीटते हुए इन्होंने जो कुछ बरदाश्त किया, उसीका यह परिणाम है कि आज स्थितिपालक और सुधारक, दोनों इनका समान रूप से आदर करते है। समाज एक ओर तो अंतर्जातीय विवाह करनेवाले को जाति-बाहर करता है, किन्तु दूसरी ओर चिरंजीलालजी के यहाँ वही व्यक्ति प्रमुख पात्र बना रहता है, तब भी समाज कुछ नहीं करता। जैन-समाज मे समाज-सुधारक के कार्यों को प्रेरणा देने में इनका पर्याप्त हाथ रहा है। बौद्धिक मदद का प्रश्न इतना बडा नहीं है, जितना किसी आदोलनकर्ता को ढाढस बँधाकर, आश्रय देकर और आर्थिक मदद देकर उत्साह को बढ़ाते रहने का है। उस जमाने में, जब कि एक ओर अंग्रेजी सल्तनत थी और उसके कारण रूढिवादी पूँजीपतियो को उसका बहुत बडा सहारा था, चिरंजीलालजी का सुधार-क्षेत्र मे प्रवेश करना कम महत्त्व की बात नहीं है। जैन-समाज के पिछले पचास वर्ष के इतिहास में चिरंजीलालजी स्वयं एक प्रकरण के रूप में प्रतिष्ठित है और एक अध्याय ही नहीं, हर अध्याय में उनका अपना स्थान है।

अतिथि-सत्कार में तो उनकी होड करना कुबेर के लिए भी कठिन होगा। पत्नी और पुत्र चाहे जितना भी टालना चाहे, पर चिरञ्जीलालजी इस व्रत में कभी कोई भूल नहीं होने देते। घर पर कोई मेहमान आ जाय और वह बिना भोजन किये लौट जाय, यह स्थिति उनके लिए मरणप्राय हो जाती है। कोई अनजबी भी उनके यहाँ डेरा डाल सकता है। घर पर बिना सूचना दिये भी कई बार वे अतिथियों को ले आते हैं और इस तरह घरवालों को असुविधा में डाल देते हैं। इस मामले को लेकर कई बार घर में चख-चख हो जाती है और वे महसूस भी करते हैं कि उन्हें वस्तुतः ऐसा नहीं करना चाहिए था, किन्तु रात बीती कि वह सारी बात सपने-जैसी हो जाती है। एक बार तो ऐसा हुआ कि एक आदमी फर्जी-रिश्तेदार बनकर आया और चिरञ्जीलालजी ने रात को अपने घर पर सोने

को कह दिया। वहीं पर शहर के एक दूसरे भाई भी सोये थे। सुबह चिरंजीलाल-जी तो पर्यटन के लिए निकल गये और वे हजरत मेहमान की घड़ी, स्वेटर आदि लेकर चलते बने! इस तरह कई बार अतिथि-सत्कार उन्हें परेशानी में डाल चुका है और इसीलिए घर के लोग कहा करते हैं कि वे बिना जान-पहचानवालों को निमंत्रण न दिया करें। लेकिन चिरंजीलालजी उसके महत्त्व को जानते हैं। अतिथि-सत्कार जब वे सारे देश में पाते हैं, तब किसको रोक दें। इसकी कोई कसौटी थोड़े ही होती है। किसी अतिथि की कसौटी हो या न हो, उनकी कसौटी तो हो ही जाती है। अभी-अभी की बात है कि वे सर्वोदय-सम्मेलन में काजीवरम् गये थे। उत्तर भारतीय लोगों का लौटने का मार्ग प्रायः वर्धा होकर ही था। अनेक लोगों को वे वर्धा उतरने का निमंत्रण दे बैठे। संघवा के भाई लक्ष्मीचंदजी जैन और उनकी पत्नी श्रीमती फातमाबहन को भी सहज निमंत्रण दे दिया। कुछ दिनों बाद श्रीमती फातमाबहन वर्धा आयीं। संयोग की बात कि वर्धा में चिरंजीलालजी नहीं थे। घर पर केवल उनकी पत्नी ही थीं। चिरंजीलालजी भले ही सुधारक हों, लेकिन हरएक के संस्कार तो भिन्न होते ही हैं। अब धर्म-संकट आ खड़ा हुआ। नहीं उतारती हैं, तो आने पर चिरंजीलालजी नाराज होंगे और उतारती हैं, तो चौके में ही भोजन कराना संस्कार में नहीं बैठता। आखिर उनकी पत्नी ने फातमा-बहन को उतारा और अपने चौके में ही भोजन भी कराया। नौकरानी ने कपड़े धोने और थाली मॉजने से इनकार कर दिया, पर उनकी पत्नी को तो सब करना ही था। एक दिन वे एक संबंधी के यहाँ जाकर कहने लगीं, "उस दिन वह फातमाबहन आयी थीं। जब वे निमंत्रण दे आये, तो क्या करती! घर आया मेहमान तो देव ही होता है, फिर वह चाहे कोई हो! लेकिन मेरे संस्कार में यह बात बैठती नहीं कि एक मुसलमान को भी अपने चौके में जिमाऊँ।"

अतिथि-सत्कार का यह गुण उनमें जमनालालजी की संगति से आया। अति-थियों के लिए होनेवाला खर्च कभी फिजूल नहीं जाता, यह उनकी मान्यता है। इसे वे एक ऐसी धरोहर मानते हैं, जो आदमी के आड़े वक्त काम आती है। वे कहते रहते हैं कि किसीको हजार रुपया देने के बाद शायद उसकी याद न रहे, पर भोजन एक ऐसी चीज है, जिसे आदमी आसानी से भूल नहीं

सकता। उन्हें खुद की अपेक्षा दूसरों को खिलाने-पिलाने में सुख महसूस होता है।

वचन-पालन पर वे बहुत जोर देते हैं। एक बार किसीको वचन देने पर चाहे जो परिस्थिति आ जाय, उसे पूरा करना वे अपना धर्म समझते हैं। इसके कारण उन्हें अनेक बार भयंकर आर्थिक संकट और कौटुंबिक कलहों में से गुजरना पड़ा है। नैतिकता तथा सचाई की उनकी अपनी कल्पनाएँ और अपना ढाँचा है। एक बार उन्होंने एक भाई को कुछ रकम कर्ज के रूप में देना स्वीकार कर लिया था। कुछ रकम दे भी दी गयी। रकम देते समय मालूम भी हो गया था कि इस रकम की प्राप्ति में अनेक कठिनाइयाँ आयेगी और यह रकम काम के बढ़ाने के लिए नहीं, बल्कि पुराना कर्ज चुकाने के लिए दी जा रही है। फिर भी उन्होंने वचन के अनुसार रकम दे दी और फलस्वरूप उन्हें रकम की प्राप्ति में काफी परेशानी और घाटा सहन करना पड़ा। इतना घाटा कि उतनी रकम के ब्याज से वे अपनी शेष जिन्दगी आराम से बिता सकते थे! इसी तरह उनको एक व्यसन यह भी लगा हुआ है कि अमुक लड़का सुधर जाय, अमुक की पढ़ाई पूरी हो जाय, अमुक काम-धंधे से लग जाय, तो अच्छा और इस निमित्त कुछ खर्च भी करना पड़े, तो हर्ज नहीं। एक विद्यार्थी को उन्होंने कुछ छात्रवृत्ति दी। अपने यहाँ कुछ काम भी दिया। घर पर भी रखा। उसने दो-तीन बार चोरियाँ भी कीं। बंबई में अपने पुत्र के पास भी रखा। लेकिन जब उसने उनके पुत्र का नया सूट ही चुरा लिया, तो पिता की तरह पुत्र कैसे बरदाश्त करता! फिर भी चिरंजीलालजी ने पुलिस में रिपोर्ट नहीं देने दी। जिनको चपरासी के रूप में रखा, उन लड़कों के ब्याह तक करवा दिये।

उनके मानस पर उनके प्रति किये गये दुर्व्यवहार या छल-कपट का असर न होता हो, सो बात नहीं है। उनके मन पर ऐसी बातों का भयंकर असर होता है और वे आपे से बाहर भी हो जाते हैं, किन्तु सामनेवाला यदि क्षमा माँग ले, तो फौरन बर्फ की तरह पिघल जाते हैं।

भावुकता की दृष्टि से वे एकदम पके हुए आम के समान हैं। जब उनका मन अशांत और क्षुब्ध हो जाता है, तब अपने-आपको पीड़ित अनुभव करने

लगते हैं और जब खुशमिजाज रहते हैं, तब उनके साथ हँसी-विनोद करने में बच्चों को भी मजा आता है। वस्तुतः चिरंजीलालजी की प्रवृत्ति एक कोमलहृदय बच्चे जैसी है। क्रोध भी बच्चों-सा और स्नेह भी बच्चों-सा!

वे बहादुर सिपाही जरूर हैं, लेकिन हृदय उनका बड़ा कोमल है। इस कोमलता और संकोचशीलता को हम लोग कभी-कभी डरपोकपन भी समझ लेते हैं। लेकिन असल में जो आत्मदृष्टि से बहादुर होता है, वह कोमल ही हो सकता है। नारियल ऊपर से जितना कठोर होता है, भीतर से उतना ही मधुर होता है। समाज-सेवा और सुधारकता की दृष्टि से अपने जीवन मे उन्होंने बहादुराना पार्ट अदा किया है, पर ज्ञानियों और अनुभवियों के आगे सदा विनम्र और श्रद्धावनत ही बने रहे हैं। जब समाज ने उनको जाति-बहिष्कृत किया था, तब जातिवालों ने उनकी माँ को 'ढेड़नी' जैसे शब्दों से संबोधित किया था! राजस्थान मे जब वे किसी स्थान पर गये, तो वहाँ के लोगो ने अँगुलियाँ उठाकर और गाना बनाकर कहा—ये आये राँडों का ब्याह करानेवाले! बरसों तक इनके खिलाफ जाति का वातावरण रहा, किंतु इन्होंने कभी बदले की भावना मन में नहीं रखी! एक ओर जहाँ इनका यह साहस कि ब्र० शीतलप्रसादजी के सनातन जैन समाज की स्थापना वर्धा से करवायी, वहाँ नम्रता और भोलापन इतना कि विपरीत विचारवालों और विदेशी सत्ता के चाकरो से भी प्रेम मे कमी नहीं!

जल्दबाजी को हम उनका गुण कहें या अवगुण, समझ मे नहीं आता। किसी भी काम का निर्णय वे बहुत जल्दी कर डालते हैं, फिर उसे बदलना ही पड़े। इसके कारण साथी कार्यकर्ताओं को कई बार बड़ी परेशानी हो जाती है। यद्यपि जल्दबाजी के कारण इन्होंने कुछ मामले ऐसे भी निपटाये कि जिनमे बाद में बरसों लग जाने पर भी कोई हल नहीं निकल पाता। किसीके बारे में सुन-सुनाकर राय बना लेना भी इनकी जल्दबाजी में आ जाता है।

हिसाब-किताब के विषय में आप बिलकुल साफ और बेदाग रहते हैं। किसी की एक पाई भूल से भी घर में ज्यादा न आ जाय, इसका वे बारीकी से ध्यान रखते हैं। एक बार उन्होंने एक सज्जन से किसी स्टेशन पर दो आने ले लिये। बाद में देना भूल गये। जब खयाल आया तो दो आने के टिकट दो आने के

लिफाफे में लौटाये ! बहीखातों की गुत्थियों को मिनटों में सुलझाने में आप विशेषज्ञ माने जाते हैं। एक बार चर्चा-चर्चा में उन्होंने कह दिया कि "अरे, मैं १५ कंपनियों का डाइरेक्टर और मैनेजिंग डाइरेक्टर रह चुका हूँ।" उनका मतलब यह था कि हिसाब के मामले में उनकी भूल बताना आसान नहीं है। कुछ विचारकों का कहना है कि जो आदमी गणित में पक्का होता है और हिसाब में साफ होता है, वह सच्चा और सरलहृदय होता है। उसमें छल-कपट और दुराव-छिपाव को जगह नहीं होती। नगर में उनकी गणना एकमेव 'व्यवहार-चतुर' के रूप में होती है।

आजकल वे प्रवास काफी करते हैं। आजकल जब कि गाडियों में काफी भीड होती है और प्रवास में तरुण भी हिचकिचाते हैं, वहाँ चिरंजीलालजी महीने में पचीस दिन प्रवास करते हैं। उनका शरीर कुछ स्थूल है, फिर भी उनकी स्फूर्ति आश्चर्यजनक होती है। जहाँ भी वे जाते हैं, अपने परिचितों, मित्रों और सगे संबंधियों से मिले बगैर नहीं लौटते। समय कम हो, तो उसके अनुसार कम समय में ही सही, किंतु मिले बगैर जाना वे ठीक नहीं समझते। सारा प्रवास तीसरे दर्जे में ही करते हैं और कभी कोई गाड़ी नहीं चुकने देते।

उनसे जब पूछा गया कि हजारों कार्यों का भार सिर पर होने पर भी आप इतने मोटे कैसे बन गये, तो वे कह देते हैं कि 'नेकी कर और कुएँ में डाल'। किसने मेरे साथ कैसा सलूक किया, इसको भूल जाओ और आगे की समस्या को सोचो ! चिंता करने से कुछ हाथ नहीं आता ! वस्तुतः उन्होंने अपने जीवन में हजारों कार्य ऐसे किये कि अगर उनकी भली-बुरी प्रतिक्रियाओं का लेखा-जोखा दिमाग मे रखें, तो सम्भव है कि वे दूसरे क्षण ही साँस छोड़ बैठें। वे एक बात और कहते हैं कि जो चीज हाथ से निकल गयी या जिसे हमने छोड़ दिया, उसके बारे में हमें एकदम निर्लेप हो जाना चाहिए। उससे चिपटे रहने में हमारा ही नुकसान है।

सद्ग्रंथों के स्वाध्याय की उनकी कामना अब दिनोंदिन प्रबल होती जा रही है। आँखों की ज्योति इतनी मन्द हो गयी है कि एकाएक किसीको पहचानने में भी तकलीफ होती है, फिर भी दो-एक अच्छे ग्रंथ उनके बस्ते में रहते

हैं और जहाँ भी कोई मिल जाता है, उससे सुनने लगते हैं। एक दिन उनके एक साथी ने उनसे कहा कि "भाईजी, इतने बड़े और गहरे ग्रंथ आप कैसे समझ लेते हैं, हमें तो शंका है!" तो उन्होंने अपना सीधा-सा उत्तर दिया, "जितना समझ में आये उतना ही सही, समय तो गपबाजी में नहीं गया न!"

संक्षेप में कहा जा सकता है कि वे साधुओं में साधु हैं और गृहस्थों में गृहस्थ। गार्हस्थ्य और साधुत्व का संयुक्त यह व्यक्तित्व इतना भव्य, इतना उदार, इतना अनासक्त और इतना आकर्षक है कि उसे हम समाज का 'श्रीफल' और 'गौरव' कह सकते हैं।

वे उत्तरोत्तर विरागता की साधना की ओर बढ़ रहे हैं। हमारी कोशिश हो कि हम उनके चारों ओर उनकी रुचि का वातावरण ही निर्माण करें। अब उनको मानसिक क्लेश पहुँचाना समाज-शक्ति का अपमान है।

राजघाट, काशी
अक्तूबर, १९५६

—'जैन जगत्' में प्रकाशित

●

श्री चिरंजीलालजी बड़जाते के प्रति

ऐसा ही मानव जगती में नर-रत्न-रूप संज्ञा पाता

जीवन तो चलता रहता है, दिन पर दिन यहाँ गुजर जाते,
मानव भी चलता रहता है, कितने आते कितने जाते।
सब पेट भरा करते प्राणी, सबको कुछ करना पड़ता है,
व्यवहार चलाया करते हैं–उलझन मे रहना पड़ता है ॥

पर, ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं जो सच्चा जीवन जी पाते,
जीवन की ज्योति जला करके जग को प्रकाश जो दे पाते।
दीपक उसको ही कहते हैं जो अन्धकार में है जलता,
वह स्वयं प्रकाशित होता है, औरों को प्रकाशित है करता॥
ऐसा ही मानव जगती में नर-रत्न-रूप संज्ञा पाता॥

–२–

औरों के प्रति जो प्रेम-भाव और दया-भाव दर्शाता है,
और सहज-प्रेम की भाषा में तन-मन जिसका झुक जाता है।
ऐसे नर कहाँ मिला करते जो बहुत सरल जो बहुत कठिन,
है हृदय फूल-सा कोमल पर कर्तव्य रूप मे बहुत जटिल॥

क्रमबद्ध भावना की भाषा, सब रूप व्यवस्थित ही चलता,
व्यवहार-कुशलता अनुपम है, पर सरल सत्य से है ममता।
मैंने देखा है ऐसा नर जो **चिरंजीलाल** है कहलाता,
ऐसा ही मानव जगती में नर-रत्न-रूप संज्ञा पाता॥

—३—

अभिनन्दन की थाली लेकर, हम कुछ लेने ही आये हैं,
जीवन भर देते रहे सदा, विश्वास बाँधकर लाये हैं।
तुम औढर-दानी विश्रुत हो, कैसे निराश कर पाओगे,
औरों से छिपा सकोगे सब अपने से कब छिप पाओगे ॥

लेने में शर्म तुम्हे आती देने में सौख्य झलकता है,
यह ही जीवन का मन्त्र और सिद्धान्त बनाता चलता है।
कितने नर अनुप्राणित होकर काकाजी उनको कहते हैं,
कितनों के काज सँवारे हैं गुण-गौरव-गाथा गाते हैं ॥

वे युवक युवक को मात करे ऐसी फुर्ती इस वय में है,
तन-मन-स्फूर्ति से पूर्ण, पूर्ण सेवा-पूरित अवयव मे है।
जो काम और से नही बने उनका विश्वास बना देता,
जो राह और ना चल पाये, उनका भगवान चला देता ॥
ऐसा ही मानव जगती मे नर-रत्न-रूप संज्ञा पाता ॥

—४—

यह तन वृद्धत्व लिये अपनी जर्जर सीमा झाँका करता,
लेकिन फिर भी यह मनुज-देह कर्तव्य रूप का है नाता।
जब तक जो कुछ हमसे बनता तब तक सेवा इससे कर लो,
जब तक जो कुछ दे सकता हूँ ऋण-मुक्त हमें जग से कर लो ॥

यह नम्र भावना लेकर के दर-दर घर-घर और गाँव-गाँव,
पैदल, गाड़ी में कर प्रवास, पहुँचा करते हैं ठाँव-ठाँव।

क्योकि अन्तर का प्रेमभाव से कहना रहता है,
बस वही खीचकर जहाँ कहीं ले जाना हो ले जाता है ।।

मंडल के वे पिता-तुल्य और सच कह दूँ तो मातृ-तुल्य,
माता जैसे पालन करती जीवन अर्पण करके अमूल्य ।
बस उसी तरह से वर्षों से युग बीत गया इतिहास बना,
मडल का गौरवपूर्ण रूप देकर के तुम गम्भीरमना ।।

चल रहे आज उस गति से हो जिस गति से सितारे चलते है,
अमृत-सा पानी पाते है, गौरव का जीवन जीते हैं ।
धरती को एक वरदानरूप ऐसा ही नर है मिल पाता,
ऐसे ही मानव का प्रसाद चिरजीवी बनकर रह जाता ।।
ऐसा ही मानव जगती में नर-रत्न-रूप संज्ञा पाता ।।

-५-

तुम पैसठ के हो गये आज पैसठ बसन्त न्योछावर है,
पैसट वर्षा की मधुर धार कर चुकी यहाँ मधु-वर्षण है ।
लेकिन पैसठ गर्मी आकर के स्वेद बहाकर कहती थी,
कर्तव्य और सेवा तौलो तोले वह जिसमे ताकत है ।।

तौले वह जिसमें ताकत है, हिम्मत है इतना साहस है,
जीवन के मन्त्र फूँक दे यदि जीने की जिसमें कूवत है ।
इसलिए पसीने के मोती हिम्मतवालों को मिलते हैं,
लक्ष्मी फिर पानी भरती है, और सफल वही नर होते है ।।

उनको ही मिलती जयमाला जो जग से कुछ ऊपर उठते,
उनके ही जग गुण है गाता जो जीवन के साधक बनते ।

उनके पद-चिह्नों पर चलकर मानव गौरव अनुभव करता,
उनके विश्वासों में जग का युग-युग तक दीप जला करता ।।

ऐसे नर जैसे चिरंजीलाल इनका सम्मान किया करता,
ऐसे नर जो हैं निरभिमान, अभिमान समाज किया करता ।।

अभिनन्दन है तुमको इस क्षण,
अभिनन्दन तुमको रोज-रोज ।
अभिनन्दन सौ-सौ बरसों तक,
है अभिनन्दन मन के मनोज ।
मेरा, बर्धा का और समाज का,
अभिनन्दन स्वीकार करो ।
हममें भी गुण का अंशरूप
प्रेमलता का रस-भाव भरो ।।

●

स्व० राजमती

[जमनालाल जैन]

राजमती वर्धा के श्री चिरञ्जीलालजी बड़जाते की पुत्री थी। उसका जन्म सन् १६२८ में भाद्रपद सुदी ३ को हुआ और सन् १६५१ की ३० सितम्बर को वह इस संसार से सदा के लिए चली गयी।

चिरञ्जीलालजी के यहाँ जन्म लेकर राजमती ने क्या पाया और कैसे पाया, इसका इतिहास उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना यह है कि जो कुछ उसे मिल सका, उसे उसने परिस्थितियों के अनुसार जीवन में कैसे उतारा। जीवन की विशेषता इसमें नहीं है कि सीधे रास्ते पर चलते-चलते समाप्त हो जायँ या कि जीना जी चुकें। दयनीय अवस्था, अपमानपूर्ण स्थिति, संकट और कष्ट-पूर्ण जीवन तथा आर्थिक कठिनाई के बीच ही आदमी की कसौटी होती है और ऐसी विपरीत परिस्थितियों में भी जो आगे बढ़ जाता है, दुनिया उसकी ओर आदर और ईर्ष्या की नजरों से देखने लगती है।

राजमती का बचपन अत्यन्त लाड़-प्यार में पला। चिरञ्जीलालजी का हृदय इतना कोमल, स्नेहल और परदुःखकातर है कि वे किसीका दुःख देख ही नहीं सकते। सन्तान के प्रति अत्यन्त स्नेह उनका स्वभाव है। ऊपर-ऊपर से देखने में किसीको ऐसा लग सकता है कि वे बहुत निर्मम हैं, परन्तु जो उनको निकट से जानते हैं, वे अच्छी तरह परिचित हैं कि वे उतने ही द्रवणशील हैं और यही तो कारण है कि किसीकी जरा-सी तकलीफ की बात सुनते ही वे बेचैन हो उठते हैं। रात-रातभर विचार करते बैठते हैं और चाहे जितना नुकसान उठाकर भी अपने कर्तव्य को पूरा करते हैं और उस हालत में भी करते हैं, जब उन्हें बदले में किसी प्रकार का आराम और आदर तक नहीं मिलता। ऐसे पिता की संतान होकर राजमती के १६वर्ष किस सुख की गोद में पले होंगे, कल्पना की जा सकती है। प्यार आदमी को उठाता भी है और गिराता भी। जिस प्यार में विवेक और

मर्यादा का अभाव होता है, वह गिराता ही है और इतना गिराता है कि विचार और चेतना ही लुप्त हो जाती है। राजमती को पिता के प्यार में इतना अवश्य मिला कि वह श्वशुर-कुल में अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को विलीन कर सकी और इसमें उसकी तेजस्विता भले ही न हो, वेदनापूर्ण सहिष्णुता अवश्य थी।

उसके बचपन की ऐसी कोई घटना हमें याद नहीं, जिसे हम उसकी विशेषता के रूप में पेश कर सकें। हाँ, वह भोली थी और इतनी भोली थी कि शायद और लड़कियों से उसका मेल नहीं बैठता था। प्राथमिक शिक्षण पूरा होने पर उसे दो वर्ष तक महिलाश्रम में रखा गया। महिलाश्रम गांधी-विचार-धारा की संस्था है, जहाँ पर हर छात्रा को अपना पाखाना तक साफ करना पड़ता है और वह इसलिए कि उस कार्य के प्रति हीन दृष्टि न रहे। चिरञ्जीलालजी यद्यपि सुधारक हैं, दो बार जेलयात्रा कर चुके हैं और स्व० जमनालालजी के सम्पर्क से उनमें किसी वर्ग के प्रति घृणा या तिरस्कार नहीं रहा, परन्तु जहाँ तक परिवार का प्रश्न है, वे अपनी चीज को किसी पर जबरदस्ती थोप नहीं सके हैं। राजमती जिस वातावरण में रही, वह पाखाना साफ करने के बहुत कुछ पक्ष में नहीं था, बल्कि कहा जा सकता है कि वहाँ जातीयता ही अधिक थी। फिर भी राजमती ने महिलाश्रम में वह काम किया और प्रसन्नतापूर्वक किया। यही कारण था कि पिता की प्रेरणा पाकर वह सन् १९४२ में ६ मास के लिए जेल भी हो आयी।

पाखाना साफ करने और लड़की होकर जेल चले जाने की बात को हम बहुत बड़ी बात समझते हैं। बड़ी यों कि राजमती जिस समाज में पैदा हुई थी, उसमें ऐसी बातें करना भी धर्मभ्रष्टता में आता है। और यही साहस उसने अपनी बीमारी में भी बतलाया। भयंकर-से-भयंकर आपरेशन में भी उसने उफ् तक नहीं की और आपरेशन के घाव का टाँका खुलने के बाद भी उसने किसी पर अपनी वेदना प्रकट नहीं होने दी। उसकी इस अद्‌भुत शक्ति से डॉक्टर तक चकित रह गये।

उसके जैसी सहनशीलता बहुत कम बहू-बेटियों में पायी जाती है। कहा जाता है कि बहू-बेटी का कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं रहता और परिवार के वातावरण में अपने को मिटा देना पड़ता है। यह कुछ अंशों में ठीक है; पर एक

पढ़ी-लिखी और प्यार में पली लड़की बहुत कम ऐसा कर सकती है और विचार-भिन्नता के कारण कलह भी होता रहता है। राजमती पढ़ी-लिखी थी और ऐसे बाप की बेटी थी, जो अपने व्यक्तित्व को शायद ही भूले। पर उसने श्वशुर-कुल में जिस सहनशीलता और विवेक का परिचय दिया, उसके मूल में उसके पिता का वह संस्कार था, जो सहनशीलता की चरम-सीमा पर पहुँचा हुआ है। यही तो वह बात थी, जिसके कारण उसकी सास ने और उसके पति ने उसकी अद्भुत सेवा की और ऐसा तभी हो सका, जब राजमती अपने सास-ससुर का मन जीत सकी थी। अनूपलालजी ने उसकी सेवा करके जिस स्नेह और संयम का परिचय दिया, वह बहुत कम देखने में आता है।

उसकी शादी होने को कुछ ही दिन बीते थे कि वह अपने पति तथा जेठ-जिठानी के साथ सिनेमा गयी। सिनेमा-घर तक पहुँचे थे कि उसके श्वशुर आ गये और कहने लगे कि "तुम लोग मेरी नाक काटकर रहोगे।" जेठ-जिठानी तो जोश में आ गये और कह दिया कि "जाओ, आपसे जो बन पड़े कर लो, हम तो जायँगे।" वे यह सुनकर और गरम हो गये। दस-बीस आदमी जमा हो गये। वे पुराने संस्कार के आदमी थे। राजमती ने कहा : "भाभीजी, आज घर पर ही चलें। जिंदा रहेंगे, तो जीवनभर सिनेमा देखेंगे। आज तो हम अपने घर का सिनेमा न बनायें।" यह था उसका विवेक, जिसके कारण उसके घर का नाटक बंद हो सका। सिनेमा-घर तक जाकर लौट जाना कोई छोटी बात नहीं है और कम से-कम उसके लिए तो नहीं होती, जो नव-वधू हो! पर यह चीज राजमती को अपने पिता से मिली थी और विपरीत वातावरण तथा संस्कारों में जाकर ही उसके इस गुण की कसौटी हुई और उस कसौटी का अन्त उसकी मृत्यु में ही हुआ।

उसका विवाह उदयपुर के श्री अनूपलालजी अजमेरा के साथ हुआ था। शादी के बाद ही वे बी० ए० और एल० एल० बी० हुए। राजमती की सहिष्णुता का प्रारभ विवाह से ही शुरू हो गया। अनूपलालजी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विशेष कार्यकर्ताओं में से हैं। कहाँ पिता का गांधीवादी दृष्टिकोण और जीवन तथा कहाँ पति का उसके ठीक विपरीत आर० एस० एस० वादी दृष्टिकोण। ऊपर

से श्वशुर का रूढ़िवादी संस्कार ! राजमती ने समझ लिया कि यहाँ कुशलता इसीमें है कि अपने को समर्पित कर दिया जाय ।

सेवा-वृत्ति उसकी नस-नस में व्याप्त थी । चिरञ्जीलालजी सेवा का कोई अवसर नहीं चूकते और जहाँ तक बनता है, अपने विरोधी का भी पूरा ध्यान रखते हैं। राजमती में भी यह चीज थी । कलकत्ता में जब उसकी जिठानी के बच्चा हुआ और वह अलीपुर के सूतिकागृह में थीं, तब राजमती उनके लिए दोनों बार भोजन, नाश्ता आदि लेकर बड़ा बाजार से वहाँ तक ट्राम पर चढ़कर और अपनी बच्ची को साथ रखकर पहुँचती थी । उसे इस श्रम और सेवा में आनन्द आता था। एक मारवाड़ी महिला का इस तरह ट्रामों में चढ़कर पैदल चलकर जाना साहस की बात है और अगर मन में सेवा की भावना न होती, तो राजमती ऐसा कहाँ कर सकती थी ! यह उस समय की बात है, जब उसके पति आर० एस० एस० की ओर से जेल में थे। उनसे मिलने के लिए वह लम्बा रास्ता काटकर जेल पहुँच जाती थी । एक बार उसने कहा : "महिलाएँ भी पुरुषों से कम नहीं होतीं । जब सन् '४२ में अंग्रेजी सल्तनत के सिपाही ही मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सके, तब आज तो मुझे डर ही किस बात का है !"

वह लगभग तीन साल तक क्षय से बीमार रही । चिरञ्जीलालजी ने हजारों रुपया खर्च करके विविध उपचार करवाये। उसे मिरज, पेंड्रा रोड आदि के सेनिटोरियम में भेजा, आपरेशन करवाये, परन्तु रोग से वह मुक्त न हो सकी और अंत में उसकी मृत्यु हो गयी। बीमारी में पिताजी ने उसके पढ़ने के लिए सुविधा भी कर रखी थी। घर पर आनेवाले कई समाचार-पत्र, धर्म-ग्रंथ आदि वह पढ़ती रहती थी। इससे उसका धार्मिक ज्ञान भी बढ़ता गया था और सहन-शक्ति में भी मदद मिलती थी। यही कारण था कि असह्य वेदनापूर्ण स्थिति में भी वह हँसती रहती थी और एक प्रकार से उसने मृत्यु के भय को जीत लिया था ।

विवाह के बाद वह सात वर्ष तक जीवित रही। पर गृहस्थी का सुख जिसे कहते हैं, वह उसे बहुत कम मिला । उसके पति रा० स्व० से० संघ की निष्ठा के कारण संघ के कार्य में अधिकतर व्यस्त रहे और घर पर ,जो वातावरण था

वह अनुकूल नहीं था। उसे दो बच्चियाँ हुई, पर उनको ठीक से प्यार भी वह न कर सकी।

बच्चों की परवरिश के बारे में वह बहुत सावधान रहती थी। वह अपनी बच्ची को कोरा दूध कभी नहीं पिलाती थी। वह जानती थी कि छोटे बच्चों को जल्दी अन्न देना शुरू करने से उन्हें लीवर की शिकायत हो जाती है। घर की महिलाएँ इसके कारण को समझ नहीं पाती थीं। सास से कहा जाता कि ज्यादा अन्न नहीं खिलाना चाहिए, तो वे कहतीं कि बच्चों को तो खिलाना ही चाहिए, बच्चों का पेट तो फूला रहता ही है। और इस तरह जब उसने देखा कि चाहे जैसी वस्तुएँ खिलाते रहने से बच्ची कमजोर हो गयी है, तो उसको काफी वेदना हुई। वह जानती थी कि पुराने विचार के लोगों को आरोग्य के नियमों की जानकारी न होने से ही यह सब होता है।

यों उसके जीवन की कोई विशेष घटनाएँ न भी मिले और एक प्रकार से उसके जीवन को सामान्य जीवन ही कहा जा सकता है, तो भी वह साफ दिल, नेक विचार और सेवाभावी लडकी थी। यह बात दूसरी है कि उसे परिवार की परिस्थिति में घुल-मिल जाना पडा और प्रकट रूप में उसने कभी अपनी भिन्नता व्यक्त नहीं की, फिर भी उसका हृदय इतना भावनाप्रधान और कच्चा अवश्य था कि वह बात को पी तो जाती थी, पर पचाना उसके लिए सरल नहीं था। पचाने के लिए जिस ताकत की जरूरत होती है, वह उसमें नहीं थी और यही कारण है कि वह बीमार हो गयी। जो आदमी विरोध और वैषम्य को पचा जाता है या बाहर प्रकट रूप में निकाल फेंकता है, उसके मन में किसी प्रकार का भाव नहीं रहता; लेकिन जो प्रकट नहीं करते और वेदना सहते हैं, ऐसे लोग बीमार ही हो जाते हैं। बीमार होने पर भी उसने बहुत दिन तक बीमारी को बताया नहीं।

वह गृहस्थी की छोटी-मोटी बातों को खूब जानती थी। वह हमेशा अपने पति से कहा करती थी कि किसीका एहसान सिर पर नहीं रखना चाहिए। एहसान नमक का भी ठीक नहीं। और उसकी यह बात व्यावहारिक दृष्टि से बडी मार्के की थी। यों आदमी एहसान से कब मुक्त रहा है—हर आदमी एहसान की गोद

मे पलता है, बढ़ता है, पर वह एहसान किस काम का, जो आत्मा को दीन और पतित बनाये, स्वाभिमान को गिराये। उसका संकेत इसी ओर था। इसी तरह कर्ज से भी वह घबराती थी। वह कहती थी कि जिसका देना है, उसे बुलाकर दे देना चाहिए। इससे परेशानी कम होती है और शान भी रहती है। और हम कह सकते हैं कि यह चीज उसके भीतर पिता से आयी थी। चिरंजीलालजी का जिन्हें अनुभव है, वे जानते हैं कि कर्ज के नाम से वे कितने घबराते हैं और कहीं उन्हें मालूम हो जाय कि अमुक आदमी उनके बारे में अमुक बात कर रहा था, तो वे प्यारी-से-प्यारी वस्तु को बेचकर, चाहे जितनी हानि उठाकर भी उसका रुपया पहुँचा देते है। ऐसे बाप की बेटी कर्ज करके शौक कैसे कर सकती थी?

अन्त-अन्त में उसका झुकाव अध्यात्म की ओर हो गया था। वह हमेशा कहा करती थी कि अब मैं नयी साड़ी पहनूँगी। नया शरीर धारण करूँगी। मरते समय भी उसने अपनी माँ से कहा : "माँ, चिंता छोड़ो, मैं अकेली आयी और अकेली जा रही हूँ। हम सबका इतना ही साथ था।" यह उसकी बीमारी और धर्म-ग्रंथों के पढ़ने का स्वाभाविक परिणाम था।

वह चली गयी केवल २३ वर्ष की उम्र में। लेकिन अध्यात्म ने उसे आत्मिक आनन्द दिया और इसीके आधार पर उसमें हिम्मत रही और अन्त समय वह अनासक्त भाव रख सकी।

उसकी स्मृतिस्वरूप दो बच्चियाँ हैं, जिनमें से एक उसकी भाभी के पास रहती है और एक उसकी माँ के पास*। बड़ी होकर वे अपनी माँ के गुण को विस्मरण नहीं करेंगी, ऐसा सोचना व्यर्थ नहीं होगा।

वर्धा

२८-११-५१

—'महावीर का जीवन-दर्शन' पुस्तक से

●

---

* एक पुत्री रमा का विवाह अभी-अभी हो गया है।

चिरंजीलाल बड़जाते

[महात्मा भगवानदीन]

श्री चिरंजीलाल बड़जाते को, अगर मैं भूलता नहीं हूँ, तो सन् १९१७ से जानता हूँ। और जानता हूँ सेठ चिरञ्जीलाल के नाम से। जिस तरह सागर में लहरें आती हैं, पर अपना कोई अस्तित्व नहीं रखतीं, या जिस तरह बादल अनेक रूप धारण करते हैं, पर उसके रूप स्थिर नहीं रहते, या जैसे स्वर्ण अनेक गहनों के अस्थिर पर्यायों में निकलता रहता है और सदा स्वर्ण ही बना रहता है, वैसे ही ये सेठ चिरञ्जीलाल इस संसार की व्यावहारिक झील-पहाड़ियाँ लाँघ चुके हैं, ऊँच-नीच देख चुके है और सेठ-के-सेठ बने हुए हैं। इस संसार ने समय-समय पर इन्हें थपेड़े दिये, पर वह इनसे न सेठ की पदवी छीन सका, न इनके मन से सेठपने का व्यवहार खोंस सका। इसे आप बिलकुल सच समझिये कि भारत के सबसे बड़े और सबसे प्रसिद्ध आदमी से लेकर भारत के सबसे छोटे आदमी तक ऐसे मिल जायँगे, जो इनके एहसान से लदे मिलेंगे। भले ही गिनती एक अँगुली पर ही गिने जाने योग्य हो।

ये किसी धर्म में पैदा तो हुए हैं और किसी जाति में भी पैदा हुए हैं, पर इनके व्यवहार से यह पता लगा बैठना कठिन है कि ये किस धर्म के अनुयायी हैं और किस जाति के। श्री जवाहरलालजी के साथ 'नेहरू' शब्द मुझे बहुत खटकता है, वैसे ही इनके साथ 'बड़जाते' खटकता है। जवाहरलाल को जब कोई जवाहर चाचा या जवाहर काका कहकर पुकारता है, तो मेरा दिल खिल उठता है। वैसे ही मेरा मन बड़ा आनन्द मानेगा, अगर श्री चिरञ्जीलाल बड़जाते 'चिरञ्जी भैया' कहकर पुकारे जाने लगें। यह यहाँ है तो बेतुका, पर जब जबान पर आ गया है, तो कहे देता हूँ कि मुझे कम्युनिस्टों से बड़ी मोहब्बत है। पर उनका कॉमरेड शब्द मुझे 'कामरेड़' सा मालूम होता है। कानों को जँचता ही नहीं। हिन्दुस्तान का 'भाई' 'भैया' शब्द कितना प्यारा है! इसे लोग क्यों नहीं अपनाते? श्री जवाहरलालजी नेहरू के पिता 'मोतीलाल नेहरू' नाम से कम जाने जाते थे। वे तो 'भाईजी' नाम से प्रसिद्ध थे। वे घर में भी 'भाईजी' ही थे। होता कि श्री चिरञ्जीलाल बड़जाते घर-बाहर सभी जगह 'चिरञ्जी भाई' या 'भैया चिरञ्जी' होते। पर अब तो वे सेठजी हैं और शायद वही बने रहेंगे।

गांधी की आँधी में जो फँस गया, वह अंग्रेजी सरकार की आँख का काँटा बने बिना न रहा। फिर चाहे वह धूल का कण हो या घास का तिनका। अंग्रेज की आँख में आमतौर से और कट्टर अंग्रेज की आँख में खास तौर से किरकता ही रहता था और किरकनी आँख पर हाथ जाना स्वाभाविक ही है और उस कण या तिनके का दबना भी स्वाभाविक है। फिर हमारे ये सेठजी जेल की हवा खाये बिना कैसे रह सकते थे? और फिर श्री जमनालालजी (१९२१ के भामाशाह) के पड़ोस में बसनेवाले उनके रंग में रँगे बिना कैसे बच सकते थे।

तीरथ पर रहनेवाले पंडे तीरथ को जितना समझते हैं, उतने न यात्री समझ सकते हैं, न उस धर्म के पंडित और न महापंडित। तीर्थ की असलियत क्या है, यह पंडे ही जानते हैं। होता कि ऐसी कोई मशीन तैयार हो गयी होती, जिसकी सहायता से इनके मन में झाँका जा सकता, तो तीर्थ की असलियत का पता लग जाता और फिर वह-वह दृश्य देखने को मिलते कि हम सब दाँतोंतले अँगुली दाबकर रह जाते। याद रहे, पण्डे और केवल पंडों के दिलों में ही झाँकने से काम चल सकता है। तीर्थस्थान में बसनेवाले साधारण आदमियो के दिलों में झाँकने से कुछ-का-कुछ दिखाई दे सकता है। बस, वर्धा और उससे लगा सेवा-ग्राम (पुराना सेगाँव) मुद्दत से तीर्थ है और आज भी तीर्थ है। इस तीर्थ के देवता गांधीजी के जीते-जी हमारे ये सेठ चिरञ्जीलाल बड़जाते उसके महापंडे नहीं, तो उप महापंडे रह चुके हैं। इसलिए इनके अन्दर झाँकने से वे दृश्य देखने को मिलेंगे, जो इतिहास को नसीब नहीं हो सकते। पर न हम झाँक सकते हैं, न ये झाँकने दे सकते हैं।

इससे सारी दुनिया वाकिफ है कि साबरमती की तरह वर्धा और सेवाग्राम आजादी के महादेव के कैलाश रह चुके हैं। और फिर यह तो समझ ही लेना चाहिए कि वहाँ आये दिन आजादी के देवता आते रहते होंगे और उस नगरी को पवित्र करते रहते होंगे। जिस तरह हमारे सेठ जमनालालजी के बँगले की चप्पा-चप्पा भूमि का कण-कण आजादी के देवता और महादेव के चरणों से पवित्र है, वैसे ही हमारे इन सेठ चिरञ्जीलाल बड़जाते की पकी कुटी का कण-कण किसी न-किसी देवता की चरण-धूलि से सम्पर्क कर चुका है। और अगर वर्धा की रज मस्तक पर लगाने योग्य है या जिनको लगाने योग्य प्रतीत होती

है, तो वे हमारे सेठ चिरञ्जीलाल की पक्की कुटी के आसपास की धूल निधड़क हो माथे से लगा सकते हैं। यह ठीक है, हम अलंकारिक ढंग से लिख रहे हैं, पर इससे हम अपने पाठकों को सचाई के सूरज की चकाचौंध से ही तो बचा रहे हैं, कुछ हानि तो नहीं कर रहे।

सेठ चिरञ्जीलाल आज २२ अगस्त, सन् १९६० को जीवित हैं। सितम्बर महीने की बारह तारीख को वर्धा में उनका जन्म-दिन मनाया जाने को है। इसलिए हमारी लेखनी ने क्या लिखा है, इसे छोड़कर आप उनसे मिलिये और फिर देख लीजिये कि वे आप पर किस तरह जादू कर देते हैं। किसीके हिस्से में कुछ पड़ा और किसीके हिस्से में कुछ, इनके हिस्से में आयी है गांधीजी की विनम्रता। अगर कहीं गांधीजी की महानता भी इनके हाथ लग गयी होती, तो यह विनम्रता खिल उठती और इसकी गंध देश छोड़ विदेशों को जा छू लेती। पर अब तो वह अपनी गंध और पंखुड़ियाँ सिकोड़े सीमित क्षेत्र को ही सुवासित और प्रफुल्लित करती रहती है। पंडा जैसे बिना तीर्थ के नहीं रह सकता, वैसे ही बिना देवता के भी नहीं रह सकता। और यह हम कह ही चुके है कि हमारे सेठ चिरञ्जीलाल पंडा रह चुके है और शायद जीवनभर बने रहेंगे। तीर्थस्थान तो इनका बना-बनाया है। देवता ये खुद बना लेते हैं। देवता गढ़ने की कला में मनुष्य युगों से मशहूर चला आ रहा है, वह लकड़ी-पत्थर के भी देवता गढ़ लेता है और हाड-मांस के भी। चिरञ्जीलाल आखिर आदमी हैं। इन्हें क्यों कठिनाई होनी चाहिए? इसलिए आज भी वर्धा देवताविहीन नहीं। भले ही विनोबाजी वर्धा की मथुरा छोड़ इन्दौर की द्वारिकापुरी बसा ले या रमते राम का बाना आमरण पहने रहें।

हमने श्री चिरञ्जीलालजी बड़जाते को बहुत पास से देखा है। छाती-से-छाती मिलाकर देखा है। कभी-कभी उनका मुँह हमारी छाती से आ लगा है, इसलिए हम अगर उन पर लिखने बैठ जायँ, तो एक बड़ी किताब बन सकती है। पर कम बोलने में जो मजा है और कम लिखने में जो आ सकता है, वह ज्यादा बोलने में कहाँ और ज्यादा लिखने में कहाँ समा सकता है। इसलिए यहीं पूर्णविराम किये देते हैं।

●

स्नेह-मूर्ति चिरंजीलालजी

[श्री रिषभदास रांका]

भाई चिरञ्जीलालजी को मैंने पहले-पहल नागपुर-कांग्रेस के अवसर पर देखा। जैन पोलिटिकल कान्फरेंस का अधिवेशन श्री पद्मराजजी जैन रानीवालों की अध्यक्षता में हुआ था। अधिवेशन टाउन-हॉल में हुआ था और उसके मूल प्रेरक चिरञ्जीलालजी ही थे। मैंने देखा कि इनमें सामाजिक तथा राष्ट्रीय कार्यों के प्रति इतनी अधिक दिलचस्पी थी कि ये अपने कारोबार की तरफ से लापरवाह रहते थे। स्वभाव भी बचपन से उदार रहा। आये हुए किसी भी व्यक्ति को 'ना' कहना तो उन्होंने सीखा ही नहीं। आखिर परिस्थिति यह आ गयी कि वे लखपति से कर्जदार बन गये और सेठजी से मुनीम बन गये। जब मेरा इनसे घनिष्ठ संबंध आया, तब वे सेठ जमनालालजी के यहाँ मुनीमी करते थे।

मैं सन् १९२६ में वर्धा आया। मैं राष्ट्रीय विचारों का था और सेठ जमनालालजी के आकर्षण से ही आया था। अतएव चिरञ्जीलालजी से मेरा परिचय और सम्बन्ध उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। मेरी वृत्ति को देखकर चिरञ्जीलालजी को खुशी होती थी और हम दोनों निकट आते गये। पहली बार मैं केवल साढ़े तीन साल तक ही वर्धा रहा। मेरा सौभाग्य है कि इस अर्से में ही उनका प्रेम-पात्र बन सका और तभी से हमारा स्नेह अक्षुण्ण रहा है।

चिरञ्जीलालजी सेठ से मुनीम बन गये, लेकिन उनका श्रेष्ठित्व (सच्चा सेठपन) उत्तरोत्तर चमकता ही रहा। समाज में और जनता मे वे सेठजी ही रहे। किसीको उन्हें 'मुनीम' सम्बोधित करते मैंने नहीं देखा। सार्वजनिक कार्य, अतिथि-सत्कार तथा खिलाना-पिलाना कम नहीं हुआ। ये सारे काम तो आज भी ज्यों-के-त्यों चलते हैं। अतिथि-सत्कार तो जैसे उनकी उपासना बन गयी है। खिलाये-पिलाये बिना उन्हें कल नहीं पड़ती। और अगर सामनेवाला जैन हो, तो फिर वह बचकर नहीं निकल सकता।

यदि कोई उनके यहाँ से बिना खाये-पिये चला जाय, तो उन्हें कितना दुःख होता है, इसका अनुभव भी कई बार मैं कर चुका हूँ। उनका हृदय अत्यन्त कोमल एवं भावनाप्रधान है। इस कारण तुच्छ दिखनेवाली खाने-पीने की बात से भी इतने दुःखित हो जाते हैं कि उस रात को वे सो नहीं पाते। कई दिनों तक उन्हें इस बात से रह-रहकर दुःख होता रहता है। धर्मपत्नी और पुत्रों से भी ऐसे प्रसंगों पर उलझ पड़ते हैं।

जैसे उन्हें दूसरों को खिलाने-पिलाने में आनन्द आता है, वैसे ही आपको पर-सेवा करने में प्रसन्नता होती है। दूसरों के संकट में काम आना आपकी विशेषता है। संभव है, आपके अच्छे दिनों में वे आपके यहाँ खाने-पीने को न भी आयें, पर आप संकट में होंगे, तो वे आपके पास पहुँचे बिना नहीं रहेंगे। आपके दुःख के प्रति सहानुभूति बताकर ही वे चुप नहीं रह जाते, अपनी शक्ति से अधिक करेंगे भी। इस प्रकार शक्ति से अधिक बोझ उठाकर अनेक बार स्वयं दुःखी बनते हैं, कष्ट उठाते हैं, पर करें भी क्या, अपनी आदत से लाचार हैं।

उन्हें संसार और व्यवहार का अनुभव काफी है। सेठ जमनालालजी ने उन पर बड़े-बड़े कामों की जिम्मेदारी डालकर उनसे बहुत बड़े-बड़े काम करवाये, जिससे उनका व्यावहारिक अनुभव विशाल है। लेकिन उन्हें ठगाने में भी आनन्द आता है। उन्होंने अपना अलग ही एक नीतिकोश बना लिया है। यदि किसीको वचन दिया, आश्वासन दे दिया और उन्हें मालूम भी हो गया कि उन्हें उस व्यक्ति ने ठगा है, तो भी वे अपना वचन पूरा करना ही कर्तव्य मानते हैं। एक बार की बात है। किसी व्यक्ति को बहुत बड़ी रकम देने का वादा किया। कुछ रकम तो दे भी दी थी, कुछ देनी थी। पता चल गया कि उसने उनको गलत जानकारी दी थी। रकम आने की उम्मीद नहीं है, यह जानते हुए भी उन्होंने शेष रकम दी और उसमें से बहुत बड़ा हिस्सा डूब गया था।

सम्बन्धों को निभाने का भी उनका अपना तरीका है। वे सम्बन्धों को निभाने के लिए स्वयं तो बरदाश्त करते हैं, पर निकट-से-निकट सम्बन्धी या आत्मीय जन के यहाँ जाकर सेवा लेने में उन्हें अत्यन्त संकोच होता है। वे मिलने जायेंगे अवश्य, फिर वह मुलाकात खड़े-खड़े क्यों न हो; पर किसीको भूलेंगे

नहीं। पर खाने-पीने का समय टालकर आयेंगे। ये प्रवास इतना करते हैं कि इनके दोस्तों को इन पर तरस आता है। स्थूल और व्याधिग्रस्त शरीर, इन्द्रियों का नियंत्रण भी कम होते चला है। फिर भी हजारों मील की मुसाफिरी वे थर्ड क्लास में ही करते हैं। गन्तव्य स्थान पर पहुँचने के रास्ते में यदि मेल-मुलाकात-वालों से मिलना सम्भव हो और उतरना शक्य हो, तो वे उतरेंगे। स्टेशन पर नहा-धोकर तथा खाना खाकर ताँगे या वक्त पर जो सवारी मिले, उसमें बैठकर शहर में सभी के यहाँ जाकर मिल आयेंगे। बहन, बेटी, बच्चे को देने में भी नहीं भूलेंगे। पर दूसरों के यहाँ खाने-पीने में अवश्य संकोच करेंगे। उनको सदा इसका ध्यान रहता है कि मेरे द्वारा किसीको कष्ट न हो। भले ही उनकी इस संकोच-शीलता ने उनको रोगी और व्याधिग्रस्त बनने में सहायता की हो, पर न तो घूमने-फिरने की आदत छूटती है, और न संकोच ही।

सामाजिक और राष्ट्रीय कार्यों की रुचि होने के कारण उन्होंने कई संस्थाओं में काम किया। खतरा उठाकर भी राष्ट्रीय आंदोलन में जेल गये। सामाजिक सुधारों के कारण बहिष्कृत भी हुए; पर जो जँचा, वह करते ही गये। अछूतोद्धार और विधवा-विवाह जैसे काम उन्होंने आज से तीस साल पहले हाथ में लिये थे। और उसके लिए काफी सहना भी पड़ा, पर उन्होंने अगणित संकट आने पर भी इस कार्य से मुख नहीं मोड़ा। विधवाओं को फिर से गृहस्थी बसाने में सहायता की। वैसे तो उन्हें सभी धर्मों के प्रति आदरभाव है और सभी धर्मों के संतों और साधुओं के पास जाकर उपदेश सुनते रहते हैं, फिर भी जैन-धर्म और जैनों के प्रति भी कम प्रेम नहीं है। जैनों के परस्पर झगड़ों को देखकर उन्हें असह्य वेदना होती है और सभी जैनी मिल-जुलकर प्रेम से रहें, ऐसी उनकी भावना रहने से उन्होंने वर्षों से भारत जैन महामण्डल द्वारा प्रयत्न शुरू किये, जो अब तक बराबर चल रहे हैं। मण्डल की जिम्मेदारी उन्होंने नहीं ली, पर आयी थी। श्रीजुगमन्दिरलालजी ने अपने अंतिम समय पर उन्हें मण्डल सौंपा था। तब से बराबर उसे बच्चे की तरह सँभाल रहे हैं। समाज-कल्याण की उनकी भावना तो तीव्र है, पर समाज के कार्य या संस्था के कार्य के लिए माँगने में भी उन्हें संकोच होने से उपयोगी और महत्त्वपूर्ण कार्य होते हुए भी समाज में वह अधिक फैल नहीं पाया है, पर

चिरञ्जीलालजी का अपना तरीका है। जो भी हो, वे स्वयं तथा अपने मित्रों द्वारा इस काम को चलाते रहे, पर न माँगने के व्रत को भी निभाते आये।

उनमें आज भी समाज व देश-हित की वही भावना भरी हुई है, जैसी कि प्रारंभ में थी। भले ही शरीर काम दे या न दे, पर वे आज भी परहित के लिए उतने ही तत्पर हैं, जितने युवावस्था मे थे। सेवा उनका व्यसन ही है। ऐसे पर-हितकारी, समाजसेवी पैंसठ वर्ष पूरे कर छाछठ में प्रवेश कर रहे हैं, यह सौभाग्य की बात है। भगवान् उन्हें स्वास्थ्य और अधिक आयु देकर उसके द्वारा समाज-हित करवाये, यही कामना है। उनके जीवन के अनेक पहलुओं का उल्लेख इस छोटे-से लेख में संभव नहीं है, फिर उनका-मेरा सम्बन्ध भी इतना निकट का तथा आत्मीय है कि अधिक लिखने में वह बाधक है। अतः इन कुछ पंक्तियों द्वारा उनके प्रति आदर प्रकट कर रहा हूँ। यह उनके जीवन का या गुणों का दर्शन नहीं है, वह तो कोई साहित्यकार और समर्थ लेखक ही कर सकता है।

लक्ष्मी महल, फ्लैट नं० ६,
बम्बई-२६

●

सहृदय-पुञ्ज : करुणा विभूति : कुटुम्बशील : विनयपूर्ण

श्री चिरंजीलालजी बड़जाते

[भानुकुमार जैन]

असंख्य लोग श्री चिरञ्जीलालजी बड़जाते से परिचित हैं। मैंने शीर्षक में ऊपर जितने विशेषण उनके नाम के पहले लगाये हैं, मैं चाहूँगा कि कोई भी ऐसा व्यक्ति मिले, जो कहे कि मेरे ये विशेषण गलत हैं। मुझे विश्वास है कि ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं मिलेगा। इसलिए मैं इसी लेख में और भी उनके अनेक गुणों का बखान करूँगा। श्री चिरञ्जीलालजी में सरलता, परदुःख-कातरता और छोटे-बड़ों सबके प्रति श्रद्धावनत रहने का भी एक विशेष गुण है। जीवन के क्षेत्र में कर्मठ, व्यावहारिक और चतुर होते हुए भी जीवन और समाज के क्षेत्र में वे निश्छल, परोपकारी और अपरिग्रही हैं। वे विद्वान् नहीं हैं, वे नेता नहीं हैं, वे व्यापारी नहीं हैं और वे नौकर भी नहीं हैं; लेकिन वे एक सहज मानवरूप हैं। उनमें मनुष्यता है और सौजन्य है। स्वार्थ की कामना नहीं, लेकिन उन्होंने धन कमाया, खूब कमाया और खूब बाँट दिया। अतः वे धन के नाथ से अनाथ हो गये हैं। इसलिए ऐसे व्यक्ति को अब क्या कहा जाय? मेरी दृष्टि में संन्यासी ही क्यों न कहा जाय? परम्परागत वेशभूषा और कर्मकाड के लिहाज से नहीं, बल्कि संन्यासी के समान जीवन में आचरण को अंगीकार कर लेने के लिहाज से।

इस लघु-से दीखनेवाले, लेकिन विराट् मनवाले महापुरुष श्री चिरञ्जीलालजी बड़जाते को उनकी ६५वीं वर्षगाँठ पर मेरी शत-शत विनयपूर्ण भावभींगी श्रद्धाजलि और गद्गद हृदय से कामना है कि उन्हें दीर्घायु प्राप्त हो और वे और अधिक मानव-मनों को अपने वश में करें।*

---

* मेरा और श्री ऋषभदासजी राका का यह विचार था कि उन्हें इस अवसर पर एक अभिनन्दन-ग्रंथ तैयार कर उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि प्रदर्शित की जाय, लेकिन 'जैन-जगत्' में इस सम्बन्धी सूचना निकलते ही श्री चिरजीलालजी की ओर से इसका घोर विरोध हुआ और उन्होंने ऐसे किसी आयोजन में शामिल होकर इस तरह का अभिनन्दन-ग्रंथ स्वीकार करने के लिए साफ नकार किया। अतः उस विचार को रद करना पड़ा।

बड़े भाई

[श्री ताराचन्द एल० कोठारी, बम्बई]

एक रोज श्री भानुकुमार जैन ने मुझसे श्री चिरंजीलालजी का परिचय कराया। चिरंजीलालजी ने मेरे सामने भारत जैन महामंडल की भूतकालीन भव्य प्रवृत्तियों तथा वर्तमान शिथिलता की चर्चा की। उनकी कोशिश मुझे महामंडल की प्रवृत्तियों मे खींचने की रही। मेरे पास उन दिनों काफी संस्थाओं का काम था, अतः किसी नये काम में फँसने की इच्छा नही थी। फिर भी चिरञ्जीलालजी की सरलता और भावना ने मुझे आकर्षित कर लिया।

बाद में तो वे जब-जब बंबई आते, और अक्सर आते ही रहते हैं, मुझसे बराबर मिलते रहे और मंडल के हालचाल सुनाते रहते। आगे चलकर तो कुछ ऐसे संबंध बढ़े, मानो मेरी और उनकी साझेदारी हो और यह काम मुझसे चिपकता-सा दिखाई दिया। धीरे-धीरे मैं भी उसमें रस लेने लगा। संस्था आत्मीय हो चली। चिरञ्जीलालजी में यह एक खास विशेषता है कि वे इस तरह आत्मीयता पैदा कर देते हैं कि कोई छूटना चाहकर भी नहीं छूट सकता। महामंडल के जितने भी साथी आज दिखाई पडते हैं, वे प्रायः ऐसी ही आत्मीयता की देन हैं। एक दिन मैंने सहज उनसे कहा कि महामंडल का एक पत्र होना जरूरी है। इतना सुनना था कि वर्धा जाकर उन्होंने तुरत 'जैन जगत्' शुरू कर दिया, और उसके पॉच-छह संपादकों में एक नाम मेरा भी जोड़ दिया। 'जैन जगत्' नाम उन्हें इसलिए अच्छा लगा कि पहले इसी नाम का एक मासिक निकल चुका था और उसने समाज में सुधार तथा क्राति के कार्य किये थे। लेकिन मैं था कि उसमें वर्षों तक एक पंक्ति भी नही लिख सका। स्वयं ने मेहनत की, खर्च किया और सन्मान बॉट दिया संपादकों को!

इस तरह प्रेमपूर्वक दरवाजा खटखटानेवालों को कौन कब तक बाहर खडा रख सकता है? एक दिन वह आया कि वे मुझे महामंडल की प्रवृत्तियों में घसीटकर ले गये और ऐसे साथियों की भेट दी, जिनका मित्र कहलाने में भी गौरव मिलता है।

धीरे-धीरे उनका परिचय बढ़ता ही गया। चिरञ्जीलालजी असल में सुख के नहीं, दुःख के साथी हैं और दुःख-भार को जितना हलका कर सकते हैं, वे अवश्य करते हैं। वे वस्तुतः परदुःखभंजक हैं।

एक-दो नहीं, कई संस्थाओं का काम वे निरन्तर करते रहते हैं—बगैर नाम के, बगैर सत्ता के और बिना अधिकार के! न वे व्यासपीठ पर बैठेंगे, न अगुआ बनेंगे! वे तो बैटरी हैं, जो अँधेरे में जलती—क्षीण होती रहती है और श्रेय बल्ब को मिलता है।

मैंने अपने जीवन में इस ढंग के केवल दो ही आदमी देखे हैं। एक थे, श्री मणिलाल मोकमचन्द शाह, जिन्होंने मुम्बई जैन युवक संघ और संयुक्त जैन विद्यार्थी-गृह को बढ़ाया और जिन-जिनके परिचय में वे आये, उन सबने उनको अपना माना और उनका प्रेम सबको उनकी प्रवृत्ति में खींचता रहा। मैंने उनको बुजुर्ग अथवा पूज्य माना था। दूसरे हैं हमारे श्री चिरञ्जीलालजी बड़जाते, जो उनकी सार्थकता से मेरे जीवन में बड़े भाई का स्थान सुशोभित कर रहे हैं।

●

आपका 'उनका उपकार नामक पत्रक पढ़ा। आपने जिस गहरी भावना से उसे लिखा है, उससे मन पर बहुत असर हुआ। जानकर खुशी हुई कि आपका ६४वाँ वर्ष चल रहा है। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि आप दीर्घायु हों।

वर्धा में इस समय आप सब लोगों से मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई।

(एक पत्र से) —श्रीमन्नारायण

२५-२-'५९

आदर्श समाज-सेवक

[श्री पूनमचन्द बांठिया]

लगभग ३५ वर्ष से मैं चिरञ्जीलालजी के निकट संपर्क में हूँ। बारीकी से इनकी गतिविधियों का निरीक्षण भी करता रहा हूँ। मैं यह निश्चय से कह सकता हूँ कि इन जैसा आदर्श समाज-सेवक और मूक कार्यकर्ता मेरे देखने में नहीं आया। आपने समाज, देश और जैन-धर्म की जो सेवा की है, उसका अगर पूरा विवरण तैयार किया जाय, तो एक बड़ा-सा ग्रंथ हो सकता है। वह होना भी चाहिए। वह जैन-समाज के गत पचास वर्षों के उतार-चढ़ावों का सजीव इतिहास होगा।

यहाँ पर मै उनकी कुछ खास बातें ही अत्यन्त संक्षेप में रख रहा हूँ।

जब पूज्य महात्मा गाधीजी ने हरिजनोद्धार का आन्दोलन छेड़ा, तब वर्धा में सर्वप्रथम श्री चिरञ्जीलालजी ही आगे आये। सन् '२८ में हरिजनों के लिए कुएँ खोलने का आदोलन शुरू हुआ। वर्धा की सेठ बच्छराज धर्मशाला में एक आयोजन किया और धर्मशाला के कुएँ से हरिजन द्वारा पानी निकलवाकर स्वयं ने भी उसे गंगाजल की तरह पान कर लिया। मारवाड़ी समाज और खासकर जैन-समाज का रुख उस समय देखने काबिल था। इनका जाति-बहिष्कार किया गया। इनकी माँ को गाली के रूप में अछूत कहा गया। लेकिन इन्होंने परवाह नहीं की।

इसी तरह विधवा-विवाह के आदोलन मे भी आपने तन-मन-धन से सहयोग दिया। इस आदोलन को लेकर भी समाज में एक तूफान उठ खड़ा हुआ। लोग गुमनाम पत्र लिखने लगे कि अपनी माँ का विवाह कब करेंगे ? लेकिन चिरञ्जी-लालजी विचलित नहीं हुए। इतना ही नहीं, ब्र० शीतलप्रसादजी को वर्धा लाने तथा सनातन जैन-समाज तथा विधवाश्रम खोलने में उनको पूरा सहयोग दिया। अगर ब्रह्मचारीजी को बड़जातेजी का सहयोग न मिलता, तो वे शायद ही सफल हो पाते।

राजनैतिक भावनाएँ इनमें बचपन में ही थीं। पं० अर्जुनलालजी सेठी और

महात्मा भगवानदीनजी के संपर्क के कारण राजनैतिक विचार उभरते गये। झंडा-सत्याग्रह में भाग लेने के समय रिश्तेदारों तथा परिचितों ने समझाया कि आप इसमें न कूदें। कारोबार ठप हो जायगा। यहाँ तक हुआ कि जिस दिन ये सत्याग्रह करनेवाले थे, उस दिन सुबह-सुबह ही दो-तीन व्यक्ति आये और कहने लगे कि "आप जेल जा रहे हैं और हमारी रकम आपके यहाँ जमा पड़ी है। जाना हो, तो हमारी रकम देकर जाइये। सरकार-द्रोही के यहाँ हम अपनी रकम जमा नहीं रखना चाहते। हाँ, अगर आप यह वचन दें कि जेल नही जायेंगे, तब तो कोई बात नहीं है।" इस पर चिरञ्जीलालजी ने साफ-साफ कह दिया कि "आप लोग अपनी रकम अभी ही ले जाइये! मैं आपकी रकम के खातिर देश का काम नहीं छोड़ सकता। कारोबार भले ही ठप हो जाय, मैं अपना निश्चय नहीं बदल सकता!" और तत्काल मुनीम से कह दिया कि इनकी रकम लौटा दी जाय। यह रकम लगभग ५० हजार रु० थी! उस जमाने में, आज से ४० वर्ष पहले, यह रकम मामूली नहीं थी! एक पल के लिए भी मन में शंका नहीं उठी कि कल मेरा क्या होगा! पहले सेवा, बाद में घर—यही इनका मंत्र रहा है।

चिरञ्जीलालजी पढ़े-लिखे नही हैं, लेकिन बहुत अनुभवी हैं। उन्होंने योग्य और अनुभवी लोगो की संगति से ही पाया है। उनका सही शिक्षण संगति के विद्यालय में ही हुआ है। स्व० जमनालालजी बजाज का तो इन पर वरदहस्त था ही। जहाँ भी और जो भी बुद्धिमान् तथा योग्य व्यक्ति दीखा कि उसकी संगति करते हैं, परिचय बढ़ाते हैं और आवश्यकता हुई, तो खर्च की भी व्यवस्था कर देते हैं। एक क्रातिकारी लेखक और विचारक के साथ मतभेद होते हुए भी इन्होंने उनको अपने पास बुलाया, स्थान दिया और उनका आश्रम स्थापित कराने में पूरी तरह मदद की। मतभेद होते हुए भी आपसी प्रेम में फर्क नहीं पड़ा। वे अपने स्वतंत्र विचारों का प्रचार बराबर करते रहे। विचारों की यह सहिष्णुता और उदारता विरले ही लोगों मे पायी जाती है।

अन्तर्जातीय विवाह तो आपने लगभग एक हजार करवाये होंगे। इनको तो स्मरण भी नहीं होगा कि कब, किसका, कहाँ विवाह हुआ और उसमें चिरञ्जीलालजी की मदद अप्रत्यक्ष रूप से कैसे पहुँच गयी। आज भी इनके थैले में

अनेक युवक-युवतियों के नाम-पते रहते हैं, और स्वयं काफी दिलचस्पी से इसमें जुटते हैं। आर्थिक मदद भी करते हैं।

कर्ज-वसूली के लिए कभी आप अदालत की शरण नहीं गये। '३०-'३१ के उस युग में जब फसल भी नहीं हुई थी और लोग तंगी में थे, तब आप अपने कर्जदारों के साथ इस तरह पेश आते, मानो उनके उद्धारक और मार्गदर्शक हों! कर्जदार से कहते, जो दे सकते हो, दो और अपना दस्तावेज ले जाओ। जो नहीं दे सकता था, उसको भोजन कराकर ऐसे ही दस्तावेज लौटा देते थे। इस तरह हजारो रुपयों के फैसले सैकडों और कोड़ियों में कर लिये। इसमें काफी बरदाश्त करना पडा। लेकिन इनकी दयालुता इतनी ऊँची थी कि किसीका दुख-दर्द देख नहीं सकते थे। आज भी कोई मदद के लिए आ जाता है, तो वह नहीं सोचते कि उसने तो अमुक समय विरोध किया था, इसे कैसे मदद की जाय। जो भी दरवाजे पर आ गया, खाली हाथ नहीं लौटा।

इस तरह चिरञ्जीलालजी का व्यक्तित्व सेवा से ओतप्रोत है।

वे शतायु हों और हम सबका दीर्घकाल तक मार्गदर्शन करते रहें, यही कामना है।

●

परदुःखकातर

[श्री सौभाग्यमल जैन]

सम्भवतः जनवरी १६५८ की बात है। भोपाल में भारत जैन महामण्डल की म० प्र० शाखा की मीटिंग श्री चिरञ्जीलाल बड़जात्या की प्रेरणा से बुलायी गयी थी। उक्त मीटिंग में मुझे भी आमन्त्रण दिया गया था। उसी समय से मेरा श्री बड़जात्याजी से सम्पर्क आया। इन २-३ वर्षों में ही मैंने यह अनुभव किया कि बड़जात्याजी के हृदय मे अन्य की पीड़ा के प्रति जो समवेदना समायी हुई है, वह अवर्णनीय है। मैंने एक बार नहीं, अनेक बार यह देखा तथा अनुभव किया है कि वे अन्य की पीड़ा को देखकर विचलित हो जाते हैं। वे परदुःखकातर हैं। सम्भवतः इसी प्रकार के व्यक्ति के मुख से उर्दू के एक कवि ने लिखा होगा :

"खंजर चले किसी पै तड़पते हैं हम,
सारे जहाँ का दर्द हमारे जिगर में है।"

वास्तव में विश्वभर की पीड़ा श्री बड़जात्या के हृदय मे समायी है और उस पीडा से त्राण दिलाने के लिए उसी प्रकार सहानुभूति समायी हुई है। संसार में वह व्यक्ति धन्य है, जो परदुःखकातर है। उसमें अन्य की पीड़ा को समाप्त करने के लिए हृदय में सहानुभूति रखते हैं तथा उसमें सहायक होते हैं। गाधीजी के शब्दों में वह सच्चा 'वैष्णव' है। हिन्दू-धर्म में ब्रह्मा, विष्णु, महेश-तीन देवताओं में विष्णु प्रतिपालक देव हैं। इसी कारण उनके अनुयायी वैष्णव कहे जाने लगे :

"वैष्णव जन तो तेणे कहिये जे पीर पराई जाणे रे।"

इसी प्रकार निसर्ग सारे विश्व पर अनन्त उपकार करता है। जो व्यक्ति अपने 'स्व' को विश्व के कल्याण के हेतु न्योछावर कर देता है, वह परोपकारी होता है। संस्कृत के एक कवि ने कहा है :

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय दुहन्ति गावः।
परोपकाराय वहन्ति नद्यः, परोपकाराय इदं शरीरम्॥

इसी प्रकार श्री बड़जात्याजी ने अपने 'स्व' को बहुत अधिक सीमा तक न्योछावर कर दिया है। मैं उनके स्वस्थ तथा दीर्घ जीवन के हेतु हार्दिक शुभ-कामना करता हूँ।

मातृवत् चिरंजीलालजी

[श्री बाबूलाल डेरिया]

अनेक बार भारत जैन महामंडल के अधिवेशनों में शामिल होने और बहुत बार श्री चिरञ्जीलालजी के साथ रहने के कारण सहज ही अंतर्ध्वनि प्रकट हो गयी कि अरे, यह तो मंडल की माता है, जो निरंतर चलते-फिरते, उठते-बैठते, बोलते-चालते, प्यारे छोटे बेटे की नाईं मंडल को अपनी गोद में लिये कश्मीर से कन्या-कुमारी तक और गुजरात से असम तक इस सेवानिवृत्त अवस्था में भी घूम रहे हैं। इस संसार के यात्री ने जीवन-संग्राम में जूझते हुए रेल को अपना निवास बना लिया है। साठ साल के निकट पहुँचानेवाली अवस्था में प्रत्येक सम्मेलन में हाजिर! कहीं धार्मिक जलसा हुआ कि वहाँ उपस्थित! कहीं शादी-विवाह का निमंत्रण किसी मित्र या थोड़े-से भी परिचित के यहाँ का मिला, सोचा कि यहाँ मंडल का कार्य हो सकता है, तो वहाँ हाजिर!

इस प्रकार मन, वचन और कर्म से जीवन के सपूर्ण साधनों के साथ भूख-प्यास, जागरण, सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान को समान रूप से सहता हुआ सदा सर्वदा जो मंडल को अपने इष्ट की भाँति मानकर उसकी सेवा करता है, उस निष्काम कर्मयोगी साधु-सन्यासी को 'माता चिरंजीलाल' न कहा जाय, तो क्या कहें? पिता में तो माता के सभी गुणों का संपूर्ण विकास नहीं हो पाता! लालन-पालन का भार तो माता ही सहन कर सकती है, जो भूखी-प्यासी अवस्था में भी खुद गीले में सोकर प्यारे बेटे को सूखे में सुलाकर, अपने कलेजे का खून (दूध) पिला-पिलाकर उसको पालती है, अपना सारा स्वरूप उसे देकर स्वयं वृद्ध होकर उसे तरुण देख प्रसन्न होती है।

"मेरे तन-मन-यौवन की कुर्बानी
मेरे रक्त बिन्दुओं की यह दुनिया है लासानी
अरे मुझको कहते हैं माता।"

●

भाईजी

[श्री बल्लभदास जाजू]

मैं बचपन से भाईजी को जानता हूँ। आपके छोटे भाई श्री सूरजमलजी मेरे सहपाठी थे और इस नाते मैं कभी-कभी आपके यहाँ आता-जाता रहता था। सूरजमलजी में 'कवि' बसता था। मुझे भी कविता करने की प्रेरणा उन्हींसे मिली।

पूज्य जाजूजी के साथ चिरञ्जीलालजी का काफी संबंध रहा है। वे इनके कारोबार के एक ट्रस्टी भी थे। उनके तथा सेठ जमनालालजी के चरित्र का चिरञ्जीलालजी पर काफी प्रभाव पडा है और यही कारण है कि आप राष्ट्रीय आंदोलन, कांग्रेस तथा समाज-सुधार की ओर अग्रसर हुए। सेठ जमनालालजी के कारोबार में प्रवेश करने के पूर्व आपका कपड़े का बड़ा कारोबार था। वह भी राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के कारण ठप हो गया। सेठजी के यहाँ काम पर लगने के बाद सेठजी ने आपको बड़े-बड़े कार्य सौंपे, विश्वास किया और ये भी पूरे आत्म-विश्वास के साथ उन कामों मे जुट गये। सब कामों को आपने व्यावहारिक कुशलता से और मनुष्य के मनोविज्ञान से निपटाया। एक बार जिस कार्य को हाथ में ले लेते हैं, उसे पूरा किये बिना इन्हें बिलकुल चैन नहीं पड़ती।

हृदय तो इनका इतना कोमल है कि कुसुम की मृदुता भी लजा जाय। वज्रादपि कठोरता को वहाँ रंचमात्र स्थान नहीं है। किसीका भी दुख-दर्द सुनकर या देखकर आँखें टप-टप बह पड़ती हैं। हाथ के नीचे काम करनेवाले साथियों को निरन्तर बढ़ावा देना और उनकी बड़ी-से-बड़ी गलतियों को क्षमा कर देना इनका सहज स्वभाव है। कोई अपनी गलती कबूलभर कर ले, इतना ही इनके लिए काफी है। ऐसे व्यक्ति का मन निष्कपट तो होता ही है। ये गुस्सा हो सकते हैं, नाराज हो सकते हैं, लेकिन द्वेष नहीं कर सकते। अपने गुस्से और नाराजी को ये स्वयं ही आँसू बहाकर हलका कर लेते हैं!

किसीका भी घर बसाने में इन्हें इतना आनन्द आता है कि किसी लोभी को लाख रुपये कमाकर भी क्या होगा ! घर बसाने से सम्बद्ध अन्य जवाबदारियाँ भी ये निभाने में पीछे नहीं रहते। अनेक कटु-अनुभवों के बावजूद भी इनकी सहज मानवता में अकृत श्रद्धा है।

किसी भी व्यक्ति के चरित्र की पहचान बड़ी और महान् दीखनेवाली बातों से नहीं हुआ करती। वृत्ति और चरित्र तो छोटी-छोटी बातों में ही व्यक्त हो जाता है और इसके लिए बहुत गहरे भी जाने की जरूरत नहीं होती। चिरंजीलालजी ने कौन-से बड़े-बड़े कार्य किये हैं या कर सकते हैं—इसके ब्योरे में जाने की हमें जरूरत नहीं है। उनकी रात-दिन की छोटी-छोटी बातें ही उनका दर्शन हमारे सामने रख देती हैं। किसीको भी वे अपने लिए कष्ट या परेशानी में नहीं डालेंगे। किसीके एक पैसे का भी बोझ अपने सिर पर नहीं रखना चाहते और अगर ऐसा इन्हें प्रतीत हुआ कि अमुक बोझ सिर पर चढ़ गया है, तो बिना कुछ जतलाये वह इस तरह चुका देंगे कि सामनेवाले को पता भी नहीं चल सकता। उस दिन की बात है कि बम्बई में किसीके यहाँ गये और टोपी बदल गयी। खादी की ५० न० पै० की टोपी ! कोई बड़ी बात नहीं थी, लेकिन इनको कल नहीं पड़ी। सब परिचितों के यहाँ फोन किया, टैक्सी की और जब एक ने इनसे टोपी रख ली, तब जाकर इनको संतोष हुआ। इस चक्कर में इनके तीन चार रुपये खर्च हो गये ! यही वह कसौटी है, जिस पर किसीका जीवन परखा जा सकता है। और, हम कह सकते हैं कि इस कसौटी पर चिरंजीलालजी बेदाग, सौ टंच सोना हैं !

पूज्य जाजूजी कहा करते थे कि 'पत्रों का जवाब न देना गुनाह है।' इस मंत्र का ये पूरी तरह पालन करते हैं। किसीका भी पत्र आ जाय, उसका उत्तर अवश्य दे देंगे—चाहे दो ही पंक्ति में दें और वह इनकी लिखावट को समझे या न समझे ! रोज की डाक रोज निपटाना इनकी आदत है। इस सम्बन्ध में हम लोग रात-दिन सैकडों प्रकार के 'कैरेक्टर' देखते हैं। लेकिन इनका तो एक ही कैरेक्टर है कि बिना पॉलिसी या शब्द-छल के मन की बात 'दो टूक' कह दी जाय।

आँखों से कम दीखने पर भी स्वाध्याय बराबर चलता है। जो मिल गया, उसीसे धर्म के दो शब्द सुन लेते हैं। शरीर से इतने मजबूर हो गये हैं कि संगी-साथियों को तरस आता है, लेकिन मानसिक उत्साह इनमें इतना है कि शरीर भी उसके आगे हार मान जाता है! हमें तो अचरज ही होता है कि सब साधन सुलभ होते हुए भी आप हमेशा तीसरे दर्जे में ही प्रवास करते हैं और निरन्तर प्रवास करते ही रहते हैं! रहन-सहन तो इतना सादगीमय है कि कभी-कभी तो छिद्रान्वेषी लोग टेढ़ी टोपी और खुले बटन देखकर यहाँ तक कह बैठते है कि यह चला नंबरी घाघ! असल में न ये घाघ हैं और न भोले! इनमें व्यवहार और परमार्थ, सादगी और चुस्ती, भोलापन और कुशलता, संकोच और दृढ़ता सबका समन्वय है।

हाँ, एक बात इनमें विशेष है और वह गुण है या अवगुण, इसका निर्णय करना कठिन है। वह है इनकी जल्दबाजी! हर बात के दोनों पहलू होते हैं। जल्दबाजी से इनको बरदाश्त भी करना पड़ा है, पर अगर किसी और का कुछ नुकसान हो गया, तो फिर इन्हें चैन नहीं पड़ सकती। इसलिए हम तो इसे गुण ही कह सकते हैं।

मेरे लिए तो चिरञ्जीलालजी प्रेरणा-स्रोत ही हैं। मेरी कामना है कि वे शतायु हों और हमारा मार्गदर्शन करते रहें।

●

दया का देवता

[तनसुखराय जैन]

सेठ चिरञ्जीलालजी को यदि 'दया का देवता' कहा जाय, तो इनके लिए कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। मेरा-इनका सम्पर्क सन् १६३५ से है। जब कभी इनसे मुलाकात हुई, दूसरों का दर्द दिल मे लिये पाये गये। पचासों विधवाओं और अपने पतियों से सतायी हुई स्त्रियों के घर इनके द्वारा बसे। सैकड़ों कन्याओं के विवाह-सम्बन्ध कराकर आर्थिक सहायता भी इन्होंने दी। दिल में इतना रहम है कि दूसरों का दुःख सुनकर इनका दिल उमड़ आता है। बिना कहे उसके दुःख में शामिल होते हैं और यथाशक्ति सहायता करते हैं। एक नहीं, सैकड़ो उदाहरण मेरे सामने हैं।

जिस समय इनका भारी नुकसान हुआ था, तब जिनका देना था, हाथ जोड़कर दिया और जिनसे लेना था, उनके एक दफा 'ना' कर देने पर उन्हें फारखती लिखकर दे आये, ताकि उनकी तरफ से लेने का खयाल ही छोड़ दिया जाय और दिल पर बोझ न रहे। आपकी रहन-सहन बहुत सादी और विचार बहुत ऊँचे हैं। इनमे चौबीस घण्टे समाज के लिए लगन है। इन पर समाज जितना गौरव करे, कम है।

●

अजातशत्रु

[स्वामी सत्यभक्त]

श्री चिरंजीलालजी बड़जाते, वर्धा से मेरा परिचय पिछले चालीस वर्षों से है और उनकी सेवावृत्ति के कारण वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया है। सन् '२० में मैं सिवनी में अध्यापक था। उस समय ये सिवनी आये थे। उस समय भी ये जैन समाज के नेताओं में गिने जाते थे। तब इनसे मेरी कई घंटे चर्चा हुई। उस समय मैं विचारों से सामाजिक क्रांतिकारी बन चुका था। इसलिए इन्होंने जो अपने विचार सुनाये, उससे इनके प्रति मेरा आदर और स्नेह खूब बढ़ गया। मेरे विचार तो विचार ही थे, पर इन्होंने अपने सामाजिक क्रांतिकारी विचारों को अमल में लाने की योजना बना रखी थी। अतः इनके प्रति मेरा आदर बढ़ना स्वाभाविक ही था।

सन् १९२४ की बात है। मैं जात-पाँत तोड़ने का आन्दोलन करने लगा था। उससे सारे समाज में काफी क्षोभ था। बहुत से पत्र मेरे पक्ष और विपक्ष की चर्चाओं से भरे रहते थे। मुझे लेख तो लिखने ही पड़ते थे, पर समाज को अपने पक्ष में लाने के लिए काफी पत्र-व्यवहार भी करना पड़ता था। हरएक पत्र जात-पाँत तोडने के पक्ष की दलीलों से भरा रहता था और इसमें मेरा काफी समय जाता था। उस समय श्री बड़जातेजी ने मेरे पत्र की दलीलों को लेकर एक फार्म छपवा दिया। उससे मेरी काफी मेहनत बच गयी। बात छोटी-सी थी, पर थी मौके की। इसलिए बड़जातेजी के साथ मेरा स्नेह और गहरा हो गया।

जात-पाँत तोडने का आन्दोलन और प्रचंड हुआ। यहाँ तक कि संस्था के संचालक उसका तेज और विरोध सहन न कर सके। मुझे आन्दोलन छोडने या नौकरी छोड़कर चले जाने का आदेश दे दिया गया। उस समय जैसा मेरा शिक्षण था, उसके आधार पर मैं जैन समाज के बाहर कोई जीविका नहीं ढूंढ सकता था और जैन समाज तो मुझ पर बडा क्रुद्ध था। इसलिए मेरे सामने रोटी

का बड़ा विकट सवाल खड़ा हो गया। यों कहने को मैं घबराया तो नहीं, पर दिन-रात जीविका की चिंता मुझ पर जरूर रहने लगी। त्याग-पत्र देने के बाद मुझे सिर्फ एक माह का समय था। पहले तो मैं सोचता था कि समाज में मेरे प्रशंसक-सहायक बहुत-से हैं, इसलिए चारों तरफ से मुझे मदद मिलेगी, पर आठ-दस दिन बाद ही पता लग गया कि गिरते समय भक्त, अनुरक्त, मित्र सब किनारा काट जाते हैं। उस समय एक चिरंजीलालजी ही थे, जिन्होंने लिखा कि "दुर्भाग्य से मैं घोर आर्थिक संकट में आ गया हूँ, इसलिए मैं और कोई मदद तो नहीं कर सकता, पर ऐसे अवसर पर सकुटुम्ब आप वर्धा चले आयें, मेरे घर रहें। जो दाल-रोटी मैं खाता हूँ, आप भी खायें।" उनका यह उदारतापूर्ण और आत्मीयतापूर्ण प्रस्ताव मैं स्वीकार तो न कर सका, पर बड़जातेजी की उदारता तथा आत्मीयता की छाप मेरे हृदय पर गहरी लग गयी।

सन् '२६ में मैं बंबई पहुँच गया। किसी तरह जीविकासे भी भयंकर मेरा सामाजिक आन्दोलन व्यापक और प्रचंड हो गया। संकट में तब एक भी आदमी नहीं दिखाई देता था, अब फिर पहलेसे भी अधिक संकट दिखाई देने लगे। उस सम फिर बड़जातेजी मिले। उस समय खबर उड़ गयी थी कि इनका दिवाला निकल गया है। पर बात झूठी थी। निःसन्देह इनका आर्थिक संकट इतना जबरदस्त था कि कोई भी दूसरा आदमी ऐसी परिस्थिति में दिवाला ही निकालता। पर इन्होंने ऐसा नहीं किया। अपनी जायदाद बेची। सेठपन छोड़कर मुनीमी की नौकरी की, पर सबका पाई-पाई ऋण चुकाया। उदारता सरल है, पर ऐसी ईमानदारी लाखों मे कोई एकाध ही दिखाता है। चिरंजीलालजी उन्हीं एकाध में गिने जानेवाले आदमी थे। 'आदमी' शब्द का मै समझ-बूझकर उपयोग कर रहा हूँ। क्योंकि उदारता, दान आदि के बल पर फरिश्तों में गिने जानेवालों की अर्थंकरी ईमानदारी में आदमी बनना कठिन है।

मानता हूँ हो फरिश्ते शेखजी।
आदमी होना मगर दुश्वार है॥

सो ऐसे ही दुश्वार आदमी चिरंजीलालजी हैं। और जब बंबई में ये मुझे मिले, तब मैंने इन्हें ऐसा ही दुश्वार आदमी समझा।

इसके बाद बड़जातेजी से थोड़ा-थोड़ा संपर्क आता रहा। पर जब मैंने सन् '३४ में सत्यसमाज की स्थापना की और जरूरत मालूम हुई कि अब कहीं आश्रम बनाकर रहा जाय और इसके लिए मैं चाहता था कि कहीं योग्य स्थान मिल जाय, जहाँ मैं आश्रम बना लूँ। उस समय इधर-उधर कुछ सत्यसमाजी भी दिखाई देने लगे थे, पर किसीकी हिम्मत न हुई कि अपने यहाँ सत्याश्रम बनाने के लिए मुझे निमंत्रित कर लें। हालाँकि सत्याश्रम के निर्माण में अधिक-तर मैं अपनी ही सम्पत्ति लगानेवाला था। उस समय भी ये ही बड़जातेजी आगे आये और स्व० जमनालालजी बजाज से कहकर मेरा सम्बन्ध स्थापित कराया और मुझे वर्धा बुलवाया।

आने को तो वर्धा आ गया, आश्रम भी बना लिया। पर कुछ वर्षों के अनु-भव के बाद मुझे महसूस होने लगा कि स्थान का चुनाव अच्छा नहीं हुआ। लगा कि मैं जंगल में आ गया हूँ। ऐसी निराशाजनक परिस्थिति में एक चिरंजी-लालजी ही थे, जिनका मुझे सहारा रहा। पिछले तीन-चार वर्ष से तो और सहयोगी भी दिखाई देने लगे हैं, पर उसके पहले बीस वर्ष तक बड़जातेजी का ही सहयोग मुझे रहा है। बड़जातेजी में जो यह सहज गुण है कि वे अपनी बात को पूरी तरह निभाते हैं, उसके अनुसार उन्होंने बारबार अपना वचन निभाया। मेरे साथ उनका मतभेद भी काफी हुआ, फिर भी उन्होंने कभी सहयोग से हाथ नहीं खींचा। कहने को तो वे मेरे पास इस निमित्त से आते थे कि उन्हें मेरे पास बैठने से शांति मिलती थी, ज्ञान मिलता था। पर असली बात तो यह थी कि मेरे साथ सहयोगी वृत्ति बताने के लिए और अमुक अंश में मेरा अकेलापन दूर करने के लिए ही मेरे पास आया करते थे।

वास्तव में चिरंजीलालजी सबके काम आते हैं और यह उनका स्वभाव है। वे हरएक की जिम्मेवारी उठा लेते हैं और उसे निभाते हैं। बुरा वे किसीका नहीं करते। एक तरह से वे अजातशत्रु हैं। अजातशत्रु इस अर्थ में नहीं कि उन्हें कोई शत्रु नहीं मानता। ऐसा कोई जनसेवक आज तक पैदा ही नहीं हुआ, जिसे कोई शत्रु न मानता हो। राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, मुहम्मद, ईसा से लगाकर कल के मार्क्स और गांधी तक को शत्रु माननेवाले रहे हैं। इसलिए अजातशत्रु

का यही अर्थ है कि जो मनुष्य किसीके साथ शत्रुता नहीं करता, अन्याय नहीं करता। इस अर्थ में चिरंजीलालजी सचमुच अजातशत्रु हैं।

उनकी कर्मण्यता भी असाधारण है। उनके फूले हुए शरीर को देखकर और हर समय वजन घटाने की चिन्ता में पड़ा जानकर कोई यह कल्पना नहीं कर सकता कि यह आदमी इतनी दौड़-धूप कर सकता होगा। भीड़ से भरे हुए तीसरे दर्जे में हर माह वे जितने हजार मील की यात्रा करते हैं, यह उन्हीकी असाधारण सहनशीलता का परिणाम है। मुझसे जब कोई पूछता है कि चिरंजीलालजी कहाँ रहते हैं, तब मैं विनोद में कह दिया करता हूँ कि वे तो रेल के डब्बे में रहते हैं। सचमुच उनका उत्साह, सहिष्णुता तथा जिम्मेवारी निभाने की वृत्ति असाधारण है।

यद्यपि इतिहास में ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जब बिना पढ़े-लिखे लोगों ने बड़े-बड़े काम किये, अमर नाम कमाया। मुहम्मद, अकबर, शिवाजी आदि इसके उदाहरण है। परन्तु इतिहास के ऐसे अपवादात्मक उदाहरणों को छोड ही देना चाहिए, खासकर उस जमाने में, जो आम तौर पर पढ़ने-लिखने का नहीं था, किन्तु श्रुति-स्मृति का अर्थात् सुनने और स्मरण रखने का युग था, अपढ़ता बहुत बड़ी त्रुटि नहीं थी। पर आज के जमाने में प्रायमरी भी पास न करनेवाला व्यक्ति और आज भी भाषा की दृष्टि से शुद्ध पत्र न लिखनेवाला व्यक्ति इतनी कम्पनियों का डायरेक्टर हो सकता है, समाज का नेता हो सकता है, और इतना कार्यकुशल हो सकता है कि जिसे राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसादजी और जमनालालजी बजाज से लेकर हजारों-लाखों को जिसकी जरूरत पड़ सकती है। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है।

मीठे से मीठे आम में भी गुठली होती है। गुठली मीठी नहीं होती, पर क्या गुठली के कारण आम का मूल्य कम हो जाता है ? बहुत-से-बहुत इतना ही देखा जा सकता है कि उसकी गुठली इतनी बडी तो नहीं है कि रस की अधिकाश जगह वही घेर गयी हो। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि सारी सृष्टि ही गुण-दोषमय है। सो चिरंजीलालजी भी पूरे गुणों के पुतले नहीं हैं। दोष तो गुण की छाया-रूप होते हैं। चिरंजीलालजी की दोषरूप गुठली छोटी, बहुत छोटी है।

सत्याश्रम, वर्धा
९-९-'६०

निष्कलंक मनुष्य

[श्री रघुवीरशरण दिवाकर, रामपुर]

किसी व्यक्ति की प्रशंसा करने मे मैं स्वभाव से कुछ कंजूस हूँ और मेरा ऐसा खयाल है कि कभी-कभी प्रशंसा में अव्यक्त रूप से चाटुकारिता आ जाती है और उससे प्रशंसा करनेवाला भ्रष्ट होता है। इस सतर्कता के कारण ही किसीकी प्रशंसा करते समय मैं संकोच में पड जाया करता हूँ और प्रशंसा छोड़कर अपनी वृत्तियों का निरीक्षण करने बैठ जाता हूँ। पर मेरे जीवन में दो-तीन ऐसे व्यक्तियों ने प्रवेश किया है, जिनकी प्रशंसा या सराहना करने में मुझे ऐसा कोई संकोच नहीं होता और कंजूसी छोडकर मैं बडा-से-बड़ा दानवीर बनने के लिए लालायित हो उठता हूँ और वह केवल इस कारण कि सचमुच मैंने उन व्यक्तियों के जीवन का काफी निकट से अध्ययन किया है और कदम-कदम पर मैं उनसे प्रभावित हुआ हूँ। मैंने उनके जीवन में एक ऐसा सौन्दर्य देखा है, जिसकी छवि मेरे हृदयपटल पर अंकित होकर रह गयी है। श्री चिरंजी-लालजी बड़जाते उन्हींमें से एक हैं।

आज से लगभग २५ वर्ष पहले मेरठ में, जब मैं बी० ए० (फाइनल) का विद्यार्थी था, सर्वप्रथम मुझे श्री चीरंजीलालजी के दर्शन हुए। उस समय क्या पता था कि ४-५ वर्ष बाद ही मेरा उनका निकट का नाता हो जायगा। वर्धा मे कुछ वर्ष रहने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस कारण तथा उनके सुपुत्र श्री प्रतापचन्द्र बडजाते मेरे छोटे साढ़ू भाई हैं, इस कारण मेरा उनसे निकट सम्पर्क रहा है और बहुत पास से मुझे उनके अध्ययन का अवसर मिला है। कहावत है कि फूल दूर से अच्छा दिखाई देता है, पास आने पर काँटे चुभते हैं, पर श्री चिरंजीलालजी के मामले में यह कहावत सही साबित नहीं हुई; क्योंकि जितना ही निकट से मैंने उन्हें देखा, उतना ही मैंने उन्हें पसन्द किया और उनकी ओर आकर्षित हुआ।

श्री चिरंजीलालजी जब भी मेरी स्मृति में आते हैं, तब मुझे काठ की उस नौका की याद आती है, जो अन्य व्यक्तियों को नदी से पार उतार देती है, लेकिन स्वयं पानी में ही रहती है। बड़े-बड़े नेता जो आज ऊँचे पदों पर आसीन है, श्री चिरञ्जीलालजी से लाभान्वित हुए हैं। सैकडों विद्यार्थियों को उनसे सहायता मिली है, कितने ही आदर्श विवाह सम्बन्ध उनके द्वारा सम्पन्न हुए हैं और कितने ही परिवार उन्होंने बरबादी से बचाये हैं। जो भी उनके सम्पर्क में किसी आशा से आया है, वह उनसे कुछ पाकर लौटा है; यहाँ तक कि अपने विरोधियों एवं शत्रुओं तक को अवसर पडने पर उन्होंने सहायता दी है। ऐसा बहुधा हुआ है कि विश्वासघात का बदला उन्होंने उपकार के द्वारा दिया है। गलतियों व अपराधों को क्षमा करना तो उनका सहज स्वभाव है। उनका हृदय उदारता से ओतप्रोत है। दो शब्दो में यह कहा जा सकता है कि श्री चिरञ्जीलालजी सच्चे अर्थों में एक इन्सान हैं और इन्सानियत निष्कलंक है।

श्री चिरञ्जीलालजी स्वभाव से बहुत भोले हैं, पर उनकी दृष्टि बहुत पैनी है। व्यक्ति को परखने व समझने मे वे कुशाग्र-बुद्धि हैं। अक्सर उनके भोलेपन को देखकर लोगों ने उनको धोखा देना चाहा है, अथवा उनकी उदारता से नाजायज फायदा उठाने की कोशिश की है, पर ऐसा कम ही हुआ है कि उनकी अजानकारी में उन्हें धोखा मिला हो। जानबूझकर तो धोखा खाने के वे अभ्यस्त हैं और यह उनके व्यक्तित्व की एक ऐसी महत्ता है, जिसे देखकर मैं मोहित हो-हो गया हूँ। उनका उसूल है "नेकी कर कुएँ मे डाल"। वे नेकी करते हैं सिर्फ नेकी के ही लिए। अहंभाव वहाँ नैसर्गिक रूप में हो भी तो वह नगण्य है और बिलकुल स्वाभाविक मात्रा तक है।

श्री चिरञ्जीलालजी बड़े स्पष्टवक्ता हैं और खरी बात कहना उनका स्वभाव है। एक बार की बात है कि एक युवक को अपनी पुत्री के विवाह-सम्बन्ध के सिलसिले में बातचीत के लिए बुलाया। मैं उस समय मौजूद था। जब उन्होंने उस युवक से बातचीत की, तब मैं यह देखकर दंग रह गया कि उन्होंने अपने पक्ष के खिलाफ जितनी भी बातें थीं सब स्पष्ट रूप से सामने रख दीं, जब कि बड़े-बड़े आदर्शवादी व्यक्ति भी ऐसे अवसरों पर अतिशयोक्ति से काम लेते देखे

जाते हैं। कभी बेजा तौर पर अपनी संतान की या अपने सम्बन्धियों की प्रशंसा आप नहीं करते हैं, बल्कि प्रखर आलोचना से भी नहीं चूकते हैं।

श्री चिरंजीलालजी की भावनाएँ बड़ी कोमल हैं और वे बड़े ही संवेदन-शील हैं। कभी किसीसे कठोर बात कह देते हैं तो बाद में पछताते हैं। जब भी कोई भूल आपसे हो जाती है, तब बडी वेदना का अनुभव करते हैं और प्रायश्चित्त करने को तत्पर रहते हैं।

श्री चिरंजीलालजी बड़े विनोदी भी हैं और कभी-कभी बडा ही गूढ़ व्यंग करते हैं। एक बार एक पंडित महोदय से आपका वार्तालाप हो रहा था। मैं मौजूद था। पंडितजी क्लिष्ट भाषा में पांडित्यभरी बातें कर रहे थे और श्री चिरंजीलालजी एकाग्र-चित्त उन्हे सुन रहे थे, मानो वे उस बातचीत में पूरी रुचि ले रहे हैं। जब पंडित महोदय चले गये, तो बोले"...रघुवीरशरणजी, देखा आपने, कितना बड़ा विद्वान् था, इतनी बातें कहीं और एक भी मेरी समझ मे नहीं आयी !" विद्वान की यह अजीब परिभाषा सुनकर और उसमें छिपा व्यंग समझकर मैं अपनी हँसी न रोक सका। इसी तरह आपकी विनोद-प्रियता की सैकडों घटनाएँ हैं।

श्री चिरंजीलालजी इतने रोचक व दिलचस्प हैं कि जब कभी आपका साथ हो जाता है, तब साथ छोड़ने को दिल नहीं चाहता। बड़े बड़े सुन्दर संस्मरण आप सुनाते हैं तथा आपके हर कार्य का तरीका बडा ही दिलचस्प होता है। विनम्र इतने हैं कि अपने से छोटों के भी चरण छूना उनका स्वभाव हो गया है।

श्री चिरंजीलालजी पुराने समाज-सुधारक हैं और उन्होंने इस नाते काफी काम किया है और काफी विरोध भी सहा है। आप सर्वधर्म समभावी हैं, चारों धामो की यात्रा भी कर चुके हैं। लेकिन जैनत्व से आपको विशेष मोह है। मेरे नाम के आगे आपको 'जैन' शब्द का अभाव अखरता है और बहुधा आप मुझे टोक दिया करते हैं।

आप गांधी-वादी भी हैं। आचार्य विनोबा भावे से आपको अनुराग है। सत्य-समाज के प्रणेता श्री सत्यभक्त के विचारों से सहमत न होकर भी आप

बराकर उन्हें सहयोग देते हैं। गरज यह कि आप एक सरल और श्रद्धालु व्यक्ति हैं और हर किसीकी सहायता करना आपका स्वभाव है।

श्री चिरंजीलालजी इतना अधिक सफर करते हैं कि मैं उन्हें 'रेल-कायक जीव' कहा करता हूँ। बहुत थोड़े सामान के साथ लगातार लम्बे सफर करना आपका स्वभाव बन गया है। अक्सर अपने किसी स्नेही या सम्बन्धी व्यक्ति से मिलने के लिए अपने सफर के दौरान कई-कई सौ मील का अतिरिक्त सफर वे करते हैं, लेकिन उन मित्र या सम्बन्धी के यहाँ बहुत थोड़े समय आप ठहरते हैं और कभी कभी मिलने के साथ ही विदा भी लेने लगते है। अपने मित्रों, सम्बन्धियों एवं स्नेही-जनों को निभाना वे खूब जानते हैं। उनकी समस्याओं को हल करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते है और शब्दों से ही नहीं, सक्रिय रूप से उनके काम आने के लिए तत्पर रहते हैं। इस तरह उनका परिवार बहुत विशाल है और देश में चारों तरफ बिखरे हुए हजारों व्यक्ति इनके महान्-परिवार के सदस्य हैं।

मै अपने साढू भाई श्री प्रतापचन्दजी से प्रायः कहा करता हूँ कि उनके जैसे पिता को पाकर वे इतने भाग्यशाली हैं कि उनसे मुझे ईर्ष्या तक होने लगती है।

श्री चिरंजीलालजी का जीवन तरह-तरह के अनुभवों से भरा पडा है और उन अनुभवों में कितने ही अनुभव बड़े विलक्षण हैं और प्रेरक भी कम नहीं हैं। बहुत दिनों से मेरी इच्छा है कि मैं उनके जीवन की कहानी उन्हींकी जबानी सुनकर लिपि-बद्ध करूँ। मुझे जरा भी संदेह नहीं है कि उनके अनुभवों की कहानी उपन्यास से अधिक रोचक और धर्मशास्त्र से अधिक प्रेरणादायक होगी।

अमोलिक रत्न

[सौ० मदनकुंवर पारख, चांदा]

आज प्रकाशित हर कोना, क्यों इतउत लाली छाई है।
ऊषा की किरणें चंचल होकर, किसे चूमने आयी हैं॥
हर क्यारी में फूल खिला क्यों, फल से झुकी हुई डाली।
अंबर में खग क्यों चहक रहे, पेडों पर कोयल काली॥
कलियाँ गुंथकर हार बनीं, क्यों गुच्छे आज सजाये हैं।
नहीं आज है दीपावली, फिर क्यों ये दीप लगाये हैं॥ १॥

जो देश के सेवक होते है, जो रक्षक होते हैं जन के।
पर-हित का ही सोच करे जो, निर्मल होते हैं मन के॥
जो हर कॉटे से प्रेम करे, कॉटों मे फूल खिलाते हैं।
रक्त सींचकर बंजर में जो, सुंदर बाग लगाते हैं॥
मन को, सूखी सरिता में, जो प्रेम की धार बहाते हैं।
मानवता को उस तट पर, मानव के साथ मिलाते हैं॥ २॥

संदेश प्रभू का लेकर के जो, ऐसा मानव आया है।
धन्य हुआ जीवन इनका, वरदान प्रभू से पाया है॥
धन्य हुई जननी जिसने, अपना दूध पिलाया है।
धन्य जनक हैं इनके जिसने, ऐसा लाल खिलाया है॥
धन्य हुई वह नारी जिसने, इनसे भाग्य सजाया है।
धन्य भाग्य है हम सबके जो, रत्न अमोलिक पाया है॥ ३॥

इसी वीर की जन्मतिथि पर, जन गण मन मुसकाये हैं।
मानव तो क्या, पशु पक्षी भी, नया संदेशा लाये हैं॥
युग-युग के ये साधक हैं, बड़जाते वंश दिपाया है।
लाल चिरंजी० वीर आज, पैंसठवाँ दीप जगाया है॥
जैनधर्म के भूषण हैं, जिनमत में प्रीत समाई है।
मत-मत में जो भेद पड़ा था, वही दरार मिटायी है॥ ४॥

प्रभो ! कई युग अर्पण करदें, हर पद पर दीप जगाने को।
तनमन से ही स्वस्थ सुखी, हर दीप में ज्योति जगाने को॥
पद-पद पर मिले सफलता, ज्योत में ज्योत मिलाने को।
फिर घड़ियाँ ये प्राप्त मुझे हों, मंगल गीत सुनाने को॥ ५॥

अनुभव के धनी

[श्री रामेश्वरदयाल दुबे, वर्धा]

श्री चिरंजीलालजी धन से अधिक अनुभव के धनी है। जीवन को और जगत को उन्होंने अच्छी तरह समझा है। इस ज्ञान-राशि को देने मे श्री बड़-जातेजी अपनी विनम्रता के कारण कंजूसी दिखाते है। यह अब हम सबका कर्तव्य है कि येन केन प्रकारेण उनसे हम उनके अनुभव की गठरी छीन लें। ऐसा होने पर भी वे प्रसन्न ही होंगे।

यह हमारा सबका स्वार्थ है कि चिरंजीलालजी चिरजीवी बनें। उनका सम्मान सद्‌गुणों का सम्मान है, जिसे करना हमारा परम कर्तव्य है।

वात्सल्य एवं विनम्रता की मूर्ति

[श्री अर्जुनलाल साहु, वर्धा]

आदरणीय बडजातेजी के प्रत्यक्ष संपर्क मे आये मुझे बहुत अधिक समय नहीं हुआ है। केवल छह वर्षों से ही मैं उनके प्रेम की छत्रछाया मे आया हूँ। लेकिन इतने कम समय मे ही मैं आज यह अनुभव करने लगा हूँ कि उनका हमारा पुराना संबंध है—मैं उनका हूँ और वे हमारे हैं।

एक साथ माँ की ममता तथा पिता की व्यावहारिक सीख यदि किसी एक व्यक्ति से मैंने पायी है, तो वह आदरणीय चिरंजीलालजी से ही। मैं समझता हूँ कि मेरे जैसे इस प्रकार के स्वानुभवी व्यक्तियों का एक विशाल परिवार सारे भारत में विद्यमान है जो कि बड़जातेजी का ममतामय प्रेम, वात्सल्य एवं व्यावहारिक कुशलता की सीख पाता आ रहा है और अपने जीवन की कठिनाइयाँ सुलझाता आ रहा है। यही उनकी महानता है। यही उनके जीवन का साफल्य है और यही वह गुणज्ञता है जिसे हमें उनके जीवन से लेकर अपने जीवन में उतारना है।

कर्मठ नेता

[श्री भगतराम जैन, दिल्ली]

सेठ श्री चिरंजीलालजी बड़जाते एक कर्मठ नेता हैं। इनको समाज-सेवा की बडी लगन रहती है और हर समय हंसी में व्यतीत होता है। इन्होने रूढ़ियों को स्वयं तोडकर समाज को प्रेरणा दी, जिसके कारण रूढ़िवादियों द्वारा इनको अनेक आपत्तियाँ दी गयीं, परन्तु इन सबको इन्होंने सहर्ष शांतचित्त और गम्भीरता पूर्वक सहन किया। इनका रहन-सहन साधारण है कि अपरिचित व्यक्ति भी उनके गुणों को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। जो स्थान भारत-जैन-महा-मण्डल आज जैन समाज में पाये हुए है, उसका सम्पूर्ण श्रेय भी इन्हींको है। भारत-जैन-महामण्डल के जीवन में ऐसे भी संकट आये कि यदि यह इसे अपने वक्षस्थल से न लगाते तो सम्भव है कि मण्डल समाप्त जो जाता।

अवसरवादी महानुभावों व समाज के वह नेता, जिनका कार्य केवल झूठ और फरेब बनाये रखना है, उनके सन्मुख भी यह स्पष्ट हृदय से आते हैं। इन्हें समाज में अच्छे कार्यकर्ताओं की बड़ी तलाश रहती है। यह देश-सेवा के समय में कई बार जेल भी गये हैं। इनके विषय में अधिक लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है।

अभिनन्दनीय

(श्री मोहनलाल भट्ट, वर्धा)

चिरंजीलालजी से वैसे परिचय तो बहुत दिनों से था—लेकिन इधर ८-६ वर्षों मे विशेष परिचय हुआ। जब-जब उन्हें देखता हूँ तो लगता है, कर्मठता और सरलता जैसे उनके रोम-रोम में व्यापी हुई है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के वे प्रारम्भ से ही हितचिन्तक और मार्गदर्शक रहे हैं। उनके मन में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के प्रति प्रेम है और जब कभी भी कोई मेहमान उनके यहाँ आते हैं, तो वे बड़ी श्रद्धा से राष्ट्रभाषा प्रचार समिति दिखाने भी ले आते हैं।

आज इस वृद्धावस्था में भी वे जो इतनी लगनशीलता और कर्मठता का परिचय दे रहे हैं वह सचमुच अभिनन्दनीय है।

प्रकाश दीप

(श्री फकीरचंद जैन, भुसावल)

थोड़े में कहें तो भाईजी का जीवन-क्रम तेल के ऐसे दीपक के समान है, जो तिल-तिल कर जलता है और शक्ति भर प्रकाश देने का प्रयत्न करता है। समाज के लिए इनकी सेवा भी कुछ इसी प्रकार की है। जीवन में अनेक झंझावात और उथल-पुथल से ये गुजरे, पर अमीरी रही हो या गरीबी, सबकी पीडा को इन्होंने अपनी समझा। आत्मीयता तो इतनी अद्‌भुत है कि विरोधी को भी क्या आवश्यकता है, या उसके यहाँ कोई कार्य प्रयोजन है, तो चिरंजीलालजी बिना संकोच वहाँ पहुँच जाते हैं। मालूम होता है, इन्हें सेवा से विशेष लगाव है। निरंतर कार्यरत रहना इनका सहज स्वभाव है। इस उम्र में भी जहाँ-तहाँ पहुँच जाना, शरीर साथ दे या न दे–जहाँ जाना है वहाँ जाना ही पड़ेगा। नजदीक और दूर-दूर के भ्रमण और यह सब इसलिए कि समाज एक सूत्र में बंधे, परस्पर अधिक-से-अधिक स्नेह का निर्माण हो। इस उत्साह को देखकर युवकों को भी कभी-कभी शरमिंदा हो जाना पडता है।

आज भारत-जैन-महामण्डल का जो प्रत्यक्ष स्वरूप दिखाई दे रहा है, उस कलेवर में निश्चय आत्मा "चिरंजीलालजी" की है। आत्मा के बिना देह का अस्तित्व ही नहीं। भारत जैन महामण्डल के कार्यकर्त्ताओं में प्राण फूंकने वाले, अपनी मूक निष्ठा से शक्ति का संचार करनेवाले इन साधक को हममें से कौन नहीं जानता?

भाईजी हमारे आदर, श्रद्धा, और स्नेह के कितने उपयुक्त पात्र हैं, यह उनके जीवन की प्रत्येक झाँकी व प्रत्येक घटना से प्रकट है। निरभिमानता और नम्रता की तो कोई हद ही नहीं। कोई आयु में छोटा हो या बड़ा, भाईजी नत-मस्तक होने को तैयार। जब धर्मराज युद्धिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था तो प्रत्येक ने अपने पद और प्रतिष्ठा के अनुसार काम चुन लिया। भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी स्वेच्छा से यह काम पसन्द किया कि यज्ञ में जो अतिथि आवेंगे उनकी चरणपूजा करेंगे। इस नम्रता में भी कितनी महानता के दर्शन होते हैं!

दुर्लभ आत्मीयता

[श्री यशपाल जैन, दिल्ली]

श्रद्धेय बड़जातेजी को मैं उन व्यक्तियों में से मानता हूँ जिनका जीवन, कार्य-क्षमता, परिश्रमशीलता और स्फूर्ति किसी भी युवक के लिए प्रेरणादायी हो सकती है। उनका समूचा जीवन त्याग और श्रम का उज्ज्वल नमूना है।

केदार-बदरी की यात्रा में जो समय उनके साथ व्यतीत हुआ, उसकी याद मैं कभी नहीं भूल सकता। उन्हें मैंने बड़ा ही खरा मनुष्य पाया। हम लोग कभी कभी थक जाते थे और क्षुब्ध हो जाते थे, लेकिन भाईजी ने कभी थकान की शिकायत नहीं की और पूरी यात्रा में निरंतर हँसमुख बने रहे।

यात्रा के अन्तिम चरण का दृश्य मुझे आज भी याद आता है, जब कि उन्होंने अपने टट्टूवाले को विदा दी थी। टट्टूवाला उस यात्रा में कुछ दिन उनके साथ रहा था। और जब वह अलग हुआ, तो भाईजी की आँखें गीली थीं। इतनी आत्मीयता आज के युग में दुर्लभ है।

जैसा कि मैंने देखा

[श्री हीरासाव चवडे, वर्धा]

श्री चिरंजीलालजी बड़जाते की कर्तव्यनिष्ठा व सादगी से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ हूँ। वे भले ही उच्च कोटि के वक्ता न हों, प्रभावी लेखक न हों तथा बड़े नेता न हों, किन्तु वे व्यवहार-कुशल, परिश्रमी व मानव-हृदय को परखनेवाले ऐसे व्यक्ति हैं, जिनको मित्र बनाने में लोग गौरवान्वित होते हैं और जिनके पास बैठकर वार्तालाप करनेवाले कुछ सीखते है।

जो कुछ कहना होता है, उसे वे साफ-साफ कहते हैं। बात को घुमा-फिराकर कहने की उनकी आदत नहीं है। बात को बढ़ाचढ़ाकर भी वे नहीं कहते। एक बात का मुझपर गहरा प्रभाव पड़ा है। अपने को साधारण से भिन्न समझते मैंने उन्हें कभी नहीं देखा। कभी उन्होंने अपने में कोई विशिष्टता अनुभव नहीं की। इस सहज निरभिमानता को मैं अत्यन्त दुर्लभ और महान् गुण मानता हूँ। मेरे मत मे तो यही ज्ञानी का लक्षण है। जो अपने को महत्त्व नहीं देता, वही इस अवस्था में होता है कि शेष सबको महत्त्व दे सके।

ऐसे श्रमशील और सत्परिणामी पुरुष के संपर्क को मैं अपना अनुपम सद्भाग्य गिनता हूँ।

श्रद्धेय काकाजी

[श्री कुन्दनमल लुणावत, वर्धा]

मैं भला श्रद्धेय काकाजी के बारे में क्या लिखूँ, कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। बात यह है कि गत सोलह वर्षों से मैं उनके संपर्क में हूँ और भारत जैन महामंडल के सेक्रेटरी के नाते उनके साथ कार्य किया है। उनका अमित प्यार मुझे

प्राप्त हुआ है और साथ ही साथ उनके कार्य करने की पद्धति से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। आननफानन घंटों का काम वे मिनटों में करते हैं।

काकाजी में एक बड़ा गुण है। वे कभी अपने आपको प्रकट नहीं करना चाहते-कभी प्रकाश में नही आना चाहते। हाँ, यदि प्रकाश स्वयं ही उन तक जा पहुँचे तो बात दूसरी है। वे काम करना जानते हैं, पर चुपचाप। वे स्वाध्यायी हैं और विविध ग्रन्थों को खूब पढ़ा है।

वे सभी धर्मों, महात्माओं तथा विद्वानों का आदर करते हैं। उनकी वाणी में मिठास है, हृदय को जीतने की शक्ति है और दूसरों के दुःख मे शामिल होने की उनकी निर्मल वृत्ति है।

महामंडल के महारथी

[सौ० पारसरानी मेहता, भुसावल]

बीते आयु के पैंसठ वर्ष, दया औ प्रेम का संबल लेकर,
क्यो न मोद मनाएँ हम, इस शुभबेला के अवसर पर ?
पग-पग पर थी विपताएँ, फिर भी पथ पर बढ़े चले तुम।
अभिनन्दन ! हे मूक तपस्वी ! कैसे गौरव गायें हम !
संघर्षों से टकराकर कब उत्साह तुम्हारा क्षीण हुआ ?
जैसे जैसे हुए अग्रसर-नितनूतन शक्ति उन्मेष हुआ।
कर्मठता के अवगुण्ठन में, स्नेहपूरित मन पाकर।
बाँध लिया जन-जन के मन को, सेवा का पाठ पढ़ाकर॥
महामंडल के महारथी तुम ! धैर्य्य तुम्हारा शाश्वत है।
ओ ! मंडल के अथक-सेनानी, धन्य तुम्हारा जीवन है।
हृदय हमारा गद्गद् है, तुम्हारे निश्छल व्यवहारों से॥

मेरे साथी

[श्री गंगाबिसन बजाज, वर्धा]

श्री चिरंजीलालजी का मेरा सम्बन्ध १९१५ से, जब वे यहाँ गोद आये, तब से है। बच्छराज जमनालाल की दूकान के नाते व्यवहार में भी काफी काम पडा। वे हमेशा काम को तुरन्त निपटानेवाले और किसीके सुखदुःख में उनसे हो सका, सो हमेशा मदद करने की तत्परता बतलाते रहे।

वे सार्वजनिक कार्य करते हुए राजनीति में भी हमेशा भाग लेते रहे हैं और कई वर्ष तक कांग्रेस के पदाधिकारी भी रह चुके हैं। म्यु. सदस्य भी वे रहे हैं। जैन समाज की उन्होंने काफी सेवा की और अभी तक कर रहे हैं। अभी पाँच वर्षों से सब कार्यों से वे निवृत्त होकर सिर्फ भारत जैन महामंडल का काम कर रहे हैं। आप मारवाड़ी शिक्षा मंडल के मंत्री थे और अब भी सदस्य हैं। सामाजिक कार्यों में तथा विवाह कराने में वे बहुत दिलचस्पी लेते रहे हैं और कई विवाह भी उन्होंने कराये।

हम दोनों ने एक साथ काफी काम किया। उनमें काम करने की लगन है। इनका कारोबार—कर्ज की रकम वसूल न होने के कारण ठप हो गया था। ये लोगों के घर गये और जिनकी रकम धरोहर थी, वह सब दे दी। अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए सर्वस्व खोकर आन रखी।

नगर-गौरव

[श्री कपूरचन्द जैन विद्यार्थी, दमोह]

चिरजिओ !
श्री चिरंजीलाल बडजाते ! मुदित मन कामना लो।
नगर गौरव शरद शत अभिनंदनों की साधना लो ॥
तुम जिओ जीवन सभी परिवार पाये नित्य तुमसे।
भारती माँ अमर नैतिक मान पाये नित्य तुमसे ॥
युग जियो !

विनम्र—
विद्यार्थी वैद्य दमोह।
१०–९–६०

कर्मयोगी चिरंजीलालजी

[श्री शंभुनाथ पडोले, वर्धा]

पिछले तीस वर्षों से मुझे उनके चरणों में बैठकर काम करने का, सीखने का अवसर मिला है। यों तो मैं उनको पितातुल्य मानता हूँ और पिता का प्यार और स्नेह उनसे मुझे भर-भरकर मिला है। लेकिन उनको गुरु कहना ज्यादा सही होगा। मैं जब उनके संपर्क में आया था, तब बिल्कुल अनपढ़, मूढ़ और नया ही नया था। उनके स्पर्श से कोयला भी धुल गया है! चिरंजीलालजी ने इस तरह अनेक व्यक्तियों को उठाया है, चमकाया है और अपने से भी आगे बढ़ाया है। चिरंजीलालजी एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिनका संपर्क प्रारम्भ में या काम के समय में तो कभी-कभी तकलीफदेह भी लग जाता है, लेकिन समय बीत जाने पर महसूस होने लगता है कि वे जो कुछ कहते हैं, वह अनुभव की कसौटी पर कसा हुआ खरा सोना है।

मेरा यह सद्भाग्य है कि मुझे उनके सान्निध्य में पचीस-तीस वर्ष तक निरन्तर रहने का मौका मिला। सत्संगति की हमारे धर्म-ग्रन्थों में बड़ी महिमा गायी गयी है। जीवनसर्वस्व लुटाकर भी सत्संगति मिलती हो, तो नहीं छोड़ना चाहिए। लेकिन यहाँ तो मिला ही मिला है।

चिरंजीलालजी क्षमाशील हैं! लेकिन उनकी क्षमावृत्ति असत्य के सामने क्रोध और असहयोग में बदल जाती है। वे लाख रुपयों पर भी पानी फेर सकते हैं, अगर उनके सामने सचाई से घटना रख दी जाय। ऐसे अनेक प्रसंगों को मैं जानता हूँ, जब मिनटभर पहले की भयंकर उग्रता परम शांति में बदल गयी है। एक समय की बात है कि एक रोकड़िया ने कुछ गड़बड़ कर दी। चिरंजीलालजी अक्सर बाहर रहते हैं। मालूम हुआ तो रोकड़िया को बुलाया। उसके पिता को भी बुलाया। वह महावीर जयन्ती का दिन था। उन्होंने कहा, देखो ठीक-ठीक बता दो, क्या बात है। उसने सब बातें बता दीं। वह डर भी रहा था कि अब क्या होगा। नौकरी भी जायगी, इज्जत भी जायगी। फिर भी उसने बता दिया। महावीर-जयन्ती का दिन! अहिंसा की साधना का पर्व था। उन्होंने कहा ठीक है। न उसे नौकरी से हटाया, न उससे एक शब्द ही कहा।

सन् १९४७ की बात है। साम्प्रदायिकता की आग आसमान को छू रही थी। लाहौर में जमनालालजी बजाज का एक लोहे का कारखाना था! जब कि लाखों लोग घरबार छोड़-छोड़कर भाग रहे थे, तब इन्होंने कमलनयनजी को लिखा कि मैं लाहौर जाने को तैयार हूँ। यह हिम्मत और यह निर्भयता जवानों को भी शर्मानेवाली है।

चिरंजीलालजी हम सबके काकाजी हैं। वे समाज-सुधारक है, गो-भक्त हैं, पर सबसे अधिक वे परदुःखकातर हैं। किसीकी शादी नहीं होती है, तो वर-वधू की तलाश करेंगे। किसी न किसी तरह उसको विवाह के बंधन में बांध देते हैं। फिर यह नहीं देखते कि वह पानी भरनेवाला चाकर है या हिसाब करनेवाला मुनीम। उनके सामने मानवता और आवश्यकता सर्वोपरि है। उनको विनोद में हम लोग शादीलालजी भी कहते हैं।

मै निःसंकोच कह सकता हूँ कि पैसे का मोह उनको जरा भी नहीं है। उन्होंने अपने राजसी ठाट-बाट के दिन भी देखे है और साधारण दिन भी। लेकिन पैसा उनके लिए वह साधन रहा है जिसके द्वारा मानवता की भलाई हो सके, स्नेह सम्बन्धों का विकास हो सके। जरा-सा भी किसीके साथ परिचय हो जाय तो फिर उसकी मदद के लिए मानो इनका हृदय व्याकुल और विह्वल रहता है। इनका हृदय मातृत्व की भावना से व्याप्त है। कभी-कभी तो किसीका दुख देखकर बच्चो की तरह रो पड़ते है।

मैंने ऊपर उनको गुरु माना है, पर जहाँ तक निजी और हार्दिक विकास का सम्बन्ध है, उन्होंने मातृत्व का परिचय दिया है। पिता और गुरु में यह साहस नहीं कि वह अपराधों को माफ कर दें। यह काम माँ का पवित्र हृदय ही कर सकता है। आप सिर काटकर आइये और चिरञ्जीलालजी की गोद में लेट जाइये। वे फाँसी पर चढ़ जायंगे, पर क्या मजाल कि गोदी में बैठे शरीर को कोई आँख तो दिखा दे।

मैं तो फिर उनका बालक ही ठहरा। बालक क्या अपनी माँ की डायरी या हिसाब रखता है?

अद्भुत सहनशीलता

[प्रो० प्रवीणचंद्र जैन, बीकानेर]

चिरंजीलालजी का सौम्य स्वभाव, और समाज-सेवा का सरलतापूर्ण भाव मेरे लिए बहुत ही प्रेरणाप्रद हुए हैं। सभी प्रकार के शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक और सामाजिक कष्टों के बीच आपका सन्तुलन बना रहा है। एक अद्भुत सहनशीलता के द्वारा आप भविष्य के गर्भ को वर्तमान में से पहचानकर मानो निर्द्वन्द भाव से आगे बढ़े हैं और इस तरह कष्टों के झंझट को पार करते आये हैं। श्री जमनालालजी बजाज का निकटतम सम्पर्क आपको मिला। उनके परिवार के परम प्रतिष्ठित जन की तरह रहते हुए भी आपने कभी अपनी स्थिति का अनुचित लाभ नहीं उठाया। आप सामाजिक क्रांतियों के उत्साहशील समर्थक रहे हैं। इस दिशा में आज भी कर्मठ युवकों का सा उत्साह आपमें देखने को मिलता है।

भारत जैन महामंडल आपकी धार्मिक आकांक्षा एवं भावना की प्रतीक संस्था है। धर्म का स्वरूप कैसा हो, उसका विकास और विस्तार किस तरह किया जाय, इस क्षेत्र में क्या हेय और क्या उपादेय है, यह सभी मानो आपके द्वारा चलाई जानेवाली इस संस्था के विकास से प्रकट होता है। फिर भी एक बात यह है कि आप सदा पर्दे के पीछे रहे हैं। आपमे प्रसिद्धि की, कीर्ति की धुंधली सी भी इच्छा कहीं दृष्टिगोचर नहीं हुई है।

ऐसे महामना उपकारी बंधु का अभिनन्दन करके समाज अपनी रचना शक्ति को आगे बढ़ायेगा। कृतज्ञता का यह सामाजिक भाव ही तो मानव के सर्वतोमुखी कल्याण में सहायक होता है।

मैं चाहता हूँ कि बडजातेजी का चलाया हुआ कार्य उनके ही पथ-प्रदर्शन में आगे भी निरन्तर बढ़ता चले। आप चिरायु हों, आपका व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन, आनन्दमय होकर प्रसाद की पूर्ण अभिव्यक्ति करता रहे। यह प्रसाद लोक-मंगलकारी ज्ञान-भावना और कर्म के लिए प्रेरणा का अखण्ड स्रोत बना रहे।

उनके शतशः उपकार

[गोवर्धनदास जाजू, वर्धा]

हम लोग अमरावती जिले के भातकुली गाँव के रहनेवाले थे। संवत् १९८७ में परिस्थिति अनुकूल न होने से हमें वह स्थान छोड़ना पड़ा। हम वर्धा से १५ मील दूर आँजी (छोटी) नामक गाँव में आये। वहाँ छोटा-सा व्यापार शुरू किया।

दो-एक माह बाद वहाँ पू० चिरंजीलालजी का आगमन हुआ। वहाँ उनकी खेती थी, तथा लेन-देन आदि भी होता था। उनका आगमन सुनकर पिताजी उन्हें भोजन का निमंत्रण देने गये। पहले तो उन्होंने निमंत्रण स्वीकार नहीं किया, कहा कि यदि आप कभी वर्धा आओ तो हमारे यहाँ जरूर आना। यह स्वीकार हो तो मैं अवश्य भोजन करूँगा। वे भोजन करने आये। उन्होंने हमारा टूटा-फूटा मकान देखा। भोजन के बाद उन्होंने कहा, इस मकान के बजाय आप हमारे मकान में रहिये। उन्होंने हमारे लिए मकान खाली करवाया और हमें शाम को ही मकान में जाने को कह दिया। हम लोग उनके मकान में रहने के लिए चले गये।

उन्होंने पिताजी से पूछा कि आप लोग खेती करना जानते हैं या नहीं? पिताजी ने कहा, इस समय खेती करने की हमारी परिस्थिति नहीं है। उन्होंने मेरे बड़े भाई से कहा, 'खेती देखकर आओ, बाद में देखा जायगा।' खेती देखने के बाद यह तय हुआ कि हमें दो बैल-जोड़ी की खेती दी जाय। मेहनत करके और खर्चा जाकर जो बचेगा वह वर्धा भेज दिया जाय। खेती के लिए लगनेवाला सारा खर्च तंगी में होते हुए भी उन्होंने मंजूर किया। फसल के बाद निश्चय के अनुसार हमने आधे हिस्से का माल (अनाज, कपास आदि) वर्धा पहुँचा दिया। उन्होंने कहा, 'आप वहाँ व्यापार तो करते ही हैं, भाव लगाकर इस माल के पैसे भिजवा दिया करो।' दूसरे वर्ष से हमने वैसा ही किया।

भगवान की कृपा से और काकाजी की सहानुभूति, मदद तथा प्यार से हमारी परिस्थिति सुधर गयी। तब उन्होंने कहा कि अब थोड़ी खेती खरीद लो। हम व्यापार करना चाहते थे। खेती खरीदने की सुविधा नहीं थी। उन्होंने इस बात को सुना-अनसुना कर दिया और हमारे लिए एक खेत जो कोर्ट में नीलाम के तौरपर बिकाऊ था सो ले लिया। और कुछ रुपये अपने पास से दिये। उस खेती से हमें बहुत फसल हुई। बाद में उन्होंने एक खेत और लिया, और कहा कि आपके जँचे तो आप रखना, नहीं तो मेरे खाते रहेगा। लेकिन देना तो हमको ही था, सो हमने रख लिया।

थोड़े दिन बाद मेरे बड़े भाई के विवाह का मौका आया। उस समय पुराने हिसाब से खर्च ज्यादा होता था। रकम कुछ कम पड़ रही थी। भक्त की पुकार जैसे भगवान के पास, वैसे हमारी पुकार तो काकाजी के पास ही जाती। सारा हाल कह सुनाया। पहले तो कह गये कि सुविधा नहीं है, बाद में बहुत सोचने पर उन्होंने अपनी धर्मपत्नी यानी काकीजी के नाम चिट्ठी लिख दी कि गोवर्धन को जेवर दो। मैं जेवर लेकर रेहन रखकर आया और अपना कार्य पूरा किया। थोड़े दिन पश्चात् जेवर वापस लौटा दिये।

पूज्य प्रमिलादेवी बड़जाते (काकीजी) की आंजी में खेती थी। वह खेती हमने साझे में की थी। अन्त में उसमें नुकसान आया। साझे के हिसाब से आधा नुकसान हमसे लेना था, सो हमसे नहीं लिया। हमने बहुत आग्रह किया, पर नहीं लिया। पूरा नुकसान उन्होंने ही सहा। उनकी आदत ही है कि एक बार जबान से निकलने के बाद मानते ही नहीं। उस दिन से साझा बन्द कर दिया। साझे में एक बैलजोड़ी अच्छी थी। मेरा उसमें मोह था, सो मैंने काकाजी से कह दिया कि जोड़ी की कीमत २५ रु० ज्यादा देकर आप रख लीजिये या २५ रु० कम से मुझे दीजिये। इस पर वे बहुत नाराज हुए। मुझे कहा, तेरी ऐसी भावना कैसे हुई? कुछ दिन बाद वही जोड़ी मुझे अपने दिल से १५० रु० कम में जबरदस्ती दे दी। उस वक्त मैं बहुत शर्मिन्दा हुआ और मैंने उनसे माफी माँगी कि आइन्दा ऐसी गलती नहीं करूँगा।

मेरी तबियत अचानक बिगड़ गयी। तब मुझे यवतमाल रहकर इलाज करवाना था। तब काकाजी ने ही सलाह दी कि यवतमाल आओ। वहाँ

मुझे थोडा चाँदा मॅच वर्क्स का तथा डेअरी का तथा थोडा मुरझडी की खेती का काम सौंप दिया। सब खर्च उन्होंने ही उठाया। मुझे एक पैसा भी खर्च करने नहीं दिया। कुछ न कुछ मुझे दिया ही। वहाँ मैंने सरकी का धंधा कर लिया। उसमें मुझे नुकसान लग रहा था। मैंने काकाजी से कह दिया। उन्होने कहा, फौरन समेट ले, जो नुकसान लगता है उसे मेरे नामे लिखकर चुका दे। मुझे जॅचा नहीं, मैंने पैसे देने का आग्रह किया, तब जवाब मिला कि तुझे वहाँ नुकसान भरने को नही रखा था।

एक दिन मै वर्धा आया, तब बोले कि चल तुझे आज पूज्य सेठजी जमनालालजी के दर्शन कराता हूँ। मैंने कहा मुझे अकेले दर्शन नहीं करना है, दर्शन कराना ही है तो आजी में घर पर कराइये, जिससे घर पवित्र हो और सारा परिवार दर्शन कर सके। उन्होंने वैसा ही किया।

काकाजी खेती देखने हर बार आते-जाते रहते थे। एक दिन हम दोनों साथ में गये, तब वे बोले, 'गोवर्धन मेरे पास जितनी खेती है, उतनी ही तेरे पास हो, तब मुझे संतोष होगा।' और उन्होंने जबान से निकाली हुई बात पूरी कर दी। उनकी कृपा से हमारे पास काफी खेती हो गयी। बाद मे कहा, अब आपस का लेन-देन आदि व्यवहार बंद होना चाहिए। कारण संबंध मे फरक न आये। कुछ दिनो बाद बच्छराज खेतीज कंपनी की खेती बिकाऊ निकली, तब उन्होंने कहा कि अगर गॉव की खेती लेता होगा तो तू चाहेगा वैसी सहूलियत देता हूँ। मैंने कहा, काकाजी मैं कम्पनी की खेती नहीं लेना चाहता, कारण अपने संबंध घरेलू हैं। ये मेरे विचार गलत निकले। उन्होंने कहा इसमें शंका की कोई बात नहीं, मैं तो इसे (खेती को) नीलाम के तौर पर बेचूँगा और मुझे अधिकार भी है। फिर भी मुझे जॅचा नहीं। मैंने कहा काकाजी मुझे यह खेती नहीं चाहिए।

एक समय हम दोनों भाइयों में मन-मुटाव हो गया था। आपको खबर मिली तो फौरन आँजी आये। पहले तो मुझे डाँटा और कहा तुझे इस इस्टेट मे से एक पाई भी नहीं मिलेगी, यह सारी जायजाद बड़े भाई की है। मैंने मंजूर कर लिया और कहा मैं आज ही आपके सामने निकल जाता हूँ। तब उन्होंने मुझे समझाया और घर के सब लोगों का समाधान किया। मुझे साथ में वर्धा

ले आये और लक्ष्मीनारायण मन्दिर में सात दिन तक श्री सत्यभक्तजी से धर्म का पाठ सुनवाया और कहा तू आज से ही कमाना शुरू कर दे। तुझे मैं मदद करूँगा। जब भाई के बराबर इस्टेट हो जावेगी, तब समझ लेना बटवारा हो गया। उन्होंने मेरे सामने कई योजनाएँ रखीं। व्यापार, नौकरी, खेती, डेअरी आदि आदि। और कहा जो पसंद हो, वह काम कर, मैं तुझे मदद करूँगा। मेरा मोह नष्ट हो गया। मैंने उनसे क्षमा माँगी। तब मुझे आँजी जाने का हुक्म हुआ। मैं आँजी गया। बड़े भाई से क्षमा माँगी, सो भगवान की कृपा से आज तक हम दानो भाई प्रेम से, हिलमिलकर रहते हैं।

अभी ३-४ वर्ष पहले १९५५–५६ में मुझे भारी नुकसान लगा। कुछ कर्ज भी चुकाना था। तब मैं दो रोज दूकान पर नहीं गया। पता लगते ही घर आये। हिम्मत बंधाई और बड़े भाई को बुलाकर सब कर्ज भाई से चुकवाया और खेती के खर्च में पूरी मदद दी। तब से हमारे विषय में वे काफी चिन्तित रहते हैं। हर बार सुझाव देते हैं।

वे आज तक हमारे सुख मे सुख और दुख में दुख मानते आ रहे हैं। हमको पुत्र के समान ही समझते हैं। न्याय भी वैसा ही करते हैं और मुझे याद नहीं कि मैं किसी कार्य के लिए काकाजी के पास गया, और उन्होंने उसे पूरा नहीं किया। किसीकी नौकरी या मदद या लेन-देन का फैसला आदि आदि में कसर तो खाते ही रहे, परन्तु मुझे कभी विमुख नहीं भेजा। आपके उपकार के बारे में जितना लिखूँ उतना थोडा ही है। मैं बोझ से दब गया हूँ। बहुत-सी बातें तो मुझे याद भी नहीं हैं।

श्रद्धामय व्यक्तित्व

[श्री मोहन स्वामी , गाजियाबाद]

श्री बड़जातेजी निश्चय ही उन महान् विभूतियों में से हैं, जिन्होंने बिना स्वार्थ के अपने आपको देश-सेवा के कार्य में मिला दिया, घोल दिया। नाम चाहने की उन्हें कभी इच्छा नहीं हुई। जाति ने उन्हें बहिष्कृत किया, उसकी उन्होंने परवाह नहीं की। एक मात्र उन्होंने कर्तव्य को ही अपना धर्म समझा। वे जन्म से जैन हैं। परन्तु उनका धर्म है सार्वभौम धर्म। पूरे श्रद्धालु भगवद्भक्त हैं। मेरा उनका अपना अत्यन्त घनिष्ठ संबंध है। आज से १५ वर्ष पहले अचानक हम और वह प्रभुकृपा से पास पास लाकर खड़े कर दिये गये। बड़जातेजी को श्री अरविंद के दर्शन की तीव्र अभिलाषा हुई और उन्होंने आश्रम से अनुमति माँगी, परन्तु अनुमति प्राप्त न हो सकी। बड़जातेजी की दर्शन की तीव्र इच्छा थी, अतः उनके और मेरे एक मित्र ने मुझे लिखा। यह था बड़जातेजी से पहला दूर का बिना देखे ही परिचय। श्रीमाताजी ने मेरी प्रार्थना स्वीकार की और फिर हम पहली बार आश्रम में मिले और ऐसे मिले मानो हमारा उनका इस जन्म का ही नहीं, न जाने कब का परिचय है। इस १५ वर्ष में, वर्ष में सात-आठ बार आपस में मिलन होता है, कितना प्रेम भरा रहता है बड़जातेजी के मिलन में—आत्मीयता, सच्चापन तथा भावुकतापूर्ण। सदा ही मुझसे पांडीचेरी जाते और आते समय स्टेशन पर मिलने आते हैं तथा उस मिलन में कितना आनन्द का भाव भरा रहता है जिससे उत्साहित होकर वह भोजन, फल तथा सभी वस्तुएँ लेकर मिलने के लिए प्रतीक्षा करते रहते हैं। कभी कभी गाडी घण्टों लेट होती है। परन्तु आप स्टेशन पर बैठे प्रतीक्षा करते रहते हैं। कितना अपनापन भरा हुआ है आपके व्यवहार में। उनका स्वरूप ही ऊपर से नीचे तक श्रद्धा से परिपूर्ण है।

अभिनन्दन के प्रांगण में

शुभकामनाओं की पुष्प-वर्षा

दिनाङ्क : १२ सितम्बर १९६०

[श्री चिरंजीलालजी बडजाते का अभिनन्दन समारोह गाधी चौक वर्धा में हाईकोर्ट के भूतपूर्व न्यायपति श्री भवानी शंकरजी नियोगी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर वर्धा शहर का हर नागरिक अपने भीतर एक अद्भुत उल्लास और आनन्द का अनुभव कर रहा था। वर्धा की प्रायः समस्त सार्वजनिक और रचनात्मक संस्थाओ की ओर से चिरंजीलालजी का स्वागत किया गया। केवल वर्धा ही नहीं, सारे देश के विभिन्न प्रदेशो से अनेक कार्यकर्ता, मित्र तथा स्नेही-जन बडजातेजी को अपनी श्रद्धाजलि अर्पण करने के लिए पधारे थे और सबके सब अपनी झोली उनके उदार आशीर्वाद से भर लेना चाहते थे। सनातनी और क्रान्तिकारी, आस्तिक और नास्तिक, पंडित और मूढ़, धनी और रंक सबके सब भेदभाव भूलकर चिरंजीलालजी में समा रहे थे !

इस अवसर पर अनेक संदेश और शुभकामनाएँ प्राप्त हुई। उसी समय वर्धा के ॲडवोकेट श्री मनोहरपंत देशपाडे के करकमलो द्वारा यह पुस्तक भी भेंट की गयी। कुछ संदेश यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं। हमें खेद है कि सबके सब संदेशों को देना हमारे लिए सम्भव नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उनका महत्त्व नहीं है। उनका महत्त्व तो और भी ज्यादा है। जो लिखा गया है, वह तो व्यक्त है और व्यक्त सीमाबद्ध होता है, पर जो नहीं लिखा गया वह तो अव्यक्त है और अव्यक्त की शक्ति तो ब्रह्माडव्यापी होती है ! शब्दों से भावो की शक्ति अनन्तगुना होती है। —ज० जैन]

राष्ट्रसन्त आचार्य विनोबाजी ने लिखा :

१२ तारीख को आपके शरीर के ६५ साल पूरे हो रहे हैं। आप मुझसे एक ही दिन छोटे हैं। आपके साथ अब लगभग ४० साल का मेरा परिचय है। सेवामय जीवन की आपने कोशिश की है। ईश्वर-कृपा से आपके भावी जीवन में और उत्कट दर्शन सेवाभाव का मिलेगा, ऐसी आशा करता हूं। विनोबा का जय जगत्।

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसादजी :

राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली
नवम्बर १९, १९६०

प्रिय श्री चिरंजीलालजी,

आपके जन्मदिन के विषय में जानने को मिला। आपके साथ सदा ऐसा सम्बन्ध रहा है कि हमारी शुभकामनाएँ तो सदा ही आपके साथ हैं, ऐसा आपको मान ही लेना चाहिए। अभिनन्दन ग्रन्थ की प्रथा अब इतनी अधिक सामान्य और प्रचलित हो गयी है कि उसके शुभकामनाओं के संग्रह के निमित्त आदर करने को मैं विशेष महत्त्व नहीं देता। निजी रूप से आपके लिए वही भाव सदा है। आपका जन्मदिन समारोह तो हो ही चुका है। देर से ही सही, मैं अपनी शुभकामनाएँ भेजता हूँ और आपके स्वास्थ्य तथा दीर्घायु की कामना करता हूँ।

आपका
राजेन्द्रप्रसाद

साहू शान्तिप्रसादजी जैन, कलकत्ता :

प्रेरणा का स्रोत

श्री चिरंजीलाल बड़जाते ने अपने यशस्वी जीवन के ६५ वर्ष पूरे किये हैं और इस अवसर पर जनता की ओर से उनका जो अभिनन्दन किया जा रहा है, वह वास्तव में देश और जनता का अपना ही सम्मान है, क्योंकि श्री बड़जातेजी ने जब से समाजसेवा का व्रत लिया है, अपना सारा समय और सारी शक्ति दूसरों की सेवा के निमित्त ही अर्पित की है। मेरा और उनका जब भी निकट का सम्पर्क हुआ, मैंने पाया है कि उनका जीवन एक खुली कोठी है, और उनका व्यक्तित्व प्रेरणा का स्रोत है। मैंने उन्हें सभाओं का संचालन करते हुए भी देखा है। उनकी बड़ी भारी शक्ति है कि वह एक क्षण में सभा के सदस्यों से और जनता से तादात्म्य कर लेते हैं और फिर कठिन-से-कठिन मसले भी सहजता से सुलझ जाते है, क्योंकि उनके भाषण में और व्यक्तित्व में सिद्धान्त ही प्रमुख होते हैं। व्यक्तियों को उनका स्नेह ही मिलता है। शरीर श्रम और छोटे से छोटे स्तर के आदमियों की सेवा उनकी पूजा है, यही उनकी उपासना पद्धति है। मेरी कामना है कि बहुत-बहुत वर्षों तक हमें उनका सम्पर्क और प्रेरणा प्राप्त होती रहे।

श्रीमती जानकीदेवी बजाज (माताजी) :

विनोबा को आगे करके आनेवाले खुद हँसो और सबको हँसाओ।

श्री मा० स० गोलवलकर, सरसंघसंचालक, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ :

अधिकाधिक परिपक्व बुद्धि तथा आज तक की राष्ट्र-सेवा के अनुभव से तरुण पीढ़ियों का मार्गदर्शन करते रहने के लिए भगवान की कृपा से आपको उत्तम स्वास्थ्य, सर्व अनुकूलतायुक्त पूर्ण जीवन, "शतायुर्वैपुरुषः" इस वचन के अनुसार प्राप्त हो, एतदर्थं मैं उस दयाघन के चरणकमलों में हृदय से प्रार्थना करता हूँ।

श्री श्रेयांसप्रसादजी जैन, बंबई :

श्री चिरंजीलालजी अपने समय के उन कर्मठ वयस्क कार्यकर्ताओं में से हैं, जिन्होंने आवश्यकता पड़ने पर संघर्षों से जूझकर सदैव देश और समाज की अथक सेवा की है। मुझे उन पर गर्व है।

पूज्य केदारनाथजी :

आपने अपने जीवन का बहुत-सा भाग सेवा-कार्य में खर्च किया है, इसलिए मैं आपका अभिनन्दन करके आपको धन्यवाद देता हूँ। परमात्मा की कृपा से आपका जीवन सेवा-कार्य में ही व्यतीत होता रहे—और उससे आपकी और जनता की उन्नति होती रहे, यही प्रार्थना है। परमात्मा आपको स्वाधीनता सहित दीर्घायुष्य प्रदान करे, यही शुभेच्छा।

श्री श्रीमन्नारायण सदस्य, योजना कमीशन, नई दिल्ली :

श्री चिरंजीलालजी से पिछले कई वर्षों में मेरा काफी घनिष्ठ संबंध आया। उनकी सादगी, समाज-सेवा की गहरी लगन व सत्य-निष्ठा से मैं प्रभावित हुआ हूँ। मैं आशा करता हूँ कि ईश्वर उन्हें दीर्घायु करेंगे, ताकि वे देश व समाज की इसी प्रकार सेवा करते रहें।

श्री ब्रिजलाल बियाणी, अकोला :

आपका आज तक का जीवन कर्ममय रहा है, और भविष्य में भी वह कार्य-रत रहे और जिस किसी क्षेत्र में आप सेवा-कार्य करें उसमें आपको सफलता मिलती रहे। यही मेरी हार्दिक इच्छा है।

आपका जीवन खूब सुखी, संतुष्ट एवं सेवामय हो, यही हार्दिक अभिलाषा।

Dr. A. N. Upaddhey, D. Litt, Kolhapur :

His is a remarkable personality, sweet in manners, firm in decisions and practical in behaviour. He rarely loses an opportunity to help others and to serve any beneficial cause of society. I wish him a long, healthy and peaceful life.

श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, अहमदनगर :

आपके जरिये धर्म और समाज की सेवा होती रहे, यही इच्छा। आपका जीवन शुद्ध, शातिमय हो।

श्री सिद्धराजजी ढड्ढा, काशी :

श्री चिरंजीलालजी से मेरा परिचय वर्षों से रहा है। उनके सरस, शुद्ध हृदय और प्रामाणिकता की छाप मेरे ऊपर पडी है। उनके जैसे निस्पृह व्यक्ति के अभिनन्दन का आयोजन सराहनीय है।

श्री राधाकृष्ण बजाज, वर्धा :

श्री चिरंजीलालजी का मेरा संबंध बचपन से है। सदा उन्होंने बड़े भाई की तरह मुझे सभाला है। एक ही जीवन में छोटे-बड़े, गरीब, अमीर, सभी तरह का अनुभव किया है। बुरा करे, उसका भी भला करने की सदा इनकी वृत्ति रही है। जैन समाज की इन्होने विशेष रूप से सेवा की है। वैसे इनकी सेवाएँ वर्धा में सभीको मिलती रही है। स्वभाव से गुस्सा जल्दी आता हो—फिर भी इनके गुस्से की सात्विकता से सभी परिचित हैं। इस कारण किसीको उस गुस्से का डर नहीं लगता। किसीका बिगाड़ करने की उनमें प्रेरणा नहीं होती है। स्थूल शरीर होने पर भी रात-दिन सफर करना, भारी से भारी भीड में थर्ड में ही जाना, मालिक एवं कंपनी का एक पैसा भी अधिक खर्च न हो, ऐसी जिम्मेदारी महसूस करना, इनकी विशेषता है। आज के जमाने में ये गुण असामान्य हैं। घरेलू और संस्था के हित में विरोध आवे, वहाँ संस्था के हितों को प्रधानता देने का

इनका मानस रहता है। अपनी शक्तिनुसार या उससे कुछ अधिक ही दान इन्होंने दिया है। दान देने के आनन्द का ये अनुभव कर सकते हैं।

अपने अन्तिम दिनों में सासारिक बातो को भूलकर बाह्य जीवन को कम करके अन्तर्मुख होने का प्रयत्न कर रहे हैं। भगवान् इन्हें अन्तर्मुख होने में सफलता दे और अन्तःसुख के आनन्द का अनुभव करावे। इस अवसर पर मैं उन्हें भक्तिभाव से प्रणाम करता हूं।

श्री सन्त तुकडोजी :

आपने अपने जीवन में देश-सेवा, गो-सेवा तथा धर्म-सेवा का अच्छा कार्य किया है। और भगवान आगे भी आपके लिए सेवा की शक्ति प्रदान करे, यही शुभेच्छा।

श्री कमलनयन बजाज, बंबई :

चिरंजीलालजी ने सबका भला चाहा—जीवन प्रयत्नों से, उन्नत सेवामय किया। संतोष समाधान मिलाया। भगवान उन्हे सुखी करे। हार्दिक बधाई।

श्री रामकृष्ण बजाज, बंबई :

जिन्दगीभर आपने काम ही काम किया है और तन-मन-धन से हमेशा दूसरों की मदद और सेवा करने में अपना दिल और दिमाग लगाया है। मैं आशा करता हूँ कि अब जैसा आपने तय किया है–आप एक जगह शांति के साथ बैठकर शरीर और मन दोनो को ही आराम, चैन और शान्ति देने का प्रयत्न करेंगे।

श्री कृष्णलाल वर्मा, बंबई :

भाई चिरंजीलाल बड़जाते सच्चे अर्थ में वीतराग वीर के अनुयायी हैं। वीतराग धर्म के जितने मतमतान्तर हैं, उन सबमें उनके समभाव हैं। श्वेताम्बर हो, दिगम्बर हो, मूर्तिपूजक हो, मूर्तिविरोधी हो, कोई भी हो—जो अपने आपको वीर का अनुयायी मानते हों, प्रकट करते हो, उन सबके साथ चिरंजीलालजी स्नेहभाव रखते हैं और सेवा सहायता करने लायक जिनको वे समझते हैं–

स्नेह-स्वागत की पुष्प-वर्षा

स्वामी सत्यभक्तजी स्नेहाजलि अर्पित करते हुए

श्री रतन पहाड़ी (सयोजक) कविता-पाठ करते हुए

श्री मनोहरपंत देशपांडे, अॅडवोकेट
जीवनचरित्र पुस्तक भेट करने के पूर्व भाषण करते हुए

अभिनन्दन-पत्र भेट करते हुए समारोह के अध्यक्ष
हाईकोर्ट के भू० पू० न्यायपति **श्री भवानीशंकरजी नियोगी**

अभिनन्दन का उत्तर देते हुए श्री चिरजीलालजी
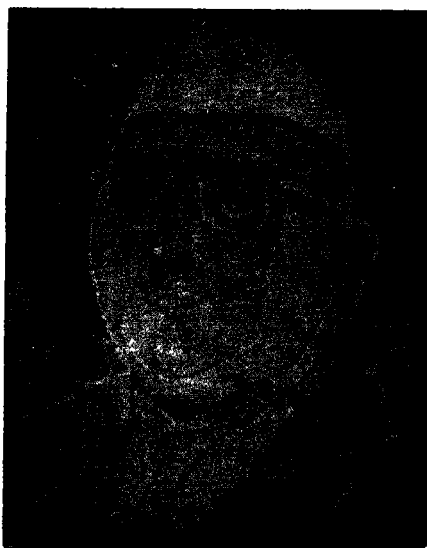
रागोली से भू पर अलिप्त श्री चिरंजीलालजी का चित्र

उनकी सेवा-सहायता भी करते हैं। भारत जैन महामंडल की उन्होंने जो सेवा की है, वह अद्वितीय है।

जैसे वे धर्मभक्त हैं, वैसे ही वे राष्ट्रभक्त भी हैं। उनकी सेवाओं का क्षेत्र स्व० जमनालालजी बजाज के कारण सारा भारत रहा है। उनकी मूक सेवाओं से राष्ट्र के बड़े नेता लोग भी परिचित हैं।

श्री मोतीलाल आर० पाटनी, सिकन्दराबाद :

Persons come and go after living in this world for years, but rarely we find persons like Chiranjilalji He has sacrificed not only for our own community, but for country. It is very difficult to narrate the good work he has done for family for our community and country. I pray God to give health and long life to complete a century, so that he may do many more good things as he has been doing in the past

श्री राजमलजी ललवानी जामनेर :

थोड़े शब्दों मे कहा जाय तो चिरंजीलालजी मानव स्वरूप में देवता है। उनका त्याग, पवित्र भावना व जैनों की सेवा ये प्रत्येक मानव के लिए आदर्श व मार्गदर्शक हैं।

श्री परमानन्दभाई कापड़िया, सं० 'प्रबुद्ध जीवन', बम्बई :

वर्धा निवासी श्री चिरंजीलाल बडजाते एक सुप्रसिद्ध जनसेवक छे। भारत जैन महामण्डलनी प्रवृत्ति साथे तेओ वर्षो थी गाढ़पणे संकळायला छे। स्व० जमनालालजी बजाजना कुटुम्बना तेओ एक निकटवर्ती स्वजन छे। सामाजिक सुधारणाना क्षेत्रमा पोतानी जातनु जोखम खेडीने तेमणे अनेक प्रवृत्तिओ करी छे। तेओ हजारो रुपया कमाया छे अने समाज सेवाना कार्यो पाछळ तेमने हजारो खर्च्या छे। नम्रतानी तो तेओ एक मूर्ति छे। ज्यारे समाज ऊपर रूढ़िओ पोतानी सत्ता जमावी बेठी हती त्यारे तेओ रूढ़िओ तोडवामा निमग्न रहेता हता। ज्यारे देशसेवा विद्रोह लेखवामां आवती हती त्यारे तेओ देशसेवा ना कार्यमां डूबेला

रहेता हता । आ रीते अनेक प्रकारना संघर्षों नो तेमणे जिन्दगी भर सामनो कर्यो छे । अने पोताना जीवन ने उज्ज्वल अने अर्थपूर्ण बनाव्यु छे ।

दैनिक महाराष्ट्र, नागपुर :

श्री चिरंजीलालजीचे जीवन कर्ममय, सेवा, त्याग व उदारतेचे अद्‌भुत रम्य मिश्रण आहे।

श्री कल्याणकुमार जैन 'शशि', रामपुर :

श्री चिरंजीलालजी का श्रेष्ठ व्यक्तित्व निर्विवाद और महान् है। ऐसे कर्मठ समाज-सेवी, राष्ट्र एवं समाज दोनो की ही मूल्यवान् निधि हैं।

श्री पन्नालाल ताराचन्द, चिखल्दा :

समय की मॉग के अनुसार जैन-समाज के चारों सम्प्रदायो को एकता में बाँधने का श्रेय आपको ही है। आपके ही प्रयत्नो से आज अन्तर्जातीय विवाह और विधवा विवाह समाज मे चालू हो रहे हैं। ये महान् कार्य आपकी देन हैं।

श्री माणिकचन्द जयकुमार चवरे, कारंजा :

काकाजीनी समाजासाठी व राष्ट्रासाठी केलेला त्याग तपस्या व सेवेचा आहे। श्री काकाजी चा घराण्याशी पीढ्यापासून अत्यन्त घनिष्ठ असा आपुलकीचा सम्बन्ध राहिला आहे।

श्री काकाजी सारख्या चतुर संयोजक, अनुभवी व्यवस्थापक, मुरब्बी हिशेबनज, प्रयत्नशील संघटक, तत्पर दाता, प्रामाणिक कार्यनिर्वाहक, प्रेमल पालक, आसुसलेला मुमुक्षु साधक, दृष्टिप्राप्त समाज-सेवक सांपडणे कठीण आहे।

श्री ताराचन्द बड़जाते, रायपुर :

मेरा यह सौभाग्य रहा है कि जीवन-संघर्ष में जब-जब भी आवश्यकता हुई, मुझे पूज्य काकाजी से पितृतुल्य स्नेह व मार्गदर्शन मिलता रहा है।

श्री चन्दनमलजी सोनी, वकील, पुसद :

समाज के प्रति जो ऋण है, वह समाज-सेवा करने की प्रेरणा मुझे श्री चिरंजीलालजी से ही मिली। इनकी अत्यन्त सादी रहन-सहन, समाज-सेवा करने का

अपना निराला तरीका, राष्ट्रीय विचारधारा, त्यागमय जीवन इन सब बातों का असर समाज के किसी नवयुवक के ऊपर पड़े बगैर नहीं रहा।

श्री रामेश्वरजी पोद्दार, धुलिया :

सारे वर्धा शहर को राष्ट्रीय क्षेत्र–तीर्थक्षेत्र बनाया। उसमें भाई चिरंजी-लालजी का हाथ अवश्य ही है।

श्री अक्षयकुमारजी जैन, सम्पादक – नवभारत टाइम्स, दिल्ली :

मैं श्री बडजातेजी से गत २० वर्षों से परिचित हूँ और उन अनेक युवकों में से हूँ, जिन्होंने श्री बड़जातेजी के जीवन से प्रेरणा प्राप्त की है।

श्री ठाकुरदास पानाचन्द जवेरी, बम्बई :

सचमुच, श्री चिरंजीलालजी जैसे राष्ट्रप्रेमी, समाज-सेवी, निःस्वार्थी, कर्मवीर कार्यकर्ता का अभिनन्दन मूक सेवा का अभिनन्दन है।

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', संपादक–'नया जीवन', सहारनपुर :

× मैं श्री चिरंजीलाल बडजाते को नहीं जानता। कभी बातचीत तो दूर, उनके दर्शन करने का अवसर भी नहीं मिला मुझे।

× फिर भी उनके सम्बन्ध मे मेरी ऊँची राय है और मैं उन्हे अपने महान् राष्ट्र का श्रेष्ठ नागरिक मानता रहा हूँ।

× जैन जगत् में उनके कुछ छोटे संस्मरण पढ़े हैं। संस्मरण क्या, वे जीवन-अनुभव ही हैं। जैसे स्व० महादेवभाई की डायरी मे गाधीजी के जीवन-दर्शनों का स्पर्श मिलता है, वैसा ही इन संस्मरणों में मुझे बड़जातेजी का अन्तर-दर्शन मिलता है।

× इस अन्तर्दर्शन से मेरे अन्तःकरण पर श्री बडजातेजी के व्यक्तित्व का जो रंगीन चित्र बनता है, उसके रंग हैं—व्यवहार-शुद्धि, सहृदयता और विवेक।

× मैं उनके इस व्यक्तित्व को जानता हूँ और इस तरह उनसे अपना एक मानसिक सम्बन्ध मानता हूँ।

सेठ भागचन्दजी सोनी, अजमेर :

आपने अपने जीवन में जो कुछ भी धर्म व समाज की सेवा की है, वह सराहनीय है।

श्री पं० परमेष्ठीदासजी जैन, न्यायतीर्थ, ललितपुर :

मैं बडजात्याजी के परम प्रशंसकों में से हूँ। मैं उनकी देश-सेवा, समाज-सेवा से तबसे प्रभावित हूँ, जब मैंने होश सम्हाला था। वे सच्चे निर्भीक कर्मी हैं। एक बहुत बड़े नेता होते हुए भी उनमें नेतृत्व की गन्ध नहीं आयी। उनके अन्तस्तल में करुणा भरी पडी है। यही कारण है कि समाज की अवनति की चर्चा करते हुए उनका हृदय उमडकर आँखो मे आ जाया करता है। इस वृद्धावस्था में भी वे मन से उतने ही कर्मठ हैं, जैसे २५ वर्ष पूर्व थे। उन्होंने मुझे अपने जीवन की अनेक करुणापूर्ण घटनाएँ सुनायी हैं, जिन्हे सुनते हुए वे स्वयं और मैं भी रो पडा हूँ।

श्री हनुमानप्रसादजी नेवटिया, पुलगाँव :

ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि उनको दीर्घायु प्रदान करे, जिससे उनकी सेवा और व्यक्तित्व का लाभ समाज को मिलता रहे।

श्री मगनलाल पो० दोशी, बम्बई :

ऐसे महान् व्यक्ति का अभिनन्दन करना राष्ट्र का सम्मान करने जैसा है।

श्री नथमलजी लूंकड़, जलगाँव :

हमें इस बात पर गर्व है कि चिरंजीलालजी जैसे महान् एव अनोखे व्यक्तित्व वाली महान् आत्मा का जन्म हमारे समाज में हुआ, जिन्होने समाज-सुधार के लिए अपने जीवन की बाजी लगाकर अपना जीवन उज्ज्वल बना लिया। कुशल व्यवहार, अनुपम उत्साह आदि मे उनका व्यक्तित्व खिल उठा है।

श्री चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ, जयपुर :

इसमें मुझे जरा भी शक नहीं है कि श्री बड़जातेजी अपने ढंग के असाधारण मानव है। दिखावटीपन उनमें जरा भी नहीं है। जैसे बाहर हैं, वैसे ही भीतर भी

हैं। वे मुझसे पचासों बार मिले होंगे, उनका मिलना भी अजीब है। वे प्रत्येक बार कुछ-न-कुछ अपनी विशेषता मिलनेवाले व्यक्ति पर छोड़ जाते हैं।

यद्यपि वे आजकल की भाषा में इतने पढ़े-लिखे नहीं हैं, न वे लेखक हैं, न वक्ता। पर उनकी सेवाएँ अमर हैं। मेरा ऐसा खयाल है कि उनमें कीर्ति कामना की जरा भी भावना नहीं है।

श्री शोभालाल गुप्त, दैनिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली :

श्री चिरंजीलालजी की सादगी और सेवामय जीवन हम सबके लिए अनुकरणीय है। उनका स्नेह कभी भुलाये भुलाया नहीं जा सकता। उनकी सेवा में मेरी और मेरी धर्मपत्नी की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि।

श्री नेमिचंद नगीनचंद वकीलवाला, बंबई :

बड़जातेजी जैसे सरल व्यवहार-कुशल और कर्तव्य-कठोर व्यक्ति समाज-सेवा और उद्धार का कार्य बहुत वर्षों तक और करते रहें। आत्मा से यही हमारी शुभ अभिलाषा है।

श्री लक्ष्मीनारायण भारतीय, बम्बई :

श्री चिरंजीलालजी का जीवन सार्वजनिक सेवा में ही बीता है। भारत जैन महामंडल के साथ तो वह पूरा जुड़ा हुआ ही है।

श्री इन्द्रलालजी शास्त्री, सम्पादक-अहिंसा, जयपुर :

यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि आपका सारा जीवन लोकोपकारी कार्यों में ही बीता है और आपमें यह सबसे बड़ा गुण है कि किसी व्यक्ति का यदि आपसे विचार न मिलता हो, तो भी आप उसके प्रति उतने ही समवेदी और हितैषी पाये गये, जितने अपने समविचार मित्र के प्रति। वास्तव में आपके प्रेमल, मृदुल और सरल स्वभाव ने सभीको आकृष्ट किया है। आपका सौजन्यपूर्ण निश्छल प्रेम मेरे साथ बराबर ४० वर्ष से अक्षुण्ण रूप में चल रहा है।

वैद्य विष्णुकान्तजी, मुरादाबाद :

मान्य बड़जातेजी की अनुपम समाज सेवा तथा दानशीलता, सरलता, सज्जनता, मृदुस्वभाव, परोपकार वृत्ति और सहृदयता की अमिट छाप मेरे हृदय पर अंकित है।

श्री ब० नि० कुलकर्णी, भोपाल :

आपका जीवन जैसा कि सबको मालूम है, चिर संग्राम का रहा। दूसरे व्यक्ति के यहाँ गोद आना, अपने निजी धंधे में दूसरों के भरोसे नुकसान उठाना और फिर जीवन को अन्य मार्ग में मोडकर मालिक से कर्मचारी बनकर उसकी जिम्मेवारियाँ निभाना, सामाजिक सुधार की लालसा रखना और मिलनेवाले थपेड़े सहना—इस प्रकार की अनेक अच्छी-बुरी गतिविधियाँ सहन करके आपका मन इस्पात जैसा चोट सहन करने में भी पक्का हो गया है।

सम्पत्ति हर आदमी जोड सकता है, किन्तु आदमी को जोडने की तपस्या बहुत कठिन है, जो आपने की।

श्री कमलाबाई, संचालिका, श्री दि० जैन आदर्श बालिका विद्यालय, श्री महावीरजी :

वास्तव में श्री चिरंजीलालजी अपने ढंग के निराले व्यक्ति हैं। इनका व्यक्तित्व इनकी सादगी में तथा दूसरो के प्रति होनेवाले आत्मीय व्यवहार में ऐसा निखर उठा है कि जैसे खान से निकला हुआ हीरा सान पर धरे जाने के बाद निखर उठता है।

श्री मूलचंद शास्त्री, श्री महावीरजी :

विनय जैसा उत्तम गुण इनमें मैंने साक्षात् मूर्तरूप से प्राप्त किया है। इन्हीं सब कारण-कलापों ने बडजातेजी की आत्मा को उज्ज्वल बनाकर इस लोक का एक देवता बना दिया है। मैं ऐसे नररत्न की चिरायुष्य होने की कामना करता हूँ।

श्री भगवानदासजी, बीड़ीवाले, सागर :

श्री बडजातेजी एक महान् समाज तथा देशसेवक हैं। हम उनका अभिनन्दन करते है।

श्री खुशालचंद धाड़ीवाल, मद्रास :

श्रीयुत चिरंजीलालजी के सम्पर्क में आने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था और उनका प्रेम, युवकों के प्रति तथा समाजोन्नति के लिए उनका उत्साह और परिश्रम देखकर आश्चर्य में पड जाना पड़ा।

श्री यशोधर मोदी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई :

ममता की स्नेहलमूर्ति, समाज-सेवा की निःस्वार्थ तत्परता और उत्साह तथा राष्ट्रीयता से ओतप्रोत जिस सर्वजनमंगल कामना के आपमें दर्शन होते हैं, वह दुर्लभ तो है ही, अनुपम, अनुकरणीय तथा वन्दनीय भी है।

श्री कनकमल मुणोत, पूना :

सामाजिक कार्यों में आपने न तो धन की पर्वाह की है, न यशाधिक्य की।

आपकी सेवाएँ मैंने गत ५-६ वर्षों से निकट से देखी हैं। उनका अनुभव किया है। आप जैसों की कार्य-तत्परता, फुर्तीलापन एवं सेवाभाव को देखते हुए हम जैसे युवकों को अपने लिए लज्जा आती है व आपके लिए हृदय आदरान्वित हो जाता है।

श्री श्रीगोपाल जैन, अकोला :

वे जैन-समाज के हीरे हैं, जो हर व्यक्ति को अन्धकार में से ऊपर उठाने के लिए प्रकाश ही देने का काम करते है।

श्री रतनकुमार जैन, एम० कॉम०, नागपुर :

श्री चिरंजीलालजी बड़जाते को व्यक्ति की अपेक्षा एक जागरूक और वर्द्धमान संस्था कहना अधिक उपयुक्त होगा।

"योगः कर्मसु कौशलम्" "मा फलेषु कदाचन" सिद्धान्त का प्रतिपालन उन्होंने अपने पूरे जीवन में किया है।

श्री ऐनकुमारजी, इटारसी :

श्री बड़जात्याजी भारतीय धर्म की प्रथम पंक्ति के सजग प्रहरी हैं। उनका दिव्य पुरुष क्षमा, दया, अहिंसा, सत्य, सहनशीलता, परोपकार तथा उद्धार की कर्मेंद्रियों से संजोया गया है। यह महान् मानव हैं। समूचे जनमानस के वे सच्चे कल्याणकारी रूप हैं, उनका दर्शन पावन है।

श्री बाबूलाल पाटोदी, उदयपुर :

वे आज तक मेरा मार्गदर्शन करते रहे हैं। अपने पुत्रों के जैसा स्नेह उनका मेरे ऊपर है। घर के बच्चों के सम्बन्ध में उनका ध्यान आज भी इस उम्र में इसी प्रकार बना रहता है।

प्रो० प्रेमचन्द जैन, राजगढ़ :

मै इसी समारोह से सन्तुष्ट नहीं हूँ। मेरा तो विचार है कि ऐसे महान् व्यक्तित्व के सम्मान में कोई रचनात्मक कार्य होना चाहिए, जो कि हम लोगो को एक मार्गदर्शक के रूप में भविष्य मे पथ-प्रदर्शन करे।

श्री कस्तूरचन्द चंदनलाल सेठी, अकोला :

दयालुता भी ऐसी है कि किसीका दुःख या कष्ट सुना, तो आपकी आँखें भर आती है। समाज सुधार, पर्दा-प्रथा आदि कार्यों में सक्रिय भाग लेकर हम लोगो के सामने आपने आदर्श रखा है। जैन शास्त्रो मे एक सच्चे जैनी के लिए जितने गुण बताये है, वे सभी इनमे होने के नाते ये सच्चे जैनी हैं।

श्री डी० जी० महाजन, यवतमाल :

I Pray Lord Jinendra to bless you with happiness and ability to serve the mother land in general and the Jain religon, its culture with history alike, in particular.

श्री गुलाबचंदजी बड़जाते, विदिशा :

श्री चिरंजीलालजी मेरी दृष्टि में अनुभवो की साक्षात् मूर्ति हैं। समाज-सुधार करने पर उन्होने क्या-क्या कष्ट नही उठाये हैं! हृदय प्राणिमात्र के कल्याण की ओर लगा हुआ है।

श्री कुसुमबेन मोतीचन्द शाह, बंबई :

प्रभु आपको दीर्घायु दे और सब मनोकामनाएँ पूरी करे, यही सदिच्छा।

श्री फतहलाल हिंगर, उदयपुर :

अपने जीवन की विषम स्थितियों का सामना करते हुए भी निरन्तर समाज-

सेवा में लीन रहकर जो उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किया है, वह हम सबके लिए प्रेरणास्पद है। इस वृद्धावस्था में भी कठिन प्रवास-श्रम द्वारा समाज-सेवा में लगे रहना क्या प्रत्येक नवयुवक के लिए अनुकरणीय नहीं है?

ईश्वर से हमारी यही कामना है कि वे चिरायु हों, ताकि उनके निःस्वार्थ-जीवन तथा शुभ कार्यों द्वारा हमें मार्ग-दर्शन मिलता रहे। उनके प्रत्येक कार्य में हाथ बँटाना हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

श्री जगमोहनलालजी शास्त्री, कटनी :

हम विश्व के सामने इस अभिनन्दन द्वारा यह सिद्ध कर रहे हैं कि हममें कृतज्ञता का भाव है। वयोवृद्ध होने पर भी समाज और धर्म की सेवा वे जिस लगन से करते है, वह हमारी भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणा व उत्साहप्रद है।

श्री कस्तूरमलजी बांठिया, यमुना नगर :

आप काया को पर्याप्त से अधिक कष्ट देकर क्षीण कर रहे हैं, जब कि आपको शतायु होकर लोगों को अपनी करनी से, सेवा से सत्यथ पर लाना है। यात्रा के लिए ही आप यात्रा नही करते हैं, यह मैं मानता हूँ; फिर भी आपको शरीर को ऐसे कष्टों से बचाना चाहिए, क्योंकि इससे जीवन-शक्ति का ह्रास ही होता है। जीवन संयम के लिए है और संयम आत्मा की पहचान के लिए।

प्रो व्ही ए संगवे, एम-ए, पी-एच डी, कोल्हापुर :

जैन समाजाला जर आज कशाची आवश्यकता असेल तर ती एकतेची होय. जैन समाजातील सर्व संप्रदाय एकत्र येऊन जर कार्य करतील तर जैन समाजाचा अभ्युदय फार लवकर होईल। अशा विचारसरणी बालगणारे व त्या प्रमाणे अविरत कार्य करणारे कार्यकर्ते मात्र फार थोड़े आहेत. अशा कार्यकर्त्यां मध्ये श्री चिरंजीलालजीना फार मानाचें स्थान द्यावे लागेल.

श्री बिरधीचन्दजी चौधरी, हैदराबाद :

श्री चिरंजीलालजी बड़जाते आमतौर पर काकाजी के नाम से पुकारे जाते हैं और यह नाम है भी बड़ा उपयुक्त। जिस किसीका संबंध उनसे हो जाता है, उसके लिए 'काकाजी' की जिम्मेवारी निभाते हैं। मेरा भी उनसे पिछले बीस वर्षों का

संबंध है और उनकी छत्रछाया सदा ही मुझ पर काकाजी के रूप मे बनी रही है। उनका मधुर संबंध दो कुटुम्बों को जोड़े हुए है। उनका व्यापारिक तथा सार्वजनिक कार्यों के रूप में बहुत संबंध रहा, कभी मतभेद भी हुए हैं, गर्मागर्म चर्चाएँ और बहसें हुई हैं, फिर भी उनका अन्तःकरण इतना निर्मल, मृदु और स्नेहल है कि सामनेवाला नतमस्तक हो जाता है। उनका साहस, उनकी उदारता, क्षमाशीलता सब अनुकरणीय है।

श्री भोजकुमारजी प्रभाकर, जयपुर :

बाबू अजितप्रसादजी (अब स्वर्गीय) के कारण मैं कुछ समय के लिए वर्धा गया था। वहाँ श्री चिरंजीलालजी के दर्शन हुए। प्रथम परिचय में ही हमारा संबंध पारिवारिक-सा बन गया। फिर तो वे मुझे पुत्रवत् मानने लगे। उनके स्वभाव का विलक्षण गुण यह है कि वे किसी पर एक तो नाराज नहीं होते और अगर होते भी हैं तो वह नाराजगी पानी की रेखा जैसी होती है। आपने साहित्य नहीं लिखा, पर साहित्यिकों को प्रेरणा दी है। जीवन ही आपका खुला साहित्य रहा है। धर्मशालाएँ नहीं बनवायीं, पर कितने ही परिवारों का जीवन सुखमय बनाया है। उनका प्यार युगों तक मिलता रहे, यही अपेक्षा है।

त्यागमूर्ति पूनमचन्दजी रांका, रांका कोलोनी, नागपुर :

जो व्यक्ति अपने माँ-बाप को छोड़कर दूसरों को माँ-बाप बना ले, वह मामूली नहीं होना चाहिए। चिरंजीलालजी ऐसे ही आदमी है। मुझे वे आदमी ज्यादा पसंद आते हैं जो सीधे-सादे बने रहते हैं और देश का बड़े-से-बड़ा काम कर डालते है। हमारे ऋषि-मुनियों ने बहुत सोच-समझकर भरत और जनक का उदाहरण रखा है। इसे मैं कमी ही मानता हूँ कि कोई आदमी देश-सेवा या धर्म-सेवा करने के लिए या समाज-सेवा करने के लिए लाल कपड़े पहने, मूड मुडाये या कपडे ही उतारकर फेंक दे! क्या सफेद कपड़े काटते हैं? क्या मामूली बाल बोझरूप होते हैं? क्या हमारा तन मामूली वस्त्रों को नहीं सम्हाल सकता? हमारे चिरंजीलालजी ने किसी वेश, रूप या प्रणाली-विशेष का आश्रय नहीं लिया, फिर भी वे देश, धर्म और समाज की सेवा अनवरत रूप मे, पारिवारिकता मे घिरे रहकर भी करते जा रहे हैं! गृहस्थ को आप भले ही छोटा समझें

रहें, पर वही तो सबके पेट को पोषण देता है, सब छोटों को बड़ा बनाता है। स्वयं छोटा बना रहने में सुख अनुभव करता है। हमारे चिरंजीलालजी छोटे बने रहकर ही अपने काम में दत्त-चित्त रहे। इनका जन्म-दिन मनाने में सचमुच जी अन्दर-ही-अन्दर लहरें ले रहा है।

पं० मक्खनलालजी न्यायालंकार, मुरैना :

मेरी हार्दिक भावना है कि श्री जिनेंद्रदेव की भक्ति के प्रसाद से वे चिरजीवी, सुखी, स्वस्थ बने रहें। उन्हें हार्दिक बधाई।

पं० बंसीधरजी व्याकरणाचार्य, बीना :

आप जैसे वयोवृद्ध महात्मा के प्रति मेरे जैसे व्यक्ति केवल श्रद्धार्पण ही कर सकते हैं। सेवाभाव के विषय में आपसे मुझे ही क्या, अच्छे-अच्छे, व्यक्तियों को भी बहुत सीखने के लिए मिल सकता है। मेरा तो अटल विश्वास है कि आपके निष्कलंक जीवन के प्रति कोई शंकित नहीं होगा। आपके शुद्ध सेवामय जीवन से हमें प्रेरणा मिलती रहे, इसके लिए आप हमारे बीच सौ वर्ष तक रहें, यह कामना अन्तःकरण में विद्यमान है।

पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार, दिल्ली :

आपका भावी जीवन पहले से भी अधिक शुद्ध, निर्दोष और स्व-पर सेवा-भावी बने। साथ ही आपके विकास-मार्ग के कंटक दूर हों, जिससे आप अतरात्मा का विकास करने में अधिकाधिक रूप से प्रवृत्त हो सकें।

[इनके अतिरिक्त देश के कोने-कोने से समारोह के अवसर पर तार और सदेश प्राप्त हुए हैं। कुछ बाद में भी मिले हैं। उनमें से कुछ की नामावली यहाँ दी जा रही है।]

श्री सेठ लालचंदजी हीराचंदजी, बंबई
,, अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर
,, दशरथजी जैन, मंत्री, म० प्र०, भोपाल
श्री भगतरामजी जैन, दिल्ली
,, सौभाग्यमलजी जैन, लखनऊ
,, द्वारका प्रसादजी गुप्त, लखनऊ
,, नंदकिशोरजी सेठी, मुरादाबाद
,, तख्तमलजी जैन, विदिशा

श्री के० के० संघवी, बम्बई
,, रमणलाल सी० शाह, बंबई
,, सौभाग्यमलजी जैन, शुजालपुर
,, कल्याणमलजी बाठिया, कोटा
,, चन्द्र मोहनजी, दिल्ली
,, देवेंद्रकुमारजी पाटनी, छिंदवाडा
,, दौलतरामजी चौधरी, सोनागिरि
,, केशवदेवजी नेवटिया, बंबई
,, बा० नागर, कल्पवृक्ष, उजैन
,, संतोष सोगानी, जयपुर
,, शिवराज अग्रवाल, सीतापुर
,, हरिश्चंद जैन, जबलपुर
,, चेतनदासजी जैन, मल्हीपुर
,, अमोलकचन्दजी जैन, नवापारा
,, रतनलालजी वकील, अमरावती
,, नेमीचंदजी जैन, देउलगॉव का राजा
,, कन्हैयालालजी सुजानमल, उदयपुर
,, ए० के० जैन, बंबई
,, गौरीलालजी हकीम, इन्दौर
,, रामगोपालजी मूता, बरेली
,, कन्हैयालालजी काला, खामगॉव
,, मगनलालजी जैन, जयपुर
,, कस्तूरचंदजी, पन्ना
,, सुन्दरलालजी जैन, इटारसी
,, पं० हीरालालजी कौशल, दिल्ली
,, जम्बूदास देवीदास चवरे, बाहुबलि
,, कृष्णावती देवी जैन,
रांका कोलोनी, नागपुर

श्री निर्मल प्रसादजी जैन, झाँसी
,, कन्हैयालालजी हूमड, खंडवा
,, रामचन्द्र सारंगपाणी, यवतमाल
,, सोनपालजी जैन, नैला
,, गूजरमलजी गोधा, दुर्ग
,, बसंतीलालजी बाकलीवाल, दुर्ग
,, बद्रीनारायणजी पाटनी, दुर्ग
,, सोहनलालजी ताराचंदजी, दुर्ग
,, राजेन्द्र कुमारजी लुहाडिया, अजमेर
,, रामलालजी सोगानी, पछार
,, किसनलालजी रावका, नागपुर
,, जबरचन्दजी सेठी, इन्दौर
,, कैलाशचन्दजी चौधरी, रायपुर
,, मोतीलालजी लुहाडिया, दिल्ली
,, हुकमचन्दजी गंगवाल, धूलिया
,, ताराचन्दजी गंगवाल, जयपुर,
,, चौथमलजी मंगल, जोधपुर
,, कस्तूरचंदजी मोतीलालजी
कासलीवाल, खामगाव
,, शिवसिंहजी, अलमोडा
,, कस्तूरचन्दजी, सनातन जैन
विधवाश्रम, अकोला
,, मोहनलालजी जैन
,, इंदरलाल कपूरचंद, जयपुर
,, नथमलजी सुराणा, हिंगणघाट
,, करणरायजी दोशी, हिंगणघाट
,, कैलाशचन्दजी सेठी, बंबई
,, बाबूलालजी सोनी, उदयपुर

श्री नाना सारंगपाणी, यवतमाल
,, विजयचंदजी जैन, कानोड
,, माणकचन्दजी चारोडिया हिंगणघाट
,, मौजी मास्टर, वणी (यवतमाल)
,, प्रह्लादजी, बंबई
,, डा० जगदीशचंदजी जैन, बंबई
,, पं० सुमेरचंदजी दिवाकर, सिवनी
,, शेखरचन्दजी जैन, इटारसी
,, स्वर्णराजजी कोचर, बंबई
,, डा० बी. एन. कन्सल, रायपुर
,, अमोलकचन्दजी उड़ेसरीय, इन्दौर
,, एम. ई गाउबा, बंबई
,, दीपचन्दजी लुल्लानी, कामठी
,, पूनमचंदजी बज, कोटा
,, नवलमलजी फिरोदिया, बंबई
,, हकीम मोहनलालजी जैन, जयपुर
,, ज्ञानचंदजी जैन, दिल्ली
,, तारामती जैन, इन्दौर
,, नेमिकुमारजी जैन, पोरबंदर
,, शेखरचंद जैन, गवालियर
, लादूलालजी बडजाते, जयपुर
,, गुलाबचन्दजी बाकलीवाल, छिंदवाडा
,, पी० एल० जैन, इन्दौर
,, हीरालालजी कोठारी, बुलडाना
,, जगन्नाथ मोहनलाल सोनी, बंबई
,, सुगनचंदजी अजितकुमार बड़जाते, मलकापुर
,, माणकचंदजी लुहाडिया, बुरहानपुर
,, अभयराजजी बलदोटा, बम्बई

श्री किसनलालजी शर्मा, पूना
,, रूपचंदजी पाटनी, वासिम
,, माणकचंदजी जैन, खंडवा
,, चंपकलालजी ललवानी, बंबई
,, ऋषभचंदजी, कोटा
,, सेठ मथुरादासजी मोहता, हिंगणघाट
,, सुंदरलालजी सेठी, खंडवा
,, धन्नालालजी परखचंदजी, गोंदिया
,, छाबड़ा ब्रदर्स, कोटा
,, हीरालालजी गोधा, वासिम
,, धन्नालालजी सुदरलालजी, सिवनी (मालवा)
,, बज ब्रदर्स, वासिम
,, गुलाबचंदजी बडजाते, मलकापुर
,, प्रबलसिहजी सुराणा, इन्दौर
,, खुशालचंदजी खजानची, चांदा
,, फतहचंदजी जैन, बुलडाणा
,, भरतेशकुमार सोगानी, जयपुर
,, शातिलालजी कोठारी, पूना
,, धीरजी चंदनमल, सिकन्दराबाद
,, प्रेमराजजी दोशी, अजमेर
,, पुरुषोत्तमदास झुनझुनवाला, बंबई
,, जयंतीलाल परीख, बंबई
,, प्रीतमचन्दजी जैन, सिवनी
,, लालचन्दजी मूथा, पूना
,, सुदर्शनजी सिंघई, अमरावती
,, प्रेमकरणजी सुराणा, नागपुर
,, विश्वनाथ शर्मा, मांडवगढ़

अभिनन्दन-समारोह में बाहर से आये हुए अतिथियों की उपस्थिति

श्रीमान् भवानी शंकरजी नियोगी,
भूतपूर्व हाईकोर्ट जज, नागपुर
,, सेठ राजमलजी ललवानी, जामनेर
,, पूनमचन्दजी राका, नागपुर
,, ताराचन्दजी कोठारी, बंबई
श्रीमती चन्द्राबेन ताराचन्दजी
कोठारी, बंबई
श्रीमान् रिषभदासजी राका, बम्बई
,, फकीरचन्दजी जैन, भुसावल
श्रीमती पारसरानी फकीरचदजी, भुसावल
श्रीमान् माणिकचंदजी चवरे, कारंजा
,, पूनमचन्दजी नाहटा, भुसावल
,, प्रो० रजनीशजी, जबलपुर
,, बाबूलालजी डेरिया, बाबई
,, सूगनचन्द्रजी लूनावत, धामणगाव
,, भीकचंदजी देशलहरा, बुलडाणा
,, ज्ञानचन्द्रजी जैन, लखनऊ
श्रीमती मानकुवरबाई पारख, चादा
,, किशोरकुमार बड़जाते, दिल्ली
,, बिरधीचन्दजी चौधरी,
हैदराबाद

श्रीमान् चंपालालजी ठोल्या, नागपुर
,, कृष्णलालजी वर्मा, बंबई
,, पं० रामलालजी पाडे, इटारसी
,, गूजरमलजी गोधा, दुर्ग
,, बसंतीलालजी बाकलीवाल, दुर्ग
,, सोहनलालजी अजमेरा, दुर्ग
,, राजेन्द्रकुमारजी पाटनी, नागपुर
,, प्रो शातिकुमार बड़जाते, नागपुर
,, सुरेशचन्द्रजी गोधा, नागपुर
,, रतनलालजी दोशी, नागपुर
,, करणरायजी दोशी, हिंगणघाट
,, जमनालालजी जैन, काशी
,, पन्नालालजी पाटनी, वासिम
,, माणकचंदजी पाटनी, वासिम
,, बंसीलालजी ओसवाल, वासिम
,, दीपचंदजी बड़जाते, खामगाव
,, सतीशकुमारजी, काशी
,, प्रतापचन्द्र बड़जाते, हैदराबाद
,, धर्मचन्दजी सरावगी, कलकत्ता
,, पारसमलजी जैन, बोलारम
,, नरोत्तमलालजी जैन, कोटा

इनके अतिरिक्त वर्धा शहर के लगभग पाँच सौ सज्जन तथा विभिन्न रचनात्मक तथा सरकारी विभागों के अधिकारी उपस्थित थे।

नर-रत्न

[मास्टर चेतनदासजी जैन, मल्हीपुर]

लगभग ३५ वर्ष पुरानी बात है। चिरंजीलालजी मथुरा पधारे। वहाँ मैं सरकारी विद्यालय में हेड मास्टर था। उस समय मथुरा के जैन समाज में मेल-जोल से काम नहीं होता था। चिरंजीलालजी की सहायता से अच्छा संगठन हो गया।

सन् १९३७ में मैंने भारत जैन महामंडल के मंत्रीपद से त्यागपत्र दे दिया। इस काम को बाद में चिरंजीलालजी ने सम्हाल लिया। भारत जैन महामंडल का कार्यालय अब वर्धा आ गया। महामंडल के पास न कोई फंड था, न संप्रदायों का सहयोग था, फिर भी चिरंजीलालजी ने तन, मन, धन से महामंडल की उन्नति का प्रयत्न किया। वे सदा मुझे अपने साथ रखते थे। उन्होंने हर स्थान पर मेरा बड़े आदर और स्नेह के साथ धर्म तथा देशसेवियों से परिचय कराया।

बीस वर्ष पूर्व मैं सेवाग्राम आया। तब मैं एज्यूकेशनल कान्फरेंस के प्रतिनिधि की हैसियत से कानपुर में शरीक हुआ था। वहाँ से सेवाग्राम आया। चिरंजी-लालजी के यहाँ ठहरा। इनके परिवारवालों ने आत्मीयता से सत्कार किया। चिरंजीलालजी ने अनेक लोगो से भेंट करायी और एक सभा भी बुलायी। इसीका परिणाम है कि मैंने मल्हीपुर कारखाना तीन उद्देश्यों से स्थापित किया :

१. बुनियादी शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा का प्रबंध

२ गृहोद्योगों तथा घरेलू दवाओं का प्रचार

३. कोआपरेटिव सोसाइटियों का संगठन।

पाँच वर्ष से हमारे कारखाने का नाम मल्हीपुर सर्वोदय कार्यालय है। जिस सर्वोदय भावना से चिरंजीलालजी ने देश, धर्म और समाज की सेवा की है, उससे हमें बड़ी प्रेरणा और उत्साह मिला है। मेरे जीवन-कार्यों का विवरण इन्होंने 'आँखों देखे आदोलन' पुस्तक रूप में प्रकाशित भी किया है।

श्री चिरंजीलालजी बडजाते अपने ढंग के सत्याग्रही और गुणी नररत्न हैं। नेकी को फैलाने के लिए वे बहुत समय तक हम सबके बीच रहें, यही कामना है।

सहृदय चिरंजीलालजी

[श्री करणराय दोशी, हिंगणघाट]

सन् १९३३ की बात है। मैं उन दिनों जैन-गुरुकुल चौरासी (मथुरा) में पढ़ता था। वहीं का मैं रहनेवाला हूँ। एक दिन श्री चिरंजीलालजी हमारे गुरुकुल में आये। सब बच्चों से हालचाल पूछा। मुझे दफ्तर में बुलाया। मुझसे मेरी पूरी जानकारी पूछी। गृहपति श्री नंदकिशोरजी से उनकी कुछ बातचीत हुई। मैं अब चिरंजीलालजी के साथ हो गया। मुझे वे अपने साथ वर्धा ले आये और यहाँ से सीधे हिंगणघाट ले गये। मैं बिलकुल हक्का-बक्का था। कुछ समझ ही नहीं रहा था कि बात क्या है ! कहाँ मथुरा और कहाँ हिंगणघाट !

थोड़े दिनों में मेरा दत्तक विधान हो गया। हिंगणघाट में सेठ चांदमलजी निहालचंदजी का परिवार सम्पन्न था। मैं निहालचंदजी का पुत्र बन गया।

पिताजी और चिरंजीलालजी में विचारों की दृष्टि से जमीन आसमान का अंतर रहा है। पिताजी चुस्त सनातनी और चिरंजीलालजी मुक्त सुधारक। फिर भी मैं दंग था कि दोनो का स्नेह और आत्मीयता कभी भी कम नहीं हुई। वे एक-दूसरे का बराबर आदर करते रहे है, एक-दूसरे की प्रतिष्ठा और विचारो को महत्त्व देते रहे है ! ऐसी निष्कलुषता बहुत कम देखने में आती है।

वर्धा के कुएँ हरिजनो के लिए खुला करने में चिरंजीलालजी अगुवा थे। उन्होंने हरिजन के हाथ का पानी पी लिया। इससे जैन समाज में तहलका मच गया। चिरंजीलालजी को जाति बहिष्कृत करने में पिताजी का पूरा हाथ था, लेकिन जब भी चिरंजीलालजी हिंगणघाट जाते, हमारे घर पर ही भोजन करते। एक बार तो और भी गजब की बात हुई। हमारे घर पर मोसर था। समाज के लोगों का कहना था कि अगर चिरंजीलालजी के घर के लोग शामिल होंगे और चौके में हाथ लगायेंगे तो कोई शामिल नहीं होगा। इस पर पिताजी अड़ गये। कह दिया कि कोई आये या न आये, चिरंजीलालजी का परिवार अवश्य आयेगा और उनकी देखरेख भी चौके पर रहेगी। आखिर सब लोग भी पहुँचे ही ! पिताजी की यह स्निग्ध कठोरता ऐसी थी कि चिरंजीलालजी भी हमारे परिवार के साथ पूरी आत्मीयता से गुँथ गये हैं।

स्वाध्याय के व्यसनी

[श्री अ० ल० मानेकर, वासिम]

एक बार चिरंजीलालजी कारंजा आये। उनके पास श्री डेल कारनेगी की एक पुस्तक थी–How to win friends and influence people; यह वही प्रसिद्ध पुस्तक है जिसकी लाखों प्रतियाँ बिक चुकी हैं। रात के ८ बजे का समय होगा। एक सुपरिचित कार्यकर्ता से बोले, 'इसमें से कुछ सुनाओ।' मुझे कुछ ऐसा लगा मानो काकाजी हमारी परीक्षा लेना चाहते हैं। यह भी लगा कि किताब अच्छी है, अतः कुछ सुनने के लिए ही कहा हो। पढ़कर सुनाने और हिन्दी भावार्थ समझा देने के बाद मुझसे नहीं रहा गया। मैं पूछ ही बैठा, 'आप यह किताब क्यों सुनना चाहते हैं?'

बोले, 'मेरा यह स्वाध्याय है। मैं अंग्रेजी नहीं जानता। लेकिन इस तरह आप लोगों से सुन-समझकर इस किताब की अच्छाइयाँ जानना चाहता हूँ।'

मैंने उनके संपर्क में अनुभव किया है कि स्वाध्याय की—किसी भी भाषा की अच्छी किताब को समझने की—कोशिश उन्होंने की है। इसी तरह अच्छे कार्य, अच्छे आदमी, अच्छी सेवा में उनकी दिलचस्पी रही है। वे क्रियाशील रहे हैं। बिना प्रमाद सबसे मिलकर प्रेम की वर्षा करना वे बहुत ठीक तरह जानते हैं। प्रेम और सहानुभूति उनकी जीवन-शक्ति है।

देवता पुरुष

[श्री गोविन्दलाल मित्तल, कागजनगर]

श्री चिरंजीलालजी के सम्पर्क में मै स्व० मोतीलालजी पहाड्या कोटावालों के द्वारा आया। हरबार उनसे मिलने पर मैं अपने को किसी देवता-पुरुष के समक्ष खडा अनुभव करता हूँ। मुझे तो उनके दर्शन मात्र से बड़ी प्रेरणा मिलती है। उनको देखकर मैं विचारों में खो जाता हूँ। ऐसो हस्तियाँ आज के युग की देन नहीं हैं; यह तो जो युग समाप्त हो रहा है उसके रहे-सहे अनुकरणीय स्मृति चिन्ह हैं।

मेरी विनय*

बुजुर्गों तथा साथियो,

आज अपने को आप सबके बीच पाकर एक ओर जहाँ हर्ष का अनुभव हो रहा है, वहाँ भीतर-ही-भीतर संकोच से गड़ा भी जा रहा हूँ। आप सबके स्नेह की पूँजी पाकर सचमुच मैं अपने को धन्य महसूस करता हूँ। स्नेह की यह अजस्र धारा जिस तरह अब तक प्रवाहित रही है, वैसी ही आगे भी वह मुझे अपने स्पर्श से पावन करती रहेगी, ऐसी मेरी श्रद्धा है।

आज मेरे भौतिक या शारीरिक जीवन के ६५ वर्ष पूरे हो रहे हैं। मेरा विगत जीवन आप सबके समक्ष खुली किताब के रूप में रहा है। मेरे जीवन को मुझसे अधिक आप लोग जानते हैं। कोई भी व्यक्ति स्वयं अपने बारे में वह सब कुछ नहीं व्यक्त कर सकता, जो उसे व्यक्त करना चाहिए। यह व्यक्ति की एक प्रकार से विशेषता ही है कि वह अपने बारे में कुछ 'भुलक्कड़' भी होता है। अगर भूलने का स्वभाव न हो, तो आदमी जिन्दा भी नहीं रह सकता। अपने प्रति न्याय भी नहीं कर सकता।

मैं जानता हूँ कि मेरी अनेक त्रुटियाँ और कमजोरियाँ हैं। शारीरिक दृष्टि से मेरा शरीर ही मेरे लिए भारी पड जाता है। वह मेरे वश में नहीं है। उठने-बैठने, खाने-पीने, सोने-जागने में शरीर के 'हुक्म' पर मुझे चलना पड़ता है। मन की यह हालत है कि कभी पाँच मिनट भी वह एकाग्र या शरीर से ऊपर नहीं उठ पाया है। मन की हार और जीत में मैं हारता और जीतता रहा हूँ। 'आत्मोन्नति' शब्द तो बडा प्यारा है और अपने पुराण-अध्यात्म ग्रन्थों के प्रति मेरी निष्ठा भी है, लेकिन वे कौनसी आँखें हैं, जो मेरे बारे में कह सकती हैं कि मैं इस दिशा में कुछ इंच भी आगे बढ़ा हूँ ? यह सब तो आप लोगों के स्नेह तथा बुजुर्गों के आशीर्वाद का परिणाम है कि मैं योग्यता के अभाव में भी सम्मान पाता रहा हूँ।

---

* अभिनन्दन-समारोह के अन्त में स्वागत और अभिनन्दन के उत्तर में दिया गया श्री चिरंजीलालजी का निवेदन।

एक साधारण परिवार में, राजस्थान के एक देहात में, मेरा जन्म हुआ, बाल्यकाल बीता। पढ़ाई के नाम पर हिन्दी की दो कक्षाएँ भी मैं पूरी तरह नहीं पढ़ सका। संयोग की बात कि मैं वर्धा में गोद आया। यह लगभग ४५ वर्ष पहले की बात है। मेरे लिए यहाँ सब कुछ नया और अद्भुत था।

स्व० जमनालालजी बजाज का मुझ पर अनन्त उपकार है। यों तो मनुष्य-जीवन विश्व के अनन्त उपकारों से लदा हुआ है। क्षुद्रातिक्षुद्र कीटाणु भी हम पर उपकार की वर्षा करते रहते हैं। ऐसा कोई दिन नहीं जाता, जब मुझे जमनालालजी का स्मरण नहीं होता। मेरे जीवन में उनका स्थान सर्वोपरि है। अपने लिए मैं उन्हें किस विशेषण से सम्बोधित करूँ, यही समझ में नहीं आता। वे मेरे लिए वस्तुतः हनुमान् के राम और मीरा के गिरधर गोपाल थे। उन्हींकी प्रेरणा से मैं दत्तक आया और उन्होने ही मुझे पुत्रवत् मानकर मेरे विकास का प्रयत्न किया।

समाज-सुधार, समाज-सेवा और देश-भक्ति की भावनाओं का संचार उन्हींकी संगति और प्रेरणा से मुझमें हुआ। उनके कारण मेरी इन कामों में हिम्मत बढ़ने लगी और उत्साह से ऐसे कामो में भाग लेने लगा। कट्टर तथा रूढ़िचुस्त विचारों के प्रहारों को भी मैं झेलता रहा। सेठजी की प्रेरणा इतनी प्रबल और आत्मीय थी कि उसके आगे यह सब प्रहार हवा के झोंके की तरह आगे बढ़ गये और समय के सागर में लीन हो गये हैं।

आर्थिक संकट भी मुझ पर जबरदस्त आया था। कपड़े का व्यापार ठप हो गया। लेना-पावना डूब गया और मैं कर्जदार हो गया। कुछ साथियों ने कानून के अनुसार मुझे दिवालिया होने की भी सलाह दी। लेकिन इस वक्त भी मुझे सेठजी ने ही उबारा। जब वह दृश्य आँखों के सामने आता है, तो मन श्रद्धा से अभिभूत हो उठता है! उन्होंने सारे कारोबार को समझा और अपनी ओर से रकम देकर सबके कर्ज से मुझे मुक्त किया। महत्त्व घटना का नहीं है, भावना का है, दृष्टि का है। जमनालालजी में मनुष्य का निर्माण करने की, उसकी सुप्त शक्तियों को जाग्रत कर उनका समाज और देश के हित में उपयोग करने की अद्भुत शक्ति काम कर रही थी। बाद में तो उन्होंने मुझे अपने यहीं स्थान दे

दिया और ऐसे-ऐसे काम मुझे सौंपे कि जिनसे मेरा आत्मविश्वास बढ़ा और मैं पैरों पर खड़ा हो सका।

उन्हींकी प्रेरणा और विश्वास का बल मेरे साथ रहा। देश के बड़े-बड़े कर्मठ त्यागी और नेताओं से संपर्क आया, उनके साथ काम करने का अवसर मिला। परमपूज्य बापू, पूज्य डा० राजेन्द्रप्रसादजी तथा अन्य अनेक पूज्य जनों का स्नेह तथा आशीर्वाद पाकर यह नाचीज आज धन्यता अनुभव कर रहा है।

सेठजी के उपकारों की कथा बहुत लम्बी है। उनके साथ तो मैं लगभग ३७ वर्ष रहा हूँ। इन वर्षों के एक-एक क्षण ने मुझे जो अनमोल सीखें दी है, उनका ब्योरा देने की शक्ति मुझमें नहीं है। स्व० जाजूजी तथा पूज्य माँ के आशीर्वाद भी मेरे साथ रहे हैं।

परिवारवालो ने जो आदर और बड़प्पन मुझे प्रदान किया है, मेरी अनेक दुर्बलताओ तथा भावुकताओ को मतभेद और सस्कार-भेद के होते हुए भी बरदाश्त किया है, वह सचमुच मेरे लिए स्तुत्य है। धर्मपत्नी सौ० प्रमिलादेवी को तो मेरे कारण बहुत ही सहन करना पडा है। मैं जानता हूँ कि इसमें पुरुष का अहंकार नारी की सास्कृतिक समर्पण भावना पर हावी रहा है। अगर उनका साथ न मिला होता, तो मै समाज-सेवा की बारहखडी तक भी नहीं पहुँच सकता था। पुत्रो और पुत्र-वधुओं ने भी मेरे कार्यों में सदा सहयोग दिया है और उन सबकी विनयशीलता की मुझ पर काफी छाप पडी है। इसी तरह जैन-समाज का भी मुझ पर काफी अनुग्रह रहा है। मैंने चाहे जब, चाहे जिस भाषा मे, जोश और आवेश मे, उत्साह और जिज्ञासा मे जो कुछ कहा है, वह सब स्नेहपूर्वक समाज ने सहन किया है। समाज की इस उदारता का मुझे बड़ा लाभ हुआ है। मैं समाज के सम्मुख श्रद्धावनत हूँ। समाज मे अनेक सन्त, त्यागी, तपस्वी, मुनि, विद्वान्, उद्योगपति, धनवान् और उदाराशय महान् विभूतियाँ हैं। देश का भ्रमण करते हुए समाज के विविध वर्गों द्वारा मुझे जो प्रेम और आतिथ्य मिलता रहा, वह अद्‌भुत है। समाज में यह शक्ति अटूट है।

भारत जैन महामंडल मेरी प्रिय संस्था है। इसका उद्देश्य जैनों के सभी सम्प्रदायों मे एकता, भाईचारा निर्माण करना है। पिछले २५ वर्षों से मैं इसके साथ जुड़ा हूँ। अब इसको अच्छे-अच्छे और साधनसंपन्न साथी मिल गये हैं और

यह सब देखकर मुझे विश्वास है कि मेरा सपना अब साकार होकर ही रहेगा। साम्प्रदायिक मनोमालिन्य, विद्वेष और भेदभाव दूर होकर सब मिल-जुलकर धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की साधना करें, यही मेरी तमन्ना है।

ये सब बातें मैंने आपके सामने केवल अपने मन का भार हलका करने के लिए रखी हैं। मेरा व्यक्तित्व कोई चीज नहीं है और मेरे पास कोई सन्देश भी नहीं है। मैं उन सब साथियों, संबंधियों, बुजुर्गों के सम्मुख नतमस्तक होकर स्नेह की भिक्षा माँग रहा हूँ, जिन्होंने मेरे निर्माण और विकास में मदद की है। सेठजी के यहाँ काम करते हुए जिन साथियों का संपर्क आया, उनको तो मैं कदापि नहीं भूल सकता। उनके तो मुझ पर इतने अहसान हैं कि उनकी गिनती ही नहीं हो सकती।

आज आप सब मित्रों ने मेरे ६६वें जन्म-दिन पर मेरा जो अभिनन्दन किया, गौरव प्रदान किया, उसे मैं बड़ी श्रद्धा और प्यार से इसलिए स्वीकार कर रहा हूँ कि यह सम्मान और गौरव मेरा नहीं, बल्कि समाज का है।

मुझे आशीर्वाद दीजिये कि मेरा जीवन पवित्र, शुद्ध और उपयोगी बने।

मेरी शारीरिक शक्ति क्षण-क्षण पर जवाब दे रही है। चाहते हुए भी मैं अब प्रवास नहीं कर सकूँगा और आँखो से भी कम ही दीखता है। साथियों की भी सलाह है कि अब मुझे प्रवास का संयम करना चाहिए। चाहता तो हूँ कि शरीर को तो एक दिन टूटना ही है, तब क्यो न उससे पूरा काम लिया जाय; लेकिन यह भी एक मोह है। मोह-निवृत्ति बड़ी कठिन है। वह मुझ जैसे के लिए सम्भव तो नहीं दीखती; लेकिन अब यही उपयुक्त है कि एक जगह बैठकर जो कुछ बन सके, सेवा की जाय।

मेरे व्यवहार के कारण सैकड़ों संगी-साथियो और मित्रों को तकलीफ हुई होगी, उनका नुकसान भी हुआ ही होगा। आदमी के स्वार्थ को क्षमा करने की भूमिका में पहुँचकर सब जन मुझे मैत्री और सौहार्द का दान देंगे, ऐसी अपेक्षा रखता हूँ। सबसे विनय है कि आप सब मेरी त्रुटियों को क्षमा करें और स्नेह दें।

वर्धा (महाराष्ट्र)
१२ सितम्बर, १९६०

कुछ भूले-बिसरे चित्र

[चिरंजीलाल बड़जाते]

१. पद्मिनी ले आओ

लगभग तीस वर्ष पहले की बात है। हमें मथुरा से पैरखू जाना था। हमारे मित्र मास्टर चेतनदासजी जैन ने एक तरुण अध्यापक हमारे साथ कर दिया। जिस स्टेशन पर हम उतरे, वहाँ से पैरखू दस-बारह मील रहा होगा। वहाँ एक बैलगाड़ी खड़ी थी, पर उसने आठ रुपया किराया माँगा तो युवक ने इनकार कर दिया और कहा कि हम पैदल ही चले जायेंगे। मेरी शारीरिक स्थिति वह जानता नहीं था। उसके आग्रह और उत्साह को देखकर मैं पैदल ही चल पड़ा। दो-तीन मील चलने पर किसीसे पूछा तो उत्तर मिला कि गाँव चार मील है। लेकिन दो मील और बढ़ने पर भी यही उत्तर मिला कि गाँव चार मील है। यह चार मील कभी खतम ही नहीं होता था। मैं तो चलते-चलते थक गया।

चलते-चलते एक चने का खेत और कुआँ दिखाई दिया। वहाँ एक आदमी भून-भून कर चने चबा रहा था और रोता जा रहा था। मैं उसके पास गया और पूछा कि भाई तुम रो क्यों रहे हो? उसने देखा और बैठने के लिए कहा। हमें भुने हुए चने खाने को दिये और अपनी कहानी शुरू की।

उसने कहा : "मेरे माता-पिता का देहांत हो गया है। भाई तो मुझको ठीक से रखता है, पर भौजाई मुझे बहुत दुख देती है, ताने मारती है, चिढ़ाती है। कहती है कि अगर मेरे हाथ की रोटी अच्छी नहीं लगती तो कोई पद्मिनी ले आओ! इसी कारण मैं कुएँ में जान देने आया हूँ। यह खेत और कुआँ मेरे पिताजी का है। मरने के पहले पिताजी के खेत के चने तो खा लूँ!"

उसकी कहानी सुनकर मैंने कहा : "मरो मत, चलो, पद्मिनी से ही तुम्हारी शादी करा देंगे। हम सब चने खाकर और पानी पीकर उसको अपने साथ कर लिया। हम दो से तीन हो गये। कदम-कदम करके पैरखू पहुँच गये। वहाँ का

काम निपटा कर हम तीनों बैलगाड़ी से वापस लौट गये। स्टेशन पर पहुँचकर देखते हैं कि लगभग पन्द्रह व्यक्ति लट्ठ लेकर खड़े हैं। उनमें उस आदमी का भाई भी था। सबके सब आवेश में थे। कहने लगे, 'आप लोग हमारे भाई को कहाँ ले जा रहे हैं?' वे सब यह समझ रहे थे कि हम लोग चाय के बाग के आदमी हैं और उसको फुसलाकर ले जा रहे हैं।

मैंने उसके भाई से कहा : 'हम चाय के बाग के आदमी नहीं हैं। वर्धा के रहने वाले हैं। तुम्हारे भाई को हम अपने यहाँ ले जाकर पढ़ायेंगे-लिखायेंगे और रोजी-पानी से लगाकर उसकी शादी भी करा देंगे।''

तब जाकर उसके भाई को विश्वास हुआ कि ये लोग फँसानेवाले नहीं हैं। हमने उसको सारी स्थिति समझायी और कहा कि इस तरह घर में कलह नही होनी चाहिए। छोटी-से-छोटी बात भी बड़ी पीड़ा पहुँचाती है। अंत में उसने अपनी गलती स्वीकार की और आश्वासन दिया कि मैं भाई का विवाह भी कर दूँगा, खेत का बँटवारा भी कर दूँगा।

हमें उसके भाई को ले जाकर करना क्या था!

२. छोटी नदी की बाढ़

जब कभी छोटी नदी में या छोटे नाले में बाढ़ आती है तो वह बड़ी खतरनाक साबित होती है। उसके पेट में इतनी समायी ही नहीं होती कि वह बाढ़ को अपने में पचा सके। यही हाल मनुष्य का है। तुच्छ या ओछी प्रकृति के लोगों का अभिमान जब बढ़ता है, तो वह थोथे चने की तरह खूब बजता है! ऐसा ही एक संस्मरण यहाँ दे रहा हूँ।

एक मामूली और गरीब आदमी था। उसको हिसाबनवीस के तौर पर ५०) मासिक पर रखा था। बड़ा ही ईमानदार, खूब सेवाभावी और मेहनती! उसको एक कंपनी का हिसाबनवीस बना दिया गया। धीरे-धीरे उसका वेतन एक सौ पचास तक पहुँच गया। वह मेरे हिसाबी काम-काज में भी मदद करता था। उसकी सेवा और परिश्रमशीलता को देखकर मैंने अपनी एक जमीन में उसका आधा हिस्सा रख दिया। वह जमीन बंजर-परती थी। कोई उसको पूछता नहीं

था। लेकिन भाग्य की बात कि अब उस जमीन पर सरकारी ट्रैक्टरों की मदद भी मिल गयी। खेती में काफी मुनाफा रहा। जमीन तैयार हो गयी तो जल्दी बिक भी गयी। आधे हिस्से की आमदनी में उसको लगभग बीस हजार रुपये मिले! यह रकम उसके लिए तो अकल्पनीय ही थी! इससे समाज में चर्चा फैल गयी, उसकी प्रशंसा होने लगी! अब तो उसके पुत्र के संबंध के लिए सम्पन्न घर के लोग भी आने लगे। उसका विवाह एक सम्पन्न घराने में हुआ और उसमें भी उसको दस-पन्द्रह हजार का दहेज मिला!

वह लडका मेरे पुत्र की किराने की दूकान पर कामकाज सीखता था। अब उसने अलग से दूकान कर ली। दूकान खासी चलने लगी। इस सबका परिणाम वही हुआ जो प्रायः छोटी नदी की बाढ़ का होता है! उस भाई को अहंकार ने जकड लिया! पहले की सेवावृत्ति नष्ट हो गयी।

जिस कंपनी में उनको रखा गया था, वहाँ उनकी असमर्थता को देखकर एक मकान मात्र चार रुपये किराये पर दे दिया था। धन आते ही उन्होंने उस मकान के सामने बाँस के टट्टे से घेरा डाल दिया। मालिक को मालूम हुआ तो उन्होने घेरा हटवा दिया। उस भाई ने कंपनी के मैनेजर पर मुकदमा भी चला दिया। उसके लडके ने मैनेजर के प्रति अपशब्दों का प्रयोग भी किया! धन का मद जा न कराये थोडा!

मालिक का आक्षेप मुझ पर है कि मुझे आदमी की परख नहीं है! क्या कहूँ! धन आदमी को आदमी नही रहने देता या कि मुझे आदमी की परख नहीं है— पता नही! इतना सही है कि धन के पीछे पागल रहना और धन पाकर पागल बन जाना दोनों ही स्थितियाँ आदमी को शैतान बनाने के लिए काफी हैं।

३. लड़के कैसे बिगड़ते है?

हमारे एक रिश्तेदार है। उनका एक ही पुत्र है। तीन बहनें हैं। दो बहनों के विवाह हो चुके हैं। कन्या विवाह योग्य हो रही है। लेकिन भाई को चिन्ता नहीं है। उसकी चालचलन बिगड़ गयी है। जुआ खेलने लगा है। चोरी करने लगा है। यहाँ तक कि अपने कपड़े तक बेच देता है।

उसके बहनोई ने उसको दिल्ली अपने पास बुलाया। बड़ी कंपनी में नौकरी लगवा दी। अपने यहाँ मुफ्त में खिलाता भी था। किसी तरह वह बी० ए० कर ले, इसलिए रात्रि कॉलेज में भरती करा दिया। लेकिन वहाँ भी आदत नहीं सुधर सकी। कर्ज कर लिया। आखिर वहाँ से उसे भागना पड़ा।

फिर उसको वर्धा बुलाया। क्या करते? रिश्तेदारी का मामला। बहुत प्रयत्न किये गये, पर सब व्यर्थ। यवतमाल में सरकारी नौकरी की। वहाँ भी कर्ज कर लिया। आखिर अपने गाँव भाग गया। माँ-बाप दुखी हैं और कर्मों को रोते हैं!

ऐसी घटनाएँ क्यों होती हैं? असल में देखा जाय तो सारा दोष माँ-बाप का होता है। बचपन में लाड-प्यार इतना करते हैं कि बच्चे किसी प्रकार का अभाव, दबाव और कठिनाई महसूस नहीं करते, उनमें किसी तरह के सामाजिक और नैतिक संस्कारों के बीज नहीं पडते! आखिर वह बाहरी आकर्षणों में लुभा ही जाता है। सिनेमा, बीडी, सट्टा, जुआ, शराब आदि चीजें कम तो नहीं ही हैं। लाड-प्यार जरूरी है, पर उनके नैतिक विकास की जिम्मेवारी भी माता-पिता पर होती है।

पहले समाज का संगठन था। जगह जगह रात्रि-पाठशालाएँ थीं, जहाँ बच्चों को धार्मिक शिक्षण मिलता था। मंदिर जाना, शास्त्रसभा में बैठना, कीर्तन सुनना आदि ऐसी प्रवृत्तियाँ थीं कि जिनसे बच्चों पर संस्कार पड़ते थे। उनका नैतिक स्तर ऊँचा उठता था।

४. क्या तू ही रेल का मालिक है?

हम लोग एक बार उदयपुर से जयपुर जा रहे थे। मेरे साथ मेरे मित्र की पत्नी भी थीं। एक छोटे से स्टेशन पर गाड़ी रुकी। वहाँ अस्सी वर्ष की एक बुढ़िया चढ़ने का प्रयत्न कर रही थी। उसे कोई चढ़ने नहीं दे रहा था। मैंने हाथ पकडकर खींच लिया और बैठा दिया, जगह भी दे दी। गाड़ी चल दी। थोड़ी देर बाद उसने पाँव फैलाने शुरू किये। मित्र की पत्नी को तकलीफ देने लगी– सरको-सरको कहकर पाँव फैला दिये। मैंने उसको समझाया कि बहन को तकलीफ हो रही है, तुम सीधी बैठो। तो वह बोलने लगी, 'तू ही रेल को मालिक है कांई, मैंने भी पैसा दिया है।' अंत में हारकर मित्र की पत्नी को नीचे बैठना पड़ा और मुझको भी।

५. रेल के सफर में

: १ :

एक समय की बात है। विजयवाडा स्टेशन पर मैं ग्रैंडट्रंक एक्सप्रेस में बैठना चाहता था। ग्रैंडट्रंक एक्सप्रेस भीड के लिए प्रसिद्ध है। उसमें बैठ पाना बड़े भाग्य की बात मानी जाती है। मुझे कोई बैठाने को ही राजी नहीं था। आखिर एक भाई से मैंने अपनी वृद्धावस्था, आँखों की कमजोरी तथा काम की जरूरत बतायी। उसको दया आ गयी और बैठने दिया। मुझे यों नीचे ही बैठना पडा, पूरी बर्थ पर तो वही पाँव फैलाये था। गाड़ी जब चलने लगी, तो बोला, 'क्यों रे बुड्ढे चावल खाता है?' मैंने कह दिया, 'हाँ, अगर जूठे न हों तो खाने में हर्ज नहीं है।' खा-पी चुकने पर शिष्टाचार की बातें शुरू हो गयीं। उसने कहाँ रहते हो, क्या करते हो आदि बातें पूछीं। मैंने बहुत धीमी आवाज में बता दिया कि वर्धा रहता हूँ, जमनालाल संस लि० का मैनेजर हूँ और खेती का काम भी करता हूँ। यह सुनकर उसने ऊपर सीट पर बैठने की जगह कर दी। उसमें एकाएक बिजली के झटके की तरह परिवर्तन हो गया।

इसके बाद मैंने भी पूछ लिया कि आप क्या करते हैं? उत्तर में उसने बताया कि वह राजा शुगर मिल्स का एजेंट है। जब उसको यह मालूम हुआ कि मैं राजा शुगर मिल्स का एक डायरेक्टर हूँ, तब तो वह बड़े प्रेम से पेश आया और मुझे वर्धा तक लाया।

: २ :

बात सन् १९४१ की है। भोपाल से वर्धा आ रहा था। पंजाब मेल में बैठा था, सो वर्धा के लिए इटारसी उतरना था। पास में ही एक मुसलमान पंजाबी बैठा था। वह शराब के नशे में चूर था। मुझे देखकर पता नहीं उसके मन में क्या आया कि उसने कहा कि इसकी खोपड़ी पर जूते जमाने की इच्छा है। बड़े जोर से चिल्लाया भी। उस डिब्बे मे प्रायः सभी हिन्दू थे, लेकिन किसी की हिम्मत न हुई कि उस शराबी को ऐसा करने से रोक सकें। वह जूता उतारकर मुझे मारने के लिए तैयार भी हो गया। पर संयोग की बात कि वहीं एक राष्ट्रीय

स्वयंसेवक संघ का युवक बैठा था। लपककर उसने शराबी का हाथ पकड़ लिया। अब वह शराबी मुझे छोड़कर उससे भिड़ गया।

मैं घबरा गया। मुझे और तो कुछ सूझा नहीं, कुछ फुटकर सिक्के थे सो मुट्ठी में भरकर जोर से उसकी तरफ फेंक दिये–गिरा दिये और जंजीर खींचने के लिए हाथ बढ़ा दिये। यह देखकर पास बैठे दूसरे लोगों को भी जोश आ गया और पकड़कर शराबी को बैठा दिया। इतने में इटारसी स्टेशन आ गया। उसका नशा भी उतर चुका था। मैं सामान उठाने के लिए कुली बुलाने लगा। तब वही शराबी कहने लगा, 'सेठ कुली मत बुलाओ, 'मैं ही आपका सामान रख दूँगा। उसने मेरा सामान उठाया, नागपुर की गाडी में बैठाया और अपनी ओर से एक कप चाय भी पिलाई! माफी माँगी और बोला:

"सेठ, माफ करना। मैं नशे में था। आपके जैसा ही एक सेठ हमारे गाँव में था। उसने मेरी सारी जायदाद कर्ज में दबा ली। मैं कंगाल हो गया। अमीर से गरीब बन गया। फौजी नौकरी करनी पडी। शराब की लत लग गयी।"

यह घटना आँखें खोलने के लिए पर्याप्त है।

: ३ .

सन् १९३९ की बात है। दूसरा महायुद्ध शुरू हो गया था। मुझे बहुत जरूरी काम से आबू से अजमेर जाना था। उन दिनों अजमेर मे उर्स का मेला था। हजारो मुसलमान भाई अजमेर जा रहे थे। क्या रेल और क्या प्लेट फार्म, कहीं भी तिल धरने को जगह नहीं थी। न फर्स्ट क्लास में, न थर्ड क्लास में! लेकिन जाना जरूरी था। प्लैटफार्म तक आने के लिए मुझे दो रुपये खर्च करने पड़े। पुलिस के आदमी को पाँच रुपये दिये कि वह डिब्बे में बैठ जाय और मेरे बैठ जाने की व्यवस्था कर दे। कुली को चार रुपये दिये तब जाकर उन्होंने मुझे उठाकर डिब्बे में बैठा दिया। २० कप चाय मंगायी और बैठे हुए यात्रियों को पिलायी। मैं यात्रा में हमेशा अपने साथ ताश के पत्ते भी रखता हूँ। लोगों को खेलने में लगाया। इस तरह मेरी अजमेर-यात्रा हुई।

इस घटना में क्या विशेषता है? कोई खास बात तो नहीं है। लग

सकता है कि ऐसा करके मैंने रिश्वतखोरी को, अनैतिकता को, लालच को बढ़ावा दिया ! यह नुस्खा हर जगह आजमाने जैसा भी नहीं है। फिर भी मुझे लगता है कि इस घटना का महत्त्व है। हम लोग छोटी-छोटी बातों में तो नैतिक-अनैतिक आदि की सिद्धात की बातें करते हैं, लेकिन बडी-बडी बातों में सिद्धांत और व्यवहार के समन्वय को भूल जाते हैं। सारे सिद्धातों की कसौटी आदमी का अपना दृष्टिकोण है याकि स्वार्थ है। आपद्-धर्म सिद्धात की कोटि में ही आना चाहिए।

६. धर्म का पैसा व्यक्ति के पास न रहे

हमारे देश में अनेक प्रकार के धार्मिक फंड और ट्रस्ट हैं। उनकी व्यवस्था का भार जिन लोगों के हाथ में रहता है, उसकी सम्पत्ति भी उन्हीके पास रहती है। उस सम्पत्ति पर वे अपना कारोबार चलाते हैं। व्यापार करते है। जब कभी समाज को उस धन की जरूरत होती है, तो एकाएक निकालकर देना कठिन होता है और कभी अगर कारोबार घाटे में रहा, हाथ तंग रहा तो फिर क्या पूछना है। ऐसे ही करोडो की संपत्ति लोगों के पास रह गयी। मंदिरों, धर्म स्थानकों, धर्मशालाओं, विद्यालयो आदि का धन इसी तरह डूब गया।

एक समय की बात है कि किसी जैन सभा का अधिवेशन था। वहाँ एक भाई ने जैन धर्मशाला का प्रस्ताव रखा। स्थान अच्छा था। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। कुछ समय पश्चात् वे भाई मेरे यहाँ आये। मैंने उनको छोटा-सा हाल बनाने के लिए २५००) दे दिया। इसी तरह उन्होने और लोगो से भी चन्दा एकत्र किया, वचन लिये। लेकिन अब सात-आठ वर्ष बीत जाने पर भी वह धर्मशाला नहीं बनी। जब पूछा जाता है, तब यही उत्तर मिलता है कि हाँ, अब बनती है।

७. बैरी हो गये बेद

जयपुर के एक भाई लगभग तीन साल से पीछे पड़े थे कि उनके पुत्र का विवाह करा दीजिये। वे इतने आतुर थे कि किसी गंवारु या वेश्या तक से विवाह करने को तैयार थे। वे और उनका पुत्र हमारे यहाँ लगभग १५ दिन रहे। आखिर उसकी शादी करा दी। शादी में लगभग तीन सौ रुपये की कमी रही।

लड़की अच्छे परिवार की महाराष्ट्रीय थी। मुझसे उन्होंने २६५) उधार लिये। जयपुर जाते ही भेजने का वादा किया, लेकिन आजतक वे रुपये नहीं आये।

८. तीर्थ में भी पैसे की महत्ता

हमारी बदरी-केदार की यात्रा अपने ढंग की अनोखी थी। हम लगभग २५ व्यक्ति थे। अनेक विद्वानों का साथ था, इसलिए रास्ते में और पड़ावों पर कहीं कोई कमी नहीं रहती थी। प्रबन्ध भी बहुत अच्छा होता था। विद्वानों के बीच में ही एक अविद्वान था, पर मेरा सद्‌भाग्य कि सबके सब मुझे सिर आँखों पर उठाये हुए थे। सबसे मुझे स्नेह और आदर मिलता था।

बदरीनाथ में वृन्दावन से रासलीला करनेवाली एक मण्डली आयी हुई थी। रासलीला देखने के लिए एक साधु महाराज पहले से जाकर बैठ गये थे। जब हम सब लोग वहाँ पहुँचे तो व्यवस्थापक महोदय ने उस साधु को अपमान-जनक शब्दों के साथ वहाँ से उठा दिया और हम सब लोगों को ऊँची जगह पर बैठाया। यह दृश्य देखकर मुझे बड़ी वेदना हुई।

लेकिन यही हाल सारे वातावरण का है। त्याग और भोग दोनों की हम समान इज्जत करते है, बल्कि भोग की ही करते हैं। जो महत्त्व हम सेठ के धन को देते हैं, वह साधु की लंगोटी को नहीं देते। धर्म-स्थानों में तो यह लीला और भी उभर उठी है। किसी भी तीर्थ पर चले जाइये, वहाँ चारों ओर पैसा ही पैसा चमकता हुआ दीखता है। जैनो के तीर्थराज सम्मेदशिखरजी में तो यह पैसे की माया एक-एक ईंट और दीवाल पर नग्न-नृत्य कर रही है। अपरिग्रह और अहिंसा के देवालयों पर बन्दूकधारी संतरियों का पहरा बैठा दिया गया है।

९. यह हृदयहीनता

एक करोड़पति के पुत्र का विवाह करोड़पति के यहीं हो सकता है! एक तीसरे करोड़पति ने इस उपलक्ष्य में दावत दी! मैं यहाँ नाम व्यक्त नहीं करना चाहता, सिर्फ इतना समझना पर्याप्त होगा कि जिनके यहाँ दावत थी, वह परिवार विश्व में प्रसिद्ध है। गाँव-गाँव में उनके दवाखाने और धर्मशालाएँ हैं, अन्न-

सत्र चलते हैं। मन्दिरों और तीर्थों में उनकी ओर से करोड़ों रुपया खर्च होता है। यह सब आत्मशुद्धि के लिए ही होता होगा। लेकिन उस दिन पार्टी के समय जो दृश्य देखा, तो मेरे रोंगटे खड़े हो गये।

हम लोग पार्टी में खाना शुरू करने ही वाले थे कि नीचे दरवाजे पर एक भिखारी आया। जर्जर देह और चिथड़ों में वह गिड़गिड़ा रहा था कि वह भूखा है, कुछ मिल जाय ! इस पर वहाँ खड़े सिक्ख पहरेदार ने उसको धक्के देकर निकाल दिया। उसको बाहर निकालने का आदेश दावत देनेवाले के पुत्र ने ही दिया था।

एक आदमी को खाना खिलाने की वहाँ क्या कमी थी। पता नहीं मु... कैसा लगा कि जी मितलाने लगा और मैं वहाँ कुछ भी न खा सका।

कोई कह सकते हैं कि हर जगह और समय की मर्यादा होती है। ... भिखारी को वहाँ जाने का अधिकार ही क्या था ? ठीक है, लेकिन मानवता ... सर्वोपरि है। हो सकता है भिखारी के वेश में भगवान् ही वहाँ पहुँचा हो।

१०. पंडित या चोर ?

मैसूर राज्य में श्रवणबेलगोला नामक एक स्थान है। वहाँ भग... बाहुबली या गोमट्टेश्वर की ५७ फुट ऊँची विशालकाय प्रतिमा है। वह ... बारह वर्ष पर महामस्तकाभिषेक होता है। लाखो जैनी जमा होते हैं। सन् १९२७ के आसपास वहाँ यह उत्सव था। मेरी माँ ने भी वहाँ चलने की इच्छा व्यक्त की। यात्रा लम्बी थी, लगभग एक मास का समय लगनेवाला था। कारोबार और दूकान को कौन सम्हालेगा, यह चिंता थी। दूकान में कर्मचारी तो थे ही, पर उन पर एकाएक विश्वास नहीं किया जा सकता था।

हमारे यहाँ उन दिनों एक जैन पंडित भी काम करते थे। धर्मशास्त्र का उनका अध्ययन अच्छा था। माँ को वे रोज स्तोत्र, तत्त्वार्थ, पूजा-पाठ सुनाया करते थे। सीधे-सरल दीखते थे। माँ को उन पर सहज विश्वास था। माँ ने कहा, पंडित जी हैं ही, वे देख-रेख कर लेंगे। माँ की बात माननी ही थी।

कर्मचारियों और उन पंडित जी के भरोसे दूकान छोड़कर हम लोग यात्रा पर निकल पड़े ! पंडित जी का एक भाई भी हमारे यहाँ मोटर-ड्राइवर था।

हम लोगों के यात्रा से लौटते ही पंडित जी तथा उनके भाई ने हमारे यहाँ की नौकरी छोड़ दी और हमारे एक रिश्तेदार के यहाँ दूसरे गाँव में नौकरी कर ली। एक समय की बात है कि हमारे रिश्तेदार यानी पंडित जी के नये मालिक के यहाँ कुछ मेहमान आये। रिश्तेदार भाई बाहर गये हुए थे। अतः उनकी पत्नी को ही सारा प्रबंध करना पड़ा। मेहमानों के साथ-साथ पंडित जी को भी भोजन का निमंत्रण दिया गया। समय पर वे भोजन करने पहुँचे।

हमारे रिश्तेदार की पत्नी को आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने पंडित जी के शरीर पर जरी की धोती, कोसे का कोट और जरी का ही साफा देखा। उन्होंने सहज भाव से पूछ लिया, "इतने कीमती कपड़े कहाँ से चुरा लाये, पंडित जी !" वे वृद्धा थीं और पुराने मत की सरल स्वभाव महिला थीं।

पंडित जी ने कहा, "ये कपड़े मुझे चिरंजीलालजी ने पुरस्कार में दिये हैं।"

उस बहन को विश्वास नहीं हुआ। पर वे चुप भी न रह सकीं। बोल ही गयीं, "ऐसे कपडे वे तुमको इनाम में नहीं दे सकते। खुद तो खादी के कपड़े पहनते हैं। यह नहीं हो सकता।"

दूसरे दिन हमारे रिश्तेदार भी आ गये। सारी बात उनकी पत्नी ने कह सुनायी। उनका मेरे नाम अरजेंट तार आया कि मैं पहली गाडी से पहुँचूँ। मैं रवाना हो गया। उधर पंडित जी को भी मालूम हो गया कि मुझे तार करके बुलाया गया है। उन्होंने इस्तीफा दे दिया और अपने घर जाने की तैयारी करने लगे। इतने मे मैं पहुँच गया।

पंडित जी ने तागे में सामान रख लिया था। मैंने तुरंत कहा, 'जरा सामान दिखाओ।'

हमारे रिश्तेदार ने कहा, 'पंडित जी, अगर आप सच्चे हैं तो सामान दिखा दीजिये ! साँच को आँच क्या !' लेकिन पंडित जी सामान दिखाने को तैयार नहीं थे। इनकार कर गये। मेरे मन में पुलिस को बुलाने का विचार चल ही

रहा था, कि संयोग से उधर से एक सब-इन्स्पेक्टर आ गये। उन्होंने पूछा, 'यह काहे का झमेला है?' मैंने सारी बात उनसे कह दी। मामले को वे समझ गये। अब पंडित जी की पेटी खुलवाई गयी। उसमें से दूकान का बहुत सारा सामान निकला। उर्दू में लिखा हुआ एक पत्र भी पेटी में मिला। वह पंडित जी के पिताजी का लिखा हुआ था। उनके पिताजी ने लिखा था :

"जो कीमती कपडे भेजे हैं, वे हम लोग नहीं पहन सकते। हम गरीब लोग हैं। अगर तुमको इनाम में मिले हैं, तो इनाम देनेवाले की चिट्ठी भेजवाओ। अगर चोरी से भेजे हैं तो वैसी सूचना दो, ताकि सारे कपडे पुलिस थाने में देकर तुमको गिरफ्तार कराया जाय।"

अब दारोगा ने पंडितजी और उनके भाई दोनों को हथकडी पहना कर वर्धा रवाना कर दिया, ताकि वहाँ की अदालत में केस चल सके।

जब माँ को यह सब हाल मालूम हुआ तो उसे दया आ गयी। कहा, 'अपना सामान ले लो और उसको छोड दो, जेल में मत डालो! माँ के कहने से मैंने कोशिश करके उनको मुक्त करा दिया और दोनों के नेक चलन की जमानत ले ली। उनको उनके घर भिजवा दिया।

असल में उनको चोरी का मौका इसलिए मिल गया कि जब अन्य कर्मचारी भोजन करने जाते, तब वे अकेले ही दूकान पर रहते। इस बीच वे रोज एकाध चीज छिपा लेते। धीरे-धीरे इसका उन्हें चस्का लग गया और हिम्मत बढ़ गयी। यों मनुष्य की अच्छाई में विश्वास ही रखना ठीक है, रखना भी चाहिए, पर कभी-कभी परिस्थितियाँ ऐसी बन आती हैं कि अच्छाई पर आवरण छा जाता है और आदमी मोह-लालच का शिकार बन जाता है।

●